प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ
वर्धा (बम्बई-राज्य)

पहली बार : १०,०००
मई, १९५७
मूल्य : एक रुपया पचास नये पैसे (डेढ़ रुपया)

मुद्रक :
विश्वनाथ भार्गव
मनोहर प्रेस,
जतनबर, वाराणसी

न हो, इस दृष्टि से उसे रखना पड़ा है। संकलन का आकार सीमा से न बढ़े, इसकी ओर भी ध्यान देना पड़ा है। यद्यपि यह संकलन एक दृष्टि से पूर्ण माना जायगा, तथापि उसे परिपूर्ण बनाने के लिए जिज्ञासु पाठकों को कुछ अन्य भूदान-साहित्य का भी अध्ययन करना पड़ेगा। सर्व-सेवा-संघ की ओर से प्रकाशित १. कार्यकर्ता-पाथेय, २. साहित्यिकों से, ३. संपत्ति-दान-यज्ञ, ४. शिक्षण-विचार, ५. ग्राम-दान पुस्तकों और सस्ता-साहित्य-मंडल की ओर से प्रकाशित १. सर्वोदय का घोषणा-पत्र, २. सर्वोदय के सेवकों से जैसी पुस्तिकाओं को भूदान-गंगा का परिशिष्ट माना जा सकता है।

संकलन के कार्य में यद्यपि पू० विनोबा जी का सतत मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ है, फिर भी विचार-समुद्र से मौक्तिक चुनने का काम जिसे करना पड़ा, वह इस कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य थी। त्रुटियों के लिए क्षमा याचना।

—निर्मला देशपांडे

ग्रामदान होना चाहिए। पहले हम थोड़ी-थोड़ी जमीन माँगते थे, फिर छठा हिस्सा माँगना शुरू किया और उसके बाद ग्रामदान की बात चलायी। आज पाँच साल बाद हमें एक हजार पूरे गाँव मिले हैं। हमने इतनी आशा नहीं रखी थी। जिन्होंने ग्रामदान दिया, उन्होंने ग्राम-संकल्प किया है और जहाँ ग्राम-संकल्प होता है, वहाँ उसके पीछे ग्राम-राज्य, ग्रामोदय की सारी बातें आ सकती हैं। हमने सोचा कि अगर भूदान के जरिये ग्राम-संकल्प हो सकता है, तो अब खादी के जरिये भी हो सकेगा। इसका प्रयोग करना है। जहाँ ग्रामदान मिला, वहाँ हमने चरखा, नयी तालीम आदि का काम शुरू करने का सोचा है और कुछ शुरू हुआ भी है। चाहे भूदान के जरिये हो, चाहे खद्दर के, ग्राम-संकल्प होना चाहिए। बिना ग्राम-संकल्प के हमारा काम आगे न बढ़ेगा। जब गाँववाले संकल्प करेंगे कि हम अपने गाँव में खादी पैदा कर उसीका इस्तेमाल करेंगे, गाँव में बाहर का कपड़ा न आने देंगे, तभी काम चलेगा।

इस प्रकार का ग्राम-संकल्प होने के बाद तत्काल एक काम करना होगा और वह है, गाँव की सामूहिक दूकान! गाँव की सारी खरीद-बिक्री उसी दूकान के जरिये चलेगी। मान लीजिये कि उस दूकान के जरिये गाँव में सालभर में एक हजार रुपये का तेल बिका, जो बाहर से खरीदा गया था, तो दूकानवाला गाँववालों की सभा बुलाकर कहेगा कि अपने गाँव में एक हजार रुपये के तेल की आवश्यकता है, तो इतना तेल हम गाँव में ही बनायें। फिर गाँव-सभा अगले साल उसे गाँव में ही पेरने की योजना करेगी। गाँव की आवश्यकता की और भी बहुत-सी चीजें गाँव में ही बनेंगी। इस तरह गाँव के लोग गाँव की ही चीजें इस्तेमाल करने का निश्चय करेंगे, तो यंत्र-बहिष्कार अनायास सिद्ध होगा।

तमिलनाड़ में नया कार्य

गाँव के लोग गाँव की ही चीजें इस्तेमाल करें, यह बात दो प्रकार से हो सकती है : (१) सरकार कानून द्वारा बाहर की चीजें गाँव में आने से रोके और गाँव की चीजों को 'प्रोटेक्शन' दे या (२) गाँववाले स्वयं निश्चय कर संकल्प करें कि हम बाहर की चीजें न लेंगे। लेकिन सरकार इस तरह करेगी, ऐसा कोई

काम में लगें। लेकिन अब तमिलनाड़ में मैंने भू-दान के साथ खादी, ग्रामोद्योग और नयी तालीम, तीनों चीजें जोड़ने का सोचा है।

जातिभेद-निरसन

इनके साथ मैं एक और चौथी भी चीज जोड़ना चाहता हूँ और वह है, जातिभेदों का निरसन। उसकी बहुत जरूरी है और कम-से-कम तमिलनाड़ में तो बहुत ही जरूरी है। मैं जानता हूँ कि उसके कारण काफी लोगों के मन में आज हमारे लिए जो अनुकूलता है, वह न रहेगी। इसका थोड़ा विरोध भी शुरू हुआ है। हमारे पास एक पत्र भी आया है कि आप भू-दान प्राप्त करने में जगह-जगह शास्त्रों का उपयोग करते थे, पर जातिभेद-निरसन के कार्य में उनका क्या उपयोग होगा? मैं जानता हूँ कि यहाँ पहले से ही कुछ सनातनी थे और आज भी हैं। फिर भी मानता हूँ कि जातिभेद-निरसन का कार्य अपनाकर उतने विरोध का जिम्मा उठाना होगा। मालकियत मिटाने और जातिभेद-निरसन के काम को हम उठाते हैं, तो यहाँ कोई राजनैतिक पार्टी ऐसी नहीं रहती, जो इसमें सहकार्य किये बिना रहे। क्योंकि उनके पास इसके सिवा दूसरा कोई बेहतर कार्यक्रम नहीं है। इसलिए सबको मन से इस कार्यक्रम को मानना होगा; फिर चाहे उनकी आसक्ति चुनाव के साथ जुड़ी हो, इसलिए वे इसमें ज्यादा समय न दे सकें। आरम्भ में सनातनियों का कुछ विरोध रहेगा, पर मुझे उम्मीद है कि वह भी धीरे-धीरे कम होता जायगा, क्योंकि उन्हें कबूल करना पड़ेगा कि यह शख्स शास्त्रों के लिए प्रेम रखता है और इसे शास्त्रों का कुछ ज्ञान भी है। फिर भी ऐसी बात करता है, तो सबके कल्याण के लिए ही करता है। मैंने इसका काशी में अनुभव किया। काशी तो सनातनियों का बड़ा गढ़ माना जाता है। वहाँ के विद्वानों ने अपनी एक बैठक में हमें बुलाया था। हमने अपने विचार उनके सामने रखे, तो बहुत-से उन्हें मान्य हुए।

वेदान्त की बुनियाद

इन चार चीजों के सिवा एक भाई ने गोरक्षण की बात भी जोड़ने के लिए कहा। लेकिन मैंने कहा कि उसका स्वतंत्र नाम लेने की जरूरत नहीं है।

सरकार शायद इसे बढ़ावा दे, तो खतरा पैदा होगा, यह सोचकर पूँजीवादी चिल्लाने भी लगे हैं। लेकिन इन सबको हम बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं देते। पूँजीवादियों का चिल्लाना अपेक्षित ही है। और सरकार सावधानी के साथ या यों भी कह सकते हैं कि हिचकिचाहट के साथ आगे बढ़ेगी। यह भी अपेक्षा के बाहर नहीं है।

आनुषंगिक लाभ उठाने में विरोध नहीं

मैं यही समझा हूँ कि पहले हमारा चरखा जितना पैदा करता था, अंबर चरखा उससे तीन गुना या चार गुना अधिक पैदा करेगा। हम तो पुराने चरखे के ही आधार से गाँवों को स्वावलंबी बनाने की कोशिश करते थे। उसमें हमें पूरा यश नहीं मिला, कुछ गाँव, एक तिहाई या आधे खादीधारी बने। अब हमें सोचना चाहिए कि उससे तीन या चार गुना अधिक पैदा करनेवाला चरखा हमें मिला है, तो उसके आधार से हम गाँव को स्वावलंबी बना सकते हैं या नहीं। सरकार चाहे जो करे, पर हम इसकी ओर इसी दृष्टि से देखते हैं कि इस चरखे के आधार से हम कितना ग्रामोदय फैला सकते हैं। इस चरखे के आधार पर आठ घंटे के काम की कितनी रोजी दी जायगी, आदि हिसाब किया जाता है। जिन्हें कोई रोजगार नहीं है, ऐसे कुछ लोग इसके जरिये रोजी हासिल कर लेते हैं, तो उससे हमारा कोई विरोध नहीं। किंतु हमारी वह दृष्टि नहीं है। हमारा उद्देश्य यही है कि इस चरखे के आधार पर गाँवों को स्वावलंबी बनाया जाय।

'कम्युनिटी प्रोजेक्ट' में प्रयोग किया जाय

हमारे लोग इसके जरिये खादी उत्पन्न करें और बेचने के झमेले में पड़ें, यह मैं नहीं चाहूँगा। सरकार वैसा करे, तो उसे रोकने की भी हमारी इच्छा नहीं है। किंतु सरकार अगर हमसे सलाह पूछेगी, तो हम कहेंगे कि कम्युनिटी प्रोजेक्ट में उसका प्रयोग करो और प्रोजेक्ट्स के क्षेत्र के लोग खादी पहनें। कम्युनिटी प्रोजेक्ट में यह चीज दाखिल किये बिना और उसका याने स्वावलंबन का उसूल मान्य किये बिना सरकार इसे चलायेगी, तो कुछ दिन चल लेगी, लेकिन उसके बाद काम रुक जायगा। लेकिन सरकार किस तरह सोचेगी, यह हम सरकार पर ही

ऐसे कई सत्पुरुष हिंदुस्तानभर में घूमे और उन्होंने करुणा का विचार समझाया है। शंकराचार्य ने 'करुणा' शब्द से भी बढ़कर एक शब्द निकाला। किसी दुःखी का दुःख देख मदद के लिए जाना 'करुणा' है। शंकराचार्य ने कहा : 'अरे, तुम और हम कौन हैं ? दुनिया में हम-ही-हम तो है। अद्वैत है।' इसलिए जैसे मनुष्य खुद को मदद करता है, वैसे ही दूसरों के लिए करेगा। यह समझकर नहीं कि मैं परोपकार कर रहा हूँ, बल्कि यह समझकर कि मैं अपने-आप पर ही उपकार कर रहा हूँ। पाँव में काँटा घुस जाय और दर्द होता हो, तो चट हाथ उसकी मदद में पहुँचता और काँटा निकाल देता है। क्या इसमें हाथ ने कोई परोपकार किया ? हाथ भी मेरा हिस्सा है और पाँव भी। इस तरह शंकराचार्य ने समझाया कि 'भाइयो, तुम सब मिलकर एक ही हो, दूसरी कोई चीज है ही नहीं !' हम इस आंदोलन द्वारा इसी 'अद्वैत' का प्रचार कर रहे हैं।

तिरुपुल्लिवनम् (चिंगलपेट)
१४-६-'५६

प्रेम और श्रम की प्रस्थापना : ४ :

हिन्दुस्तान सारी दुनिया का एक रूप है। दुनियाभर जितने भेद मौजूद हैं, उतने सब यहाँ हैं। हिन्दुस्तान का एक टुकड़ा लिया जाय, तो उसमें भी ये सारे मिलेंगे। यहाँ कुछ लोग 'द्रविड़-प्रदेश' की बात करते हैं, पर उस प्रदेश में भी सब प्रकार के भेद हैं। उसमें कम-से-कम चार भाषा और जंगल के लोगों की बोलियाँ हैं। दुनिया में जितने धर्म हैं, वे सब-के-सब यहाँ हैं। जातिभेद भी भारत के दूसरे किसी हिस्से की तरह यहाँ भी हैं। दुनिया में जितने राजनैतिक पक्षभेद हो सकते हैं, वे सब-के-सब यहाँ मौजूद हैं। जिस तरह मनभर दूध का सबका सब सार द्रव्य प्यालीभर दूध में होता है, उसी तरह दुनिया की और हमारी हालत है।

जन्म से ही समाज की ओर से बहुत सेवा मिल चुकी है, यह सोचकर समाज-सेवा-परायण बनना चाहिए। समाज के साथ या समाज के दूसरे व्यक्तियों के साथ स्पर्धा, होड़ या संघर्ष में नहीं पड़ना चाहिए। आज ही हमने 'कुरल' में पढ़ा कि 'जो मनुष्य सारी दुनिया की सेवा करता है, जो सबके प्राणों की रक्षा करता है, उसे अपने प्राण के लिए डरने का मौका नहीं आता।' तुलसीदासजी ने यही बात दूसरे शब्दों में कही है :

'परहित बस जिनके मन माहीं। तिन कह जग दुर्लभ कछु नाहीं॥'

जिनके मन में परहित बसा हो, उन्हें दुनिया में किसी चीज की कमी नहीं रहेगी।

'हरएक को दूसरे की चिंता करनी चाहिए', यह न्याय जैसे व्यक्ति को लागू होता है, वैसे ही जाति, समाज और देश पर भी लागू होता है। ब्राह्मणों को ब्राह्मणेतरों की चिंता होनी चाहिए और ब्राह्मणेतरों को ब्राह्मणों की। मनुष्य को दूसरे प्राणियों की चिंता होनी चाहिए। इस गाँववालों को उस गाँववालों की, इस प्रांतवाले को दूसरे प्रांतवालों की और इस देश को पड़ोसी देश की चिंता होनी चाहिए। लेकिन आज हम देखते हैं कि भाषा के अनुसार प्रांत-रचना करने का विचार शुरू हुआ, तो लोगों ने एक-एक जगह के लिए आग्रह रखा। एक प्रांत के कुल-के-कुल लोग कहने लगे कि फलाना स्थान हमारे प्रांत में आना चाहिए, तो दूसरे प्रांत के कुल-के-कुल लोग उसके खिलाफ कहने लगे। यही बात देशों के बीच चल रही है। एक देश के कुल लोग एक बाजू होकर किसी स्थान पर अपना हक बताते हैं, तो दूसरे देश के कुल लोग दूसरी बाजू होकर उस पर अपना हक बताते हैं। इसका अर्थ यही है कि 'हमने प्रेम का स्थान संघर्ष को दिया है।'

काम-वासना बनाम प्रेम

बहुत-सी बातों में बारीकी से सोचना पड़ता है। अगर मनुष्य-जाति खूब संतान उत्पन्न करने में लग जायगी, तो उसका दूसरे जानवरों के साथ झगड़ा शुरू हो जायगा। मान लीजिये, आज हिंदुस्तान की जनसंख्या ३६ करोड़ है और उसके बदले ३६० करोड़ हो जाय, तो वह गायों को खाये बगैर रह न सकेगा।

है? कहते हैं कि लंदन की लाइब्रेरी में कुल दुनिया की पुस्तकों का संग्रह है, पेरिस और बर्लिन में भी इसी तरह की लाइब्रेरियाँ हैं; पर जब वे एक-दूसरों के नगरों पर बम डालते हैं, तो क्या सोचते हैं कि ये पुस्तकालय बचें? मतलब यह है कि मनुष्य काम-वासना से हत होने पर उसकी बुद्धि भी विचार नहीं कर पाती।

इसके विपरीत प्रेम के साथ संयम आता है। मनुष्य अपनी खुद की वासना पर अंकुश रखकर ही प्रेम कर पाता है। मुझे प्यास लगी हो और मेरे भाई को भी। अगर उस वक्त मैं अपनी प्यास पर संयम न रखूँ और पहले खुद पानी पी लूँ, तो क्या उस पर प्रेम कर सकूँगा? अगर मैं उससे प्रेम करता हूँ, तो पहले उसे पानी पिलाकर ही पीना होगा और उसे पिलाने के बाद न बचे, तो मुझे अपनी प्यास भी सहन करनी होगी।

एक प्रसिद्ध सेनापति की कहानी है। वह लड़ाई में जख्मी होकर रणांगण में पड़ा था। उसके इर्द-गिर्द दूसरे कई जख्मी सिपाही पड़े थे। सेनापति से मिलने कई लोग आये। सिपाहियों के लिए कौन आनेवाला था? सेनापति मरने की तैयारी में था। उसे प्यास लगी, इसलिए उसने पानी माँगा। जब एक पानी का कटोरा उसे दिया गया, तो उसने देखा कि नजदीक के सिपाही की नजर उस पानी पर है। उसने तुरन्त कहा कि पहले उस सिपाही को पानी पिलाइये। सिपाही को पानी पिलाया गया, लेकिन सेनापति को दूसरा कटोरा भरकर देने के पहले ही वह मर गया। इसीका नाम है, प्रेम।

सारांश, जहाँ प्रेम होता है, वहाँ अपने पर अंकुश रखना ही पड़ता है और जहाँ स्पर्धा का विचार होता है, वहाँ सबसे पहले मुझे मिले, यही भावना होती है। एक छोटी-सी बात है। हम 'गीता-प्रवचन' पर प्रेम से हस्ताक्षर देते हैं, तो जो लोग हस्ताक्षर लेने आते हैं, उनमें हर कोई चाहता है कि पहले मुझे मिले। वह क्या गीता पढ़ेगा, जो धर्म-भावना सीखने के लिए उसे लेता है और फिर भी चाहता है कि मेरा नम्बर पहला हो? बाबा तो सबको हस्ताक्षर दिये बगैर नहीं जाता। इसलिए कितना अच्छा हो, अगर हर कोई सोचे कि पहले दूसरे गाँव को मिले, हर जाति सोचे कि पहले दूसरी जाति-वालों को मिले।

किसान पैसा चाहता है, क्योंकि उसे कई आवश्यक चीजें खरीदनी होती हैं। और व्यापारी का जीवन तो पैसे पर ही खड़ा है, क्योंकि वह खुद उत्पादन नहीं करता। क्लर्क वगैरह बीच के लोग पैसे के ही पीछे लगते हैं और सरकार भी डालर-डालर करती है। इस तरह सर्वत्र पैसे की महिमा है। मद्रास के किसान को पैसा चाहिए, क्योंकि वह पंजाब का गेहूँ खरीदना चाहता है। हिंदुस्तान के मनुष्य का अपने देश में हासिल होनेवाले भोगों से समाधान नहीं होता, वह यहीं बैठे-बैठे सारी दुनिया के भोग भोगना चाहता है। वह कहता है कि हिंदुस्तान की चाय फीकी मालूम होती है, चीन की चाय चाहिए, दुनिया की सबसे बढ़िया चाय मुझे चाहिए। कहता है कि सारी दुनिया एक है, तो फिर यह संकुचित वृत्ति क्यों हो कि हम एक ही जगह की चीजें खायेंगे ? हम दुनिया के नागरिक हैं, इसलिए दुनियाभर के भोग भोगेंगे। इस तरह ये लोग भोग भोगने में विश्वव्यापक हो गये हैं। इसलिए उन्हें पैसा चाहिए और इसीलिए वे स्पर्धा को मानते हैं।

प्रेम-दारिद्र्य मिटे

अतः आपके तमिलनाड़ में झगड़े चल रहे हैं, इससे दुःखी होने का कोई कारण नहीं। इस तरह के झगड़े तो दुनियाभर चलते हैं। इन दिनों २-४ बड़े मनुष्यों के नाम से झगड़े चलते हैं। उनकी चर्चा अखबारों में होती है और फिर वही गाँव-गाँव चलती है। हम समझ नहीं पाते कि उन लोगों का कौन-सा इतना पुण्य है, जो हर गाँव के लोग उनका नाम लेते हैं। इन दिनों लोगों को संतों के गीत नहीं, झगड़ों की कहानियाँ अच्छी लगती हैं। इसलिए हमें दो बातें करनी होंगी : (१) अपनी सारी शक्ति अच्छे कामों के लिए केन्द्रित कर उसमें एकाग्र होना और (२) पैसे की प्रतिष्ठा तोड़ श्रम की प्रतिष्ठा कायम करना तथा संघर्ष और स्पर्धा की प्रतिष्ठा तोड़कर प्रेम की कीमत बढ़ाना। हम चाहते हैं कि तमिलनाड़ के लोग यह समझें कि हमारे देश में दारिद्र्य की कोई कमी नहीं है, इसलिए अब प्रेम-दारिद्र्य की जरूरत नहीं। अगर प्रेम परिपूर्ण हो जाय, तो दूसरे दारिद्र्य भी हम मिटा सकेंगे। वे दारिद्र्य उतनी तकलीफ नहीं

के लिए लायक नहीं हो सकता। इसलिए इहलोक के लिए जो योग्यता चाहिए, वहीं अधिक प्रमाण में परलोक के लिए भी चाहिए। समझने की जरूरत है कि मनुष्य में दया, प्रेम, करुणा आदि गुणों की इसी जिंदगी में, इहलोक के लिए ही आवश्यकता है।

विचार बाबा को दौड़ाते हैं

लोग कहते हैं कि बाबा पाँच साल घूमा, अब कब तक घूमेगा? वे यह नहीं कहते कि बाबा ५५ साल तक बैठा रहा, अब क्यों बैठेगा? हम एक जगह बैठने के लिए नहीं जनमे थे। हमें घूमने से कोई थकान नहीं मालूम होती। इंजन के अन्दर भाफ भरी हो, तो वह मजे में दौड़ता है, उसे कोई थकान नहीं मालूम होती। इसी तरह बाबा के अंदर ये सारे विचार भरे हैं और वे ही उसे घुमा रहे हैं। वह जानता है कि वे विचार दुनिया के लिए अत्यंत जरूरी हैं।

एडनूर (चिंगल पेट)
१९-६-'५६

नास्तिकता कैसे मिटे ? : ५ :

यहाँ के लोगों को ऐसी खूबी सधी है कि वे खाते-पीते भी गाढ़ निद्रा में सोते रहते हैं। अगर वे जाग जायँ, तो समझ लेंगे कि भूमि का हक सबको है और जब तक हम सबको वह हक नहीं देते, तब तक सच्ची शांति और सुख कभी हासिल नहीं होगा। पचासों प्रकार से वह अशांति और दुःख प्रकट होगा। यहाँ हमने 'द्रविड़ कजहम्' (तमिलनाड़ का एक राजनैतिक पक्ष, जो 'स्वतंत्र द्रविड़स्तान' की माँग करता है) और नास्तिकों के खिलाफ शिकायतें सुनीं। लेकिन आप सब भूमिहीनों को जमीन देने का काम कीजिये। फिर मैं देखूँगा कि कौन 'कजहम्' काम करता है और कौन नास्तिक सामने आते हैं?

वास्तव में इन सबका मूल है, हमारी निष्ठुरता और कारुण्य का अभाव। पेट की बीमारी के कारण सिर दुखता हो, तो सिर दबाने से काम न चलेगा।

से भेद घटता नहीं, बढ़ता ही है। किन्तु भक्ति में यह खूबी है कि भक्त अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है। वह अपने लिए कुछ नहीं रखता। 'मुझे संपत्ति चाहिए, ज्ञान चाहिए' कहने से 'मुझे' कायम ही रहता है। जबतक 'मुझे' खंडित नहीं होता, तबतक बंधन छूट नहीं सकता।

यह बात व्यक्ति को लागू है और समाज को भी। लोग समझते हैं कि हम समाज की सेवा में लगे हैं, तो हमारा बंधन छूट जाना चाहिए। किंतु समाज की सेवा में लगे लोग भी अपने समाज का तो अभिमान रखते ही हैं और उससे अपनी बुद्धि का संकोच कर लेते हैं। देशाभिमानी अपने देश के लिए दूसरे देश के साथ लड़ सकता है। यहाँ तक कि भक्तिमार्ग के विभिन्न पंथों को भी अपने-अपने पंथ का अभिमान होता है। वे अपने पंथ के हितार्थ दूसरे पंथवालों से झगड़ा और मत्सर भी करते हैं। इस तरह संकुचित भावना, भेद, ममता आदि सब-के-सब व्यापक क्षेत्र में भी कायम रहते हैं। हम देखते हैं कि देश-सेवा के काम में लगे लोग भी, जो कि अपना कोई स्वार्थ नहीं रखते, आपस में झगड़ते और मत्सर करते हैं, क्योंकि उन्हें एक अभिमान होता ही है। इस तरह जिस किसी कारण अभिमान पैदा होता है, वह बंधन-कारक है। केवल देशाभिमान या धर्माभिमान से किसी तरह छुटकारा नहीं हो सकता। बड़े-बड़े लोगों ने लिखा है कि देशाभिमान और धर्माभिमान भी बड़े खतरनाक हो सकते हैं। क्योंकि वह धर्म या पंथ 'मेरा' है, इसलिए मैं उसे पकड़ रखता हूँ। कहते हैं कि 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ !' जब कारण पूछा जाता है कि किसका ? तो कहते हैं, 'हमारा'। तमिल-कवि भारती ने भी लिखा है कि 'भारतभूमि सारी दुनिया में श्रेष्ठ है। पर अगर वह 'हमारी' न होती, तो क्या उसे श्रेष्ठ कहते ?'

खुद को खतम करो

इस तरह केवल व्यापक क्षेत्र में काम करने से अभिमान मिट जाता है, ऐसी बात नहीं। अभिमान का आश्रय-स्थान 'मैं' हूँ। बड़े-बड़े साधकों को भी अपने गुरु का अभिमान होता है, यद्यपि वे अन्य सभी अभिमानों से मुक्त हुए रहते हैं। लेकिन भक्ति की यह खूबी है कि उसमें मनुष्य अपने को काटता है।

तौर पर ही मुझे इसका भोग मिल सकता है। आज विज्ञान इसी तरह की भावना ला रहा है।

दुनिया एक हो रही है

आज छोटे-छोटे सवाल भी एकदम अन्तर्राष्ट्रीय बन जाते हैं। हम यह नहीं कह सकते कि यह हमारा घर का सवाल है। लोग कहेंगे कि यह तुम्हारे घर का सवाल है, पर उससे हमें तकलीफ होती है, दुनिया की शांति भंग होती है। मान लीजिये, कल अगर अमेरिका में लड़ाई शुरू हो जाय, तो उसका असर हिंदुस्तान के कुल बाजारों पर पड़ेगा। यहाँ के गरीब समझ ही न पायेंगे कि अनाज एकदम से महँगा क्यों हुआ। लड़ाई की ही बात नहीं, साधारण समय में भी अमेरिका में कपास ज्यादा पैदा होने पर हिंदुस्तान के कपास के दाम पर परिणाम होता है, फिर चाहे यहाँ वह कम पैदा हो या ज्यादा। कपास अब सारी दुनिया की वस्तु बन गयी है। इस तरह दुनिया के किसी कोने में भी कोई सवाल पैदा होता है, तो उसका असर सारी दुनिया पर होता है। विज्ञान के कारण हम सब एक दूसरे के साथ इतने एकरूप हो रहे हैं कि 'मैं और मेरा', 'तू और तेरा' भेद ही मिट जायगा। आज आप यह चर्चा कर ले कि बल्लारी किस प्रांत में जायगा। लेकिन चंद दिनों के बाद यह मूढ सवाल माना जायगा। जैसे आज तमिलनाड का नागरिक भारत का नागरिक है, उसे भारत भर में कहीं भी जाने और काम करने का हक हासिल है। इसी तरह आगे चलकर भारत का नागरिक दुनिया का भी नागरिक होगा। दुनिया का कोई भी मनुष्य किसी भी देश में जाकर रह सकेगा और काम कर सकेगा। यह हालत बहुत शीघ्र आनेवाली है।

विज्ञान से धर्म बढ़ेगा

इस तरह यह युग अहंता और ममता का छेद करने के लिए खड़ा है। इसलिए जो छोटी-छोटी और संकुचित भावनाएँ रखते हैं, वे दोनों तरफ से मार खायेंगे। इधर से आत्मज्ञान का सिर पर प्रहार होगा और उधर से विज्ञान का पाँव पर। बहुतों को लग रहा है कि विज्ञान बढ़ रहा है, तो धर्म का क्या होगा? हम कहना चाहते हैं कि इस तरह शंका करनेवाले धर्म को मानते ही नहीं। जब विज्ञान, इतना बढ़ रहा है तो अधर्म टिक न सकेगा और धर्म ही रहेगा।

आज जो लड़ाइयाँ होती हैं, वे विश्व-व्यापक होती हैं। इसीलिए मैंने विश्वयुद्धों को 'दिव्ययुद्ध' कहा है। उनमें विचार संकुचित नहीं, व्यापक होते हैं। जहाँ एक शख्स दूसरे का गला काटता है, वहाँ बड़ी क्रूरता होती है। पर जहाँ मनुष्य ऊपर से बम डालता है, वहाँ वह जानता भी नहीं कि नीचे कौन है। उसे आज्ञा हुई, इसलिए उसने बम डाल दिया। इसलिए उसमें क्रूरता नहीं, मूर्खता होती है। आज की लड़ाइयों में लाखों लोग त्याग के लिए तैयार हो जाते हैं। उसमें मूर्खता है, इसलिए उसका परिमाण बुरा होता है। फिर भी उनके पीछे व्यापक बुद्धि होती है और इसीलिए वह बुराई ज्यादा दिनों तक टिक नहीं सकती। उसका पर्यवसान बहुत बड़ी बुराई में होता है। इसलिए मनुष्य उससे डरता है।

अहंता पर दुतरफा हमला

कहने का तात्पर्य यह है कि अहंभाव पर विज्ञान का बहुत बड़ा हमला हो रहा है और आत्मज्ञान का हमला तो पहले से है ही। जहाँ इस तरह दुतरफा हमला हो, वहाँ सिवा इसके कि सब लोग एक दूसरे पर प्यार करें, और क्या होगा? भू-दान-यज्ञ में हम मुख्य बात यही कहते हैं कि 'मेरा घर' वाली बात छोड़ो और समझो कि यह घर सबका है और सबमें मैं भी एक हूँ, इसलिए मेरा है। यह एक ही घर मेरा नहीं, दूसरे सब घर भी मेरे हैं। इसके सिवा वेदांत और क्या हो सकता है? भक्ति भी इससे ज्यादा क्या हो सकती है? विज्ञान भी यही कह रहा है। इसलिए हमें निरुत्साह न होना चाहिए। आगे आनेवाला जमाना बहुत अच्छी तरह भक्ति और धर्म का सच्चे अर्थ में पुरस्कार करेगा। यह बात भी याद रखनी चाहिए कि भिन्न-भिन्न धर्मग्रंथों में जो मूर्खता का अंश है, वह सब-का-सब जल जायगा और हरएक धर्म में जो स्वच्छ अंश है, वह उज्ज्वल रूप में प्रकट होगा। इसी श्रद्धा से बाबा काम कर रहा है।

पेरुमकम् (चिंगलपेट)

२०-६-'५६

करना हमारा कर्तव्य है। इस तरह छोटा भूगोल तो यही है कि हम इस देह के निवासी हैं और उसके जरिये हमें सेवा करनी है।

लेकिन जब यह सवाल उठता है कि सेवा किसकी करनी है, तो इसका उत्तर छोटा न होना चाहिए। परतंत्र देश का उत्तर छोटा हो सकता है, पर आजाद देश का यही उत्तर होना चाहिए कि हम इस देह के जरिये सारे विश्व की सेवा करना चाहते हैं। इधर यह देह और उधर वह विश्व ! दोनों के बीच दूसरी कोई चीज खड़ी न होनी चाहिए। आजादी के बाद हमारा सारे विश्व के लिए कर्तव्य हो जाता है। हम जो भी छोटी-सी चीज करेंगे, सारी दुनिया का खयाल रखकर करेंगे। हम बोलते हैं, तो हमें ऐसा सावधान होकर बोलना चाहिए कि कुल दुनिया हमारी आवाज सुननेवाली है। हम विश्व की सेवा करनेवाले विश्व-मानव हैं, इससे कम बात बच्चों को न सिखानी चाहिए।

अभी भाषा के अनुसार प्रांत-रचना करने की बात चली है। वह बात अच्छी है। उसके मानी यह नहीं कि हम छोटे बनना चाहते हैं या छोटे-छोटे प्रांतों को अपना देश बनाना चाहते हैं। यह सब हम इसीलिए कर रहे हैं कि लोगों की भाषा में राज्य-कारोबार चले, तो वह लोगों के लिए आसान होगा। यह रचना केवल सुलभता के लिए है, संकुचित बनने के लिए नहीं। मैं यह सब इसलिए कह रहा हूँ कि आजादी के बाद देश के सामने जो कर्तव्य है, उसका अभी तक हमें भान नहीं है। आप देखते हैं कि आजादी के पहले गांधीजी जैसे महान् पुरुष भी हिंदुस्तान छोड़ते नहीं थे। उन्हें अमेरिका, जापान आदि कई देशों का बुलावा आया, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया। किन्तु आज छोटे-छोटे लोगों को भी विदेश जाने का मौका मिलता है। इसका अर्थ यही है कि अब हमारी जिम्मेदारी व्यापक बनी है, यह नहीं कि छोटे-छोटे लोगों को नाहक अपना देश छोड़कर दुनिया में घूमना चाहिए। अब हम एक स्वतंत्र देश के नाते दुनिया में दाखिल हुए हैं, दुनिया का एक अंग बने हैं।

भारत की विशेषता न भूलें

भारत प्राचीन काल से एक विशाल देश के तौर पर प्रसिद्ध है। उसकी

सिखायेंगे ? जिन दिनों देश में आम-दरफ्त के साधन नहीं थे, उन दिनों केरल से शंकराचार्य निकला, उसने हिंदुस्तान भर घूमकर सब लोगों को धर्म की दीक्षा दी और हिमालय में समाधि ले ली। उसका जन्म हिंदुस्तान के इस सिरे में हुआ और समाधि उस सिरे में! उसने चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की। उस वक्त एक मठवाला दूसरे मठवाले से मिलने जाता, तो २-३ साल लग जाते। आज तो मद्रास से दिल्ली छह घंटे में जा सकते हैं। पर उन दिनों भी वह शख्स अपने शिष्यों को इतने दूर-दूर के अन्तर पर बिठाता है, तो उसकी कितनी व्यापक श्रद्धा है। वह कुल भारत को अपना देश समझता था। इसलिए हमारी शोभा इसीमें है कि हम बच्चों को उससे कुछ अधिक याने विश्व-मानव बनने का पाठ पढ़ायें।

भूमि-समस्या का हल छोटी चीज

हिंदुस्तान की कुछ शक्ति है, जिससे हमें सारी दुनिया की सेवा करनी है? अगर हम उसे विकसित करें, तो दुनिया की अधिक सेवा कर सकेंगे। हिंदुस्तान में भूमि-समस्या मौजूद है, जो कानून से हल हो सकती है और मारपीट से भी। दोनों तरीकों से दुनियाभर में काम हुआ है, लेकिन हिंदुस्तान में यह तीसरा ही तरीका आजमाया जा रहा है। अगर हमने इस तरीके से काम किया, तो न सिर्फ हिंदुस्तान की भूमि-समस्या हल होगी, बल्कि सारी दुनिया की सेवा भी होगी। कारण इससे सारी दुनिया को यह रास्ता मिल जायगा कि अपनी समस्याएँ प्रेम, शांति, अहिंसा से हल हो सकती हैं। जो लोग भू-दान-आन्दोलन की तरफ भूमि-समस्या के हल की दृष्टि से देखते हैं, वे उसकी महिमा ही नहीं जानते। भूमि-समस्या हल करने के लिए पैदल यात्रा नहीं करनी पड़ती, युवकों को घर-बार छोड़ संन्यासियों की तरह घूमने की तैयारी नहीं करनी पड़ती। लेकिन यह सब इसीलिए जरूरी है कि इनके जरिये प्रेम के तरीके की स्थापना हो रही है।

आज एक भाई का दान-पत्र आया, जिसमें एक पत्र भी था। पत्र में उसने लिखा था कि 'यह आन्दोलन तीन सालों से चला है। हमारे पास भूमि पड़ी है, पर हाथ से छूटती नहीं थी, कुछ मोह था। लेकिन अब तीन साल बाद हम मोह

समझते हैं। रामचंद्र को 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' कहा गया है। हम स्वातंत्र्य से भी बढ़कर मर्यादा को कीमत देते हैं। इसीलिए हम हकों पर नहीं, बल्कि कर्तव्यों पर जोर देते हैं। हम इसका विचार नहीं करते कि छोटे भाई का हक क्या है, बच्चों के, पति-पत्नी के, स्त्री-पुरुषों के, मालिक-मजदूरों के या शिक्षक-विद्यार्थियों के हक क्या हैं। किन्तु दूसरे राष्ट्रों के लोग इसी तरह के हकों का विचार करते हैं। इंग्लैंड में ४०-५० साल पहले वोट का हक हासिल करने के लिए स्त्रियाँ उठ खड़ी हुई थीं। लेकिन ये विद्वान् अंग्रेज लोग उन्हें वह हक देने के लिए तैयार नहीं थे। इसलिए उन स्त्रियों ने पार्लमेंट में जाकर पुरुषों पर अंडे फेंके। इस तरह वहाँ स्त्रियों को अपने हकों के लिए पुरुषों के खिलाफ आन्दोलन करना पड़ा। पर हिन्दुस्तान में ऐसा कोई आन्दोलन नहीं करना पड़ा। इसका कारण यही है कि हम हकों पर नहीं, कर्तव्यों पर जोर देते हैं।

इसलिए विद्यार्थियों, शिक्षकों, स्त्रियों और पुरुषों, सबको अपने-अपने कर्तव्यों के बारे में सोचना चाहिए। अगर हम कर्तव्य की चिंता करेंगे, तो हक सहज ही आ जायँगे। पुरुषों का कर्तव्य है कि स्त्रियों के हकों की रक्षा करें और स्त्रियों का कर्तव्य है कि पुरुषों के अधिकारों पर आक्रमण न हो। मैं मेरा अधिकार देखूँ और आप अपना अधिकार देखें, यह विचार ही गलत है। आपके अधिकारों की मैं चिन्ता करूँ और मेरे अधिकारों की आप चिन्ता करें, इसीका नाम है कर्तव्य-बुद्धि, मर्यादा-बुद्धि और यही हिंदुस्तान की विशेषता है। संस्कृत भाषा में 'हक' के लिए शब्द ही नहीं है। उसके लिए एक ही शब्द बताया जाता है, 'अधिकार'। लेकिन उसका अर्थ होता है, 'कर्तव्य'। 'मनुष्याधिकारः', 'गृहस्थाधिकारः' याने मनुष्य का कर्तव्य, गृहस्थ का कर्तव्य। कर्तव्य करने में हकों की रक्षा सहज ही हो जाती है। किंतु जहाँ हकों की रक्षा करने का खयाल होता है, वहाँ हमेशा कर्तव्यों का खयाल होता है, ऐसी बात नहीं।

संपत्तिवान् पिता की हैसियत में

भू-दान-यज्ञ आन्दोलन में हम भूमिवानों को समझाते हैं कि आपका यह

हमें यह बात समझनी ही होगी। इसलिए हमारे हृदय में छोटे-छोटे संकुचित अभिमान न होने चाहिए। (२) अपने देश का विशेष गुण ध्यान में लेकर उसके जरिये देश की समस्याएँ हल करनी चाहिए।

मधुरान्तकम् (चिंगलपेट)
२१-६-’५६

समाज की उन्नति के लिए संयम और करुणा : ८ :

समाज और व्यक्ति का सुख भिन्न नहीं, समाज के सुख में ही व्यक्ति का सुख निहित है। इसके अलावा व्यक्ति को अपना नैतिक और आध्यात्मिक विकास स्वतंत्र रूप से करना चाहिए। इस आध्यात्मिक प्रगति की कोई सीमा नहीं है। वह सतत चालू रह सकती है और रहनी चाहिए। आज लोग व्यक्ति की उन्नति का मतलब खूब अर्थ-संपादन करना लगाते हैं। इसी तरह उनकी यह भी इच्छा रहती है कि अर्थ-संपादन करने का मौका सबको मिले। दुनिया में आगे बढ़ने का यही अर्थ लगाया जाता है कि कीर्ति, पैसा या सत्ता खूब प्राप्त हो। लेकिन यह बिल्कुल ही गलत है, यह अर्थ समाज के हित के विरुद्ध है। व्यक्ति की उन्नति का सही अर्थ यही है कि मनुष्य की आत्मा उत्तरोत्तर ऊपर उठे और उसकी आध्यात्मिक उन्नति हो। उसमें मनुष्य नैतिक-स्तर से ऊपर उठते-उठते परमेश्वर के स्तर तक पहुँच सकता है।

करुणा के बिना उन्नति नहीं

अगर समाज-रचना अच्छी बनती है, तो व्यक्ति की उन्नति के लिए अनुकूलता पैदा होती है। समाज की सेवा में सबकी शक्ति लगे, इसके लिए दो गुणों की जरूरत है : (१) करुणा और (२) संयम। मन में सबके लिए करुणा हो, तो मनुष्य दूसरों का दुःख सहन न कर सकेगा। आज दुनिया में दुःख बहुत है, लेकिन लोग दिल सख्त कर उस ओर ध्यान नहीं देते। जो आस्तिक कहलाते हैं, वे कहते हैं कि हम क्या कर सकते हैं? दुःख मिटानेवाला तो ईश्वर है।

समझ लेनी चाहिए कि हम सबके साथ रहें। हाँ, सबके पीछे रह सकते हैं, परंतु आगे नहीं बढ़ सकते। सबको जितना भोग सुलभ हो, उतना ही हम ले सकते हैं; पर उससे भी कम लें, तो बेहतर है। सारांश, समाज के हर व्यक्ति में करुणा और संयम ये दो गुण होंगे, तो समाज की रचना अच्छी बनेगी।

आजकल 'स्टैण्डर्ड आफ लिविंग' (जीवन-स्तर) बढ़ाने की बात की जाती है। उसका मतलब यह है कि आज जिस तरह जिंदगी बसर की जाती है, उससे अधिक सुखमय हो। आज खाने को पूरा नहीं मिलता, तो वह मिलना चाहिए। दूध बहुत कम मिलता है, तो ज्यादा मिलना चाहिए। कपड़ा बहुत कम मिलता हो, तो ज्यादा मिलना चाहिए। लेकिन जो लोग बहुत ज्यादा कपड़ा इस्तेमाल करते हैं, उन्हें अपना कपड़ा कम करना चाहिए, क्योंकि ज्यादा कपड़ा पहनने से हवा का 'स्टैण्डर्ड' कम हो जाता है। सबसे महत्त्व की चीजें हैं : हवा, पानी, सूर्य-प्रकाश और आसमान। इनमें किसी प्रकार की कमी न करनी चाहिए। सारांश, जीवन की कुछ चीजें जो आज नहीं मिल रही हैं, अवश्य बढ़ानी चाहिए। कुछ हम नाहक ज्यादा इस्तेमाल करते हैं, वे कम करनी चाहिए। इस तरह जीवन योग्य बनना चाहिए। आज की हिंदुस्तान की हालत में जीवन का स्तर ऊँचा बढ़ाना आवश्यक है। सुख बढ़ाया जाय, यह हम भी मानते हैं, किन्तु दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए : (१) मेरा सुख पहले बढ़े, यह खयाल गलत है। सारे समाज का सुख बढ़े और उसके साथ मेरा भी बढ़े या उसके पीछे बढ़े, यही खयाल रहे। (२) केवल पदार्थ बढ़ाने से सुख नहीं बढ़ता।

भू-दान की सफलता के लिए संयम और करुणा

जहाँ जीवन-मान बढ़ाने की बात चलती है, वहाँ हमें यह समझना चाहिए कि सारे समाज का सुख बढ़ाया जाय, हमारा व्यक्तिगत सुख नहीं। इसलिए हर एक यह विचार करे कि मैं अपने लिए कम-से-कम भोग लूँ। सारे समाज का सुख बढ़े, इसके लिए अंकुश हो, संयम हो। भू-दान-यज्ञ की सफलता के लिए भी ये दो गुण बहुत जरूरी हैं। अक्सर लोग हमसे पूछते हैं कि 'हम जमीन देंगे, तो

ही है। वे समझते हैं कि कागजों के साथ परिचय होना चाहिए, परिस्थिति के साथ नहीं। तभी अच्छा न्याय दिया जाता है।

वे यह भी समझते हैं कि गाँव के लोग जितना उत्तम न्याय दे सकते हैं, उससे उत्तम न्याय मद्रासवाले दे सकेंगे, क्योंकि वे किसीका चेहरा देखते नहीं और सिवा कागज के और कुछ जानते नहीं। लेकिन मद्रास के लोग कुछ तमिल जानते हैं, इसलिए उतना उत्तम न्याय नहीं दे सकेंगे, जितना कि दिल्ली-वाले दे सकेंगे। पहले तो दिल्ली में भी उत्तम न्याय नहीं मिलता था, उसके लिए लंदन जाना पड़ता था। सारांश, न्याय देनेवाले जितनी दूर रहेंगे, उतना ही वे उत्तम न्याय दे सकेंगे, ऐसा उनका खयाल है।

किन्तु इस पर हम कहते हैं कि सबसे दूर तो परमात्मा है, फिर उसीके हाथों में न्याय सौंप दो। वह बहुत दूर है, इसलिए तटस्थ भी रह सकता है और वह बिलकुल हृदय के अंदर रहता है, इसलिए हर बात जानता भी है। इस तरह उसमें दोनों गुण हैं, इसलिए हम न्याय-अन्याय की बातें उसी पर सौंप दें और प्रेम की बातें करें। हमारा अनुभव है कि लोगों को प्रेम के लिए राजी किया जाय, तो हर झगड़े का फैसला आसान हो जाता है। इसलिए हम झगड़ों को कोई महत्त्व नहीं देते। यही समझाना चाहते हैं कि भूदान-यज्ञ के जरिये हम करुणा का विचार फैलाते जायँ, तो सारे झगड़े यों ही खतम हो जायँगे।

वेडाल (चिंगलपेट)

२७-६-'५६

को अपनी ताकत लगानी पड़ती है, तब कहीं गाड़ी आगे बढ़ती है। सारांश, ऊपर चढ़ना दुःख और नीचे उतरना सुख की हालत है। सुख में इन्द्रियाँ बिलकुल भोग-परायण बनती और जोर करती हैं। जहाँ दुःख, तकलीफ का मौका आता है, वहाँ वे आगे नहीं बढ़तीं, कोई काम नहीं करतीं। इसलिए जहाँ समान रास्ता है, समत्व-बुद्धि, सम-स्थिति है, वहाँ समाज सुरक्षित और मनुष्य का मन भी सुरक्षित है। इसीको हम 'साम्ययोग' कहते हैं।

हर क्षेत्र में साम्ययोग आवश्यक

'साम्ययोग' की महिमा हम अपने शरीर में भी देखते हैं। शरीर के वात, पित्त और कफ में से कोई भी एक धातु बढ़ जाय, तो शरीर खतरे में पड़ जाता है। किन्तु जहाँ तीनों धातु समान रहते हैं—धातुसाम्य होता है, वहाँ उत्तम आरोग्य रहता है। यह साम्ययोग हमें हर दिशा में साधना चाहिए। आध्यात्मिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में भी उसकी जरूरत है। समाज में कोई ऊँचा और कोई नीचा हो, तो वह समाज आगे न बढ़ेगा। गाड़ी के दो बैलों में एक बहुत ऊँचा और दूसरा बहुत छोटा हो, तो गाड़ी आगे बढ़ नहीं सकती। गाड़ी के बैल भी करीब-करीब समान होने चाहिए। आज देश में कुछ लोग पंडित हैं, तो कुछ बिलकुल ही निरक्षर। पंडितों को अक्ल तो बहुत होती है, पर वह व्यवहार में काम नहीं आती। और जो निरक्षर हैं, उनके पास काम के लिए जरूरी भी अक्ल नहीं होती। इसलिए दोनों मिलकर समाज का कोई कल्याण नहीं होता। बड़े-बड़े गड्ढे और टीलोंवाली जमीन हो, तो खेती नहीं हो सकती। खेती तभी अच्छी होती है, जब जमीन समतल हो। मनुष्य का चित्त भी जब समान होता है, तभी उसे शांति प्राप्त होती है। अगर उसे बहुत हर्ष हुआ, तो भी उसका परिणाम बुरा होता है। हमने ऐसी खबरें सुनी हैं कि किसीको लाटरी में दो लाख रुपये मिलने का तार आने पर बहुत हर्ष हुआ और उसीमें वह मर गया। इसी तरह एकदम अतिदुःख आ पड़े, तो उसका भी बुरा परिणाम होता है। इसीलिए भगवान् बार-बार गीता में कहते हैं कि हर्ष और शोक से भिन्न, सुख-दुःख से भिन्न समान-स्थिति में चित्त को रखो।

उसे रंज नहीं हुआ था। बादशाह ने सत्पुरुष से पूछा, तो उसने जवाब दिया : 'इसका परिणाम देखो, तो तुम्हारे ध्यान में आ जाय कि मैंने यह क्यों किया। मंदिर बनाया, तो मुसलमान नहीं आते थे और मसजिद बनायी, तो हिंदू नहीं आते थे। लेकिन अब पैखाना बनाया, तो सब आने लगे।' इसलिए 'सेक्युलर स्टेट' से बेहतर कुछ नहीं है। सारांश, धर्मवालों ने आज इतने भेद बढ़ाये हैं कि धर्म साधक होने के बदले बाधक हो रहा है।

विवेक के साथ साम्ययोग

समाज में उच्च-नीचता के भेद रहें, तो समाज बनता ही नहीं। आज गाँव में कुछ लोगों के पास जमीन है, तो कुछ के पास नहीं। ऐसे गाँव में अगर पानी का इन्तजाम किया जाता है, तो जिनके पास जमीन है, उन्हींको लाभ होता है; भूमिहीनों को कुछ नहीं। अवश्य ही पानी से पैदावार बढ़ती है, तो मजदूरों को भी ज्यादा मजदूरी मिलती है। किंतु उससे विषमता नहीं मिटती, परस्पर द्वेष कम नहीं होता। इसलिए जो यह सोचते हैं कि हम पैदावार बढ़ायेंगे, तो सब सुखी होंगे, वे पूरा नहीं सोचते। सुख के लिए साम्ययोग की ही स्थापना करनी होगी।

कुछ लोग कहते हैं कि सर्वत्र साम्ययोग कैसे स्थापित होगा? क्योंकि किसी-को ज्यादा भूख लगती है, तो किसीको कम। आखिर सब को समान खाना कैसे खिलाया जा सकता है? क्या मनुष्य और गाय को समान खाना खिलाया जायगा? किन्तु इस तरह पूछनेवाले साधारण विचार भी नहीं समझते। साम्ययोग का अर्थ यह नहीं कि विवेक ही न किया जाय या तर-तम-भाव ही न रखें। साम्ययोग की उत्तम मिसाल तो माता है। वह अपने सब बच्चों के लिए समान प्रेम रखती है। फिर भी २० साल के लड़के को ज्यादा रोटी खिलाती है, तो ५ साल के लड़के को कम। कोई लड़का बीमार हो, तो वह घर का सारा दूध उसीको देगी, तगड़े लड़के को न देगी। इसे 'विषमता' या 'भेद' नहीं, 'विवेक' कहते हैं। इस प्रकार का विवेक मनुष्य को हमेशा रखना ही पड़ता है। उसके बिना कोई काम हो ही नहीं सकता। सारांश, हमें विवेक के साथ साम्ययोग लाना होगा।

पैसा मिलता है, इसलिए आज सरकार भी उसे उत्तेजन दे रही है। इस तरह गलत काम चलते रहेंगे, तो जीवन-मान बढ़ने पर भी खतरा रहेगा।

आज दुनिया में तरह-तरह के प्रश्न पैदा हो रहे हैं। कहीं भी शांति और समाधान नहीं है। हम मानते हैं कि गीता ने जिसका बार-बार जिक्र किया है, वह 'साम्ययोग' जब तक नहीं आता, तब तक दुनिया सुखी न होगी। हमारा यह दावा है कि हम भूमिहीनों को जमीन दिलाते है और भूमिवानों से जमीन माँगते हैं, इसमें दोनों पर प्रेम करते हैं।

चुनमपेट (चिंगलपेट)
२८-६-'५६

व्यक्तिगत मालकियत बनाम अहिंसा-शक्ति : ११ :

ईसा मसीह के शिष्यों ने सामूहिक जीवन का प्रयोग किया था। १०-२० लोगों ने इकट्ठा होकर अपनी व्यक्तिगत मालकियत छोड़ दी और अपना एक 'कम्यून' बनाया। 'कम्यूनिजम' शब्द उसीसे बना है। किंतु वह प्रेम का कार्य था और आजकल लोगों ने जो 'कम्यूनिजम' चलाया है, वह द्वेष पर खड़ा है। इसलिए इन दोनों में बहुत अन्तर है। माँ प्रेम से बच्चे को थपकियाँ लगाती है, तो बच्चे को वह अच्छा लगता है, उससे उसे नींद आती है। पर उसके बदले अगर कोई उसे तमाचा लगाये, तो अच्छा न लगेगा। माँ का प्रेम से थपकाना और दूसरे किसीका द्वेष से तमाचा जड़ना, दोनों में बहुत अन्तर है। इसी तरह इन दोनों में भी अन्तर है। ईसा के शिष्यों ने मालकियत छोड़ने का जो प्रयोग किया था, उसी तरह के प्रयोग अनेक सत्पुरुषों ने अनेक देशों में किये हैं। किंतु वे सारे व्यक्तिगत प्रयोग थे। आज विज्ञान के जमाने में सामूहिक प्रयोग करने चाहिए। विज्ञान में भी इसी तरह होता है। पहले प्रयोगशाला (लेबोरेटरी) में छोटे-छोटे प्रयोग होते हैं और वहाँ जो यशस्वी होते हैं, उनका अमल सामाजिक जीवन में होता है। किसीने एक अच्छी चक्की बनायी और यह सिद्ध हुआ कि वह अच्छा

नहीं है। इसीलिए हमारा आन्दोलन कानून के खिलाफ नहीं, बल्कि कानून के ऊपर है। इस तरह जब मनुष्य ऊपर के स्तर पर चढ़ेगा, तो कानून भी ऊपर चढ़ेगा। अपनी इच्छा से अपनी सेवाएँ समाज को समर्पण करने में हम कुछ खोयेंगे नहीं, बल्कि बहुत पायेंगे।

तिंडीवनम् (द० अर्काट)

३-७-'५६.

'हमारा काम पूरा हुआ !' : १२ :

"हम तमिलनाड को कोरा कागज (blank cheque) देना चाहते हैं। जितने दिन आप यात्रा का उपयोग करना चाहते हो, कर सकते हो। यहाँ आने पर हमने अपने लिए समय का कोई सीमा-बंधन नहीं रखा है। यह दक्षिण का अन्तिम प्रदेश है, इसलिए इस प्रदेश में यह कार्य भी अन्तिम सीमा तक पहुँचना चाहिए। भूदान-यज्ञ का उत्तर का यश लेकर हम यहाँ आये हैं। अब परिपूर्ण कीर्ति लेकर आगे बढ़ेंगे। हमारे धार्मिक लोग ऐसी ही यात्रा करते थे। गंगा का पानी लाकर रामेश्वर के सिर पर अभिषेक करते थे, तो आधी यात्रा हो जाती थी। फिर रामेश्वर से समुद्र का पानी लेकर काशी जाते थे और वहाँ काशी विश्वनाथ पर उसका अभिषेक करते थे, तब यात्रा पूरी होती थी। बिहार की लाखों एकड़ जमीन, लाखों दाता और उड़ीसा के हजार ग्राम-दान लेकर हम यहाँ आये हैं। अब यहाँ समग्र ग्राम-रचना का काम कर, उसे लेकर हम फिर उधर जाना चाहते हैं। बिहार में यह सिद्ध हुआ कि एक प्रांत में लाखों लोग लाखों एकड़ जमीन दे सकते हैं। उड़ीसा में यह सिद्ध हुआ कि हजारों ग्रामदान हो सकते हैं, जमीन की मालकियत मिट सकती है। अब एक तरह से हमारा काम खतम हुआ है। याने इस पद्धति से काम हो सकता है, यह सिद्ध हो गया। इससे ज्यादा एक मनुष्य क्या कर

भक्ति याने 'न मम'

भक्ति के दो प्रकार माने गये हैं। एक प्रकार ऐसा है, जिसमें भक्त परमेश्वर से चिपककर उसे पकड़ रखता है। उसके लिए प्रसिद्ध उपमा है, बंदर के बच्चे की। बंदर के बच्चे अपनी माँ से चिपके रहते हैं। भक्ति का दूसरा प्रकार वह है, जिसमें भक्त सब कुछ परमेश्वर पर छोड़ देता और मानता है कि जो कुछ करता है, परमेश्वर ही करता है। उसके लिए बिल्ली की मिसाल प्रसिद्ध है। बिल्ली का बच्चा अपनी ओर से कोई कोशिश नहीं करता, बिल्ली ही बच्चे को उठाती है।

हम अपनी बुद्धि से ईश्वर को पकड़े रहें

जब तक मनुष्य की बुद्धि चले, तब तक उसे ही अपनी ओर से ईश्वर को पकड़े रहना चाहिए। जब कि उसकी बुद्धि हर विषय में काम करती है, तब उसे उन विषयों से हटाकर ईश्वर में लगाना उसका काम है। किन्तु बुद्धि पूरी शान्त हो जाय, तो उस हालत में सारा कारोबार भगवान् पर सौंप देना पड़ता है। इस तरह भक्ति का यह दूसरा प्रकार ऊँचा प्रकार है। मनुष्य को यह तबतक सध नहीं सकता, जबतक परमेश्वर को अपनी ओर से मजबूत पकड़ने की उसकी वृत्ति न हो। जबतक मनुष्य व्यवहार करता और अनेक विषयों में पड़ा रहता है, तबतक भक्ति का काम ईश्वर पर छोड़ना केवल ढोंग होगा। पूरा प्रयत्न परमेश्वर पर छोड़ देना कोई छोटी बात नहीं है। हमें बुद्धि है और मन-इंद्रियाँ हैं। वे सारी काम करती हैं। भूख की प्रेरणा होती है, तो हम उठते और भूख मिटाने का काम करते हैं। शौच की प्रेरणा होने पर उठकर बाहर चले जाते हैं। बारिश होती हो, तो घर के अंदर ही चले जाते हैं। इस तरह हम चौबीसों घंटे अपनी बुद्धि का उपयोग करते हैं, अपने लिए कोशिश करते रहते हैं। ऐसी स्थिति में हमने भक्ति परमेश्वर पर सौंप दी, यह कहना कोई अर्थ नहीं रखता। इसका मतलब यही होता है कि हम संसार का कार्य अपने प्रयत्न से करेंगे और सारा परमार्थ ईश्वर की मर्जी पर छोड़ देंगे। हिंदुस्तान में पारमार्थिक कार्य की

भक्ति का आरंभ ही नहीं करते, तो ईश्वरार्पण की बात ही नहीं आती। किंतु हिन्दुस्तान में ईश्वरार्पण की बात को करीब-करीब प्रयत्नहीनता का रूप आ गया है। वह एक केवल शब्द ही रह गया है, उसका अर्थ हम नहीं समझते। इस हालत में भक्ति की उत्पत्ति ही नहीं होती। जब भक्ति की उत्पत्ति ही नहीं होती, तो उसके फल के समर्पण का, कृष्णार्पण का सवाल ही नहीं पैदा होता।

ममता छोड़ने में ही भक्ति का आरंभ

हिन्दुस्तान में लोग मंदिरों में जाते हैं, पूजा-अर्चा बहुत चलती है, तीर्थ-यात्राएँ होती हैं। उनके लिए लोग बहुत पैसा खर्च करते और समय देते हैं। हम कबूल करते हैं कि इसमें कुछ थोड़ी श्रद्धा का अंश है, पर उसे 'भक्ति' का नाम नहीं दे सकते। वह तो बहुत ही छोटी चीज है। उतना भी हम न करें, तो हमारा जीवन नीरस ही बन जाय। यह समझना उचित न होगा कि हम पूजा-अर्चा आदि करते हैं, तो हमने भक्ति का आरंभ कर दिया। भक्ति का आरंभ तो तब होता है, जब हम ममता को तोड़ना शुरू करते हैं, अपना अलग जीवन नहीं रखते और समाज के जीवन में मिल जाते हैं। भक्ति का अर्थ ही यह है कि हम अपना जीवन सेवा में लगायें। हमारे जीवन का सेवा के बिना कोई उद्देश्य ही नहीं है। इस तरह भक्ति का आरंभ होने के बाद ईश्वरार्पण की बात आती है। आज की हालत में सारा संसार, सारा जीवन बिलकुल गलत ढंग से चल रहा है। ऐसी हालत में कुछ नामस्मरण कर लेना या स्तोत्र कह लेना तो बच्चों की-सी बात है। बच्चे स्तोत्र वगैरह बोलने लग जाते हैं, तो अच्छा लगता है। हमारा चौबीसों घंटे परिश्रम चल रहा है, वह अगर केवल हमारे और हमारे परिवार के लिए हो, तो उसमें भक्ति है ही कहाँ?

पूछा जा सकता है कि क्या भक्ति के लिए घर-द्वार छोड़ना पड़ेगा? नहीं उसकी जरूरत नहीं है। होना तो यह चाहिए कि अपने घर को भी 'सारे समाज का एक हिस्सा' समझें और सबकी सेवा के एक साधन के तौर पर उससे काम लें। सारा शरीर अच्छा चले, इसलिए हम पाँव में धँसा काँटा निकालते हैं, तो

तो भक्ति होती है', वह बिलकुल गलत है। यह त केवल बच्चों की क–ख–ग अक्षर सीखने जैसी बात हो गयी, वह कोई साहित्य का अध्ययन नहीं हुआ। सामान्य नाम-स्मरणादि केवल अक्षर-पाठ हैं। उनसे भी मनुष्य को लाभ हो सकता है, भक्ति के लिए श्रद्धा पैदा हो सकती है। इस तरह नाम-स्मरणादि से जिसका हृदय श्रद्धावान् बना हो, वह भक्ति के लिए तैयार हो सकता है। इसलिए हिन्दुस्तान में अभी 'भक्तिमार्ग' के नाम से जो चलता है, वह भक्ति नहीं, बल्कि थोड़ी-सी श्रद्धा टिकाने की बात है। इसके लिए भी हम अपने देश का गौरव समझते हैं कि इतनी श्रद्धा तो यहाँ कायम है। इसीके आधार पर हम भक्तिमार्ग की स्थापना करने की हिम्मत करते हैं, अगर यह सामान्य श्रद्धा ही नहीं होती, तो भक्तिमार्ग का आरंभ ही न हो पाता।

हमने देखा है कि हमारी सभाओं में हजारों लोग—बच्चे, बूढ़े, भाई, बहन—अत्यन्त शान्ति और श्रद्धा से हमारी बात सुनते हैं। हम उन्हें कोई भोग नहीं दिलाते, बल्कि त्याग की बातें सुनाते हैं। जमीन, संपत्ति, श्रमशक्ति, बुद्धि आदि का दान देने के लिए कहते हैं। पर कोई मंत्री गाँव में आता है, तो आप उसे पुल बनाने या स्कूल, दवाखाना खोलने के लिए कहते है। याने आप उससे कुछ-न-कुछ माँग ही करते हैं। वह भी आपकी माँग पूरी करने का वादा करता है। फिर वह उसे पूरी करे या न करे, यह तो भगवान् ही जाने, पर कबूल अवश्य करता है। सारांश, उससे आप लेने की बात करते हैं। लेकिन हम तो आपको देने की बात समझाने आये हैं। भारत में आज जो सर्वसामान्य श्रद्धा है, वह भी न होती, तो हमारी त्याग की बात सुनने के लिए कोई नहीं आता। इसलिए हमारे मन में उस श्रद्धा के लिए आदर है। फिर भी अगर लोग सदासर्वदा क-ख-ग ही रटते रहेंगे, साहित्य में पढ़ेंगे ही नहीं, तो कैसे चलेगा? मनुष्य जिन्दगी भर भगवान् के मंदिर में जाकर नमस्कार करता है, पर उसके जीवन पर उसका कोई परिणाम नहीं होता। वह दूकान में जाकर बैठेगा, व्यापार करेगा, तो वैसा ही झूठ चलायेगा, जैसा कि दूसरे चलाते हैं। अब क्या वह जो सारा झूठ बटोरा होगा, उसे भगवान् को अर्पण किया जायगा? तात्पर्य यह कि जिस चीज का व्यवहार और जीवन पर कोई

समझेंगे कि मनुष्य की जरूरत ही नहीं रही। फिर हमारे जन्म की जरूरत ही क्या रही? परमेश्वर अगर चाहेगा, तो मनुष्य को जन्म दिये बिना ही दुनिया की व्यवस्था कर लेगा।

मान लीजिये कि इतनी अच्छी व्यवस्था हो जाय कि हमारे लिए कुछ काम ही न रहे, भगवान् स्वयं ही हर पेड़ को पानी देने की व्यवस्था कर लें, मुझे पेड़ को पानी देने की जरूरत न रहे, तो पेड़ मेरी तरफ देखते रहेंगे और मैं उनकी तरफ। मुझे भूख लगेगी, तो पेड़ मेरे पास न आयेंगे और पेड़ों को कुछ हुआ, तो मैं भी उनके पास न जाऊँगा। इसका मतलब यह हुआ कि पेड़ आज जिस हालत में हैं, उसी हालत में मैं भी आ जाऊँगा। फिर मनुष्य-जन्म की खूबी और रुचि ही क्या रही? अगर इतनी आदर्श व्यवस्था हो जाय कि बच्चों को तुलसी के पेड़ को पानी देने की जरूरत ही न रहे, तो हमारे जीवन को कार्य ही क्या रहेगा? भगवान् ने सृष्टि की रचना की है, उसमें भी बहुत अपूर्णता रखी है। हमें भूख लगती है, यह भी ईश्वर की योजना की न्यूनता ही मानी जायगी। किंतु अगर ईश्वर ऐसी परिपूर्ण योजना कर देता कि हमें कुछ भी काम करने को बाकी न रहता, तो हमारा जीवन भी व्यर्थ हो जाता।

इसीलिए हम कहना चाहते हैं कि समाज की व्यवस्था उत्तम करो, पर कितनी भी उत्तम व्यवस्था हो, तो भी करुणा की जरूरत रहेगी ही। इस करुणा को ही हम भक्ति का आरंभ समझते हैं। इस भक्ति का आपके हृदय को स्पर्श होगा, तो भूदान का काम शीघ्र हो जायगा।

किलियापुर (दक्षिण अर्काट)
५-७-'५६.

पसंद करते हैं, क्योंकि इसमें आलस्य करने का कोई संभव नहीं रहता। हमें सब लोगों के दर्शन होते हैं। हिन्दुस्तान के लोगों में यह पागलपन है कि वे समझते हैं कि दर्शन से कुछ मिलता है। मुझे भी वैसा ही विश्वास है। आप लोगों के दर्शन होते हैं, उसी से मेरा काम होगा। दो-दो बार घूमूँगा, तो ज्यादा लोगों का दर्शन होगा। तात्पर्य यह है कि बाहर की कृतियों से ज्यादा काम नहीं होता, अन्तर की प्रेरणा से ही होता है। हम तो केवल आप लोगों के दर्शन के लिए घूमते हैं। उससे हमें तृप्ति होती है। हमारा ध्यान इसी तरफ होता है कि हम कितने लोगों को प्रेम से खींचते हैं। हमारा अनुभव है कि कुछ-न-कुछ खींचे जाते हैं, यह भी हम करते हैं, सो नहीं। वह तो करनेवाला करता है। पर हम घूमते हैं, तो हमारे लिए एक सिद्धि होती है, हमें एक साधना मिल जाती है, एक निमित्तमात्र कार्य हो जाता है। किंतु हमारा घूमना घूमना नहीं, हमारा बोलना बोलना नहीं और हमारी चर्चा चर्चा भी नहीं है। हमारा घूमना, फिरना, चर्चा करना आदि जो कुछ भी है, सब भगवद्प्रार्थना है।

ओलिपिडयम पट्टु
६-७-'५६.

सामूहिक साधना　　: १५ :

योगी एकांत में बैठकर ध्यान-चिंतन करता है। वही चिंतन सब लोग मिलकर भी कर सकते हैं। इस सामूहिक चिंतन से अपार लाभ होता है। कोई भी साधना जबतक व्यक्तिगत रहती है, तब तक उसकी शक्ति सीमित रहती है। जब उसे सामूहिक रूप आता है, तो उसकी असलीयत प्रकट हो जाती है। वास्तव में हम किसी एक शरीर में कैद नहीं, व्यापक हैं। हम किसी बंगले में रहते हैं, तो उसमें से एक ही कोठरी में हमारा निवास होता है। इसी तरह सब देह में रहते हुए भी एक विशेष देह में हम रहते हैं। किंतु अगर पूछा जाय कि कहाँ रहते हो? तो जवाब मिलता है: "फलाने-फलाने मकान में।" यह सही है कि उस घर की एक कोठरी में हमारा निवास है, फिर भी उस घर में जितनी कोठरियाँ हैं, सभी को हम अपनी ही गिनते हैं।

बनता था। इस दुनिया में बहुत ज्यादा अच्छा न बना, तो वे यह समाधान भी कर लेते थे कि उसका अच्छा फल परलोक में मिलता है। इसमें कोई शक नहीं कि इन व्यक्तिगत पवित्र कार्यों का कुछ-न-कुछ अच्छा परिणाम होता ही था, किंतु भूदान और संपत्तिदान में सामूहिक तौर पर वह साधना की जाती है। आज तक करीब पाँच लाख से ज्यादा लोगों ने दान दिये हैं और हमारी कोशिश है कि हिन्दुस्तान में कम-से-कम तीन करोड़ परिवारों (घरों) से दान मिले। हिन्दुस्तान में कुल छह करोड़ परिवार होंगे और उसमें से तीन करोड़ लोगों के पास कम-ज्यादा जमीन अवश्य होगी। इतने व्यापक परिमाण में हम भूदान चाहते हैं। इसी तरह संपत्तिदान भी हरएक से चाहते हैं। बच्चा भी रोज आधा घंटा कातेगा, तो महीनेभर में १५ घंटे देश को दे सकेगा। उसकी वह उपासना होगी, धर्म-बुद्धि की योजना होगी। बच्चा रोज आधा घंटा कातता है, तो महीनेभर में एक रुपये की या कम-से-कम आठ आने की तो कमाई दे सकता है। मतलब यह कि बच्चा भी श्रमदान के तौर पर संपत्तिदान दे सकता है। इस दान के परिणाम का उतना महत्त्व नहीं, जितना कि इस बात का है कि बच्चा यह महसूस करेगा कि मैंने समाज के लिए कुछ समर्पण किया। इस तरह सारा समाज-समूह ही समर्पण करता है, तो अहंकार खत्म हो जाता है। सब लोग भोजन करते हैं, तो किसी को भोजन का अहंकार नहीं होता। किन्तु व्यक्तिगत तौर पर दान देने पर 'मैं दाता और मैंने दान दिया' इस प्रकार का अभिमान रह जायगा। यहाँ तक होता है कि एक योगी को भी दूसरे योगी की कीर्ति सुनने पर मत्सर होता है। इस तरह यह अभिमान बड़ा सूक्ष्म होता है।

जिसे हम व्यक्तिगत-साधना कहते हैं, उसमें भी बड़ा खतरा और डर रहता है। लेकिन वह चीज जब सामूहिक तौर पर होती है, तो उसका अहंकार क्षीण हो जाता है। विज्ञान के जमाने में अब व्यक्तिगत अहंकार के लिए बहुत अवकाश नहीं। करीब-करीब यही कहना होगा कि इसके लिए अब ज्यादा जगह नहीं रहेगी, क्योंकि विज्ञान के कारण दुनिया में व्यापक शक्तियाँ फैल गयी हैं और फैल जायँगी। उसके अनुपात में जब आत्मज्ञान की शक्तियाँ भी सामूहिक तौर पर प्रकट होंगी, तभी हम विज्ञान पर अंकुश रख सकेंगे, अन्यथा नहीं।

विचारों और संस्कारों की लेन-देन बढ़े

भारत का गौरव हरएक भारतवासी जानता है। भारतीय साहित्य की तुलना हम दुनिया के किसी साहित्य से नहीं कर सकते। विशेषकर वेदों से लेकर उपनिषद्, गीता, वेदान्त आदि जो महान् तत्त्वज्ञान संस्कृत में मिलता है, उसकी मिसाल दुनिया में अन्यत्र नहीं। भारत का इतना गौरव होने पर भी हमें बाहर से लेने की बहुत-सी चीजें हैं। हम यह नहीं कह सकते कि हम पूर्ण हैं और हमें कहीं से कुछ लेना ही नहीं है। हाँ, हम पूर्ण होना चाहते जरूर हैं। इसलिए जहाँ-जहाँ जो-जो अच्छाई मिलेगी, उसका हमें संग्रह करना चाहिए। हिंन्दुस्तान में ढाई सौ साल से अंग्रेजी भाषा चली और हमें उसका काफी ज्ञान हुआ। इसके लिए हम उनका उपकार मानते हैं। इसी तरह फ्रांसीसी लोगों ने भी हमें काफी चीजें दी हैं, जिसके लिए हम उनका भी उपकार मानते हैं। ऐसी सभी अच्छी चीजें हमें अपने में जोड़नी चाहिए। हम चाहते हैं कि दूसरे राष्ट्र भारत की भी अच्छी चीजें लें। मैं कोई बाहरी सामान की बात नहीं करता, वह व्यापार तो चलेगा ही। किंतु मैं एक आध्यात्मिक व्यापार की बात करता हूँ। हमें बाहर से काफी लेना है और उन्हें भी हमसे बहुत कुछ लेना है। इस तरह विचारों की और संस्कारों की लेन-देन जितनी बढ़ेगी, उतनी हम बढ़ाना चाहते हैं। हम संकुचित नहीं बनना चाहते, छोटे नहीं बनना चाहते। हम अपने जीवन के इर्द-गिर्द कोई बाड़ लगाना नहीं चाहते, अपने देश के इर्द-गिर्द 'सिग्रफिड' और 'मैजिनो लाइन' खड़ी करना नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि हमारे और दूसरे देशों के बीच विचारों का आदान-प्रदान खूब चले। भूदान-यज्ञ का सिद्धान्त है कि कुल दुनिया सबके लिए है। इसलिए यहाँ विचारों के आदान-प्रदान में कोई रुकावट न होनी चाहिए।

सत्ता के कारण सद्विचार के प्रचार में रुकावट

हम जरूर चाहते हैं कि पांडिचेरी में 'फ्रेंच-कल्चर' (फ्रांसीसी संस्कृति) की विशेषता चले। हम उसकी उपासना करें, उसका पोषण करें, उसका शोधन

छोड़ना न चाहेंगे। ३०० साल से यहाँ संस्कृति का एक सुंदर केन्द्र बना है, उसे हम तोड़ना नहीं चाहेंगे, बल्कि उसका पोषण और विकास ही करना चाहेंगे। किंतु यह तब बनता है, जब हम कोई चीज किसी पर लादते नहीं।

आजादी की महिमा

भूदान-यज्ञ की सत्ता लोगों पर बहुत चलती है। हम जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ हजारों लोग उत्सुकता से हमारी बातें सुनते हैं। कारण बाबा किसी पर कोई विचार लादता नहीं, प्रेम से समझाता है। बाबा के हाथ में कोई सत्ता नहीं है, वह सत्ता नहीं चाहता और न उसकी सत्ता पर श्रद्धा ही है। यह सबसे बड़ी बात है। किसी को हमारी बात नहीं जँचती, इसलिए वह उसे नहीं मानता, तो वह हमें प्यारा है। किसी को हमारी बात जँचती है, इसलिए वह उसे मानता है, तो वह भी हमें प्यारा है। इसीलिए हम दिल खोलकर अपनी बातें लोगों के सामने रखते और लोग कान खोलकर उन्हें सुनते हैं। वे जानते हैं कि इसमें उन्हें पूरी आजादी है। आजादी की यह महिमा है कि उससे लोगों के दिल जुड़ जाते हैं। अगर दुनिया के सब देशों में आजादी रही तो परस्पर संबंध बहुत बढ़ेगा। किंतु 'स्वतंत्रता' का अर्थ केवल राजनैतिक आजादी नहीं, बल्कि विचार-स्वतंत्रता ही सच्ची स्वतंत्रता है; इस बात को लोग समझेंगे, तो दुनिया के आधे दुःख मिट जायँगे। कितनी खुशी की बात है कि फ्रांसीसी लोगों का हिन्दुस्तान के लोगों के साथ प्रेम-संबंध बन रहा है। पोर्तुगीजों के साथ भी वैसा ही प्रेम-संबंध बन सकता है, अगर वे भी फ्रांसीसियों की तरह अक्ल से काम लें।

आर्य-द्रविड़-वाद बेबुनियाद

हिन्दुस्तान के लोगों में कुछ गुण हैं और कुछ दोष भी। उनमें एक बड़ा भारी गुण यह है कि वे बुराई को जल्द-से-जल्द भूल जाते हैं। अंग्रेजों ने २५० साल हिन्दुस्तान पर कब्जा रखा था, तो कितने बुरे काम हुए। किंतु आज इंगलैंड के साथ हिन्दुस्तान का मधुर संबंध है। पुरानी गलत बातें लिख रखने का हमें अभ्यास ही नहीं है। आजकल जिसे 'इतिहास' नाम दिया जाता

ऱका कि अंग्रेज इतिहासकारों को था। वे लोग तो रामेश्वर के समुद्र का पानी ग़ी में ले जाकर, काशी-विश्वनाथ पर उसका अभिषेक करने में सार्थकता झते थे और काशी के पास रहनेवाले लोग गंगा का पानी रामेश्वर ले जाकर भगवान् पर उसका अभिषेक करते थे।

दक्षिण का 'रामानुज' उत्तर में गया और वहाँ उसका 'रामानंद' जैसा न् शिष्य बना। कबीरदास, तुलसीदास आदि अत्यंत महान् संत रामानंद के ष्यों में से ही थे। केरल से शंकराचार्य निकले और हिमालय में जाकर उन्होंने ाधि ली। उन्हें आज का राम-रावण-संघर्ष, राम उत्तर का और रावण ज़ुण का आदि सब बातें मालूम ही नहीं थीं। वे समझते थे कि सारे भारत पर ारा हक है। शंकराचार्य यह नहीं समझते थे कि मलाबार हमारा है, दक्षिण- । हमारा है, बल्कि उन्होंने तो उस जमाने की राष्ट्रभाषा याने संस्कृत में ग्रंथ खे। शंकराचार्य के ग्रंथों का जितना अध्ययन दक्षिण में होता है, उत्तर में ससे कम अध्ययन नहीं होता। महाराष्ट्र के ज्ञानदेव, तुकाराम आदि संतपुरुष कराचार्य के ही शिष्य थे। उधर बंगाल में रामकृष्ण परमहंस, स्वामी वेकानंद भी शंकर के ही शिष्यों में से थे। लेकिन इन दिनों अंग्रेज इतिहासकारों आर्य-द्रविड़ का भेद सिखाया, जिसके कारण यहाँ के लोग बेवकूफ बने हैं।

कुछ लोग तो यहाँ तक बोलने लगे हैं कि हम अपनी खिचड़ी अलग ायेंगे, अपना छोटा-सा घर बनायेंगे। अरे, तुम्हारा तो कन्याकुमारी से लेकर श्मीर तक—सारे भारत पर हक है, फिर संकुचित क्यों बनते हो? जिस जमाने रेल, हवाई जहाज आदि आमदरफ्त के साधन नहीं थे, उस जमाने में भी होंने सारे हिन्दुस्तान को एक माना। तो आज हवाई जहाज आदि के जमाने हम छोटे कैसे बन सकते हैं? शंकराचार्य ने एक बड़ा पराक्रम किया। दुस्तान के चार सिरों पर चार आश्रम स्थापित किये, उत्तर में बद्रीकेदार, क्षिण में शृंगेरी, पूरब में जगन्नाथपुरी और पश्चिम में द्वारिका। उन आश्रमों बीच डेढ़ हजार मील का फासला था। उन दिनों एक आश्रम के शिष्य दूसरे आश्रम में सलाह-मशविरा करने के लिए जाना हो तो दो साल

वैज्ञानिक की मति भी डाँवाडोल

आज दुनिया की हालत ऐसी है कि प्रत्येक राष्ट्र भयभीत दिखाई दे रहा है। इस समय दुनिया में जितना भय का साम्राज्य है, उतना पहले कभी नहीं था। इन दिनों बड़े जोरों के साथ ऐटम और हाइड्रोजन बम के प्रयोग चल रहे हैं, जिससे दुनिया की हवा बिगड़ रही है। जिस तरह बच्चे दिवाली में पटाकों का खेल खेलते हैं, उसी तरह इनका यह खेल चल रहा है। इधर रूस प्रयोग करता है, तो उधर अमेरिका, इंगलैण्ड भी उसमें अपना जोर लगा रहा है। फ्रान्स बेचारा अलग रो रहा है कि 'भगवन्, हम कितने दुर्दैवी हैं कि हमारे पास ऐसे बम बनाने के लिए पैसा नहीं है!' यह चार बड़ों की कहानी है, जो बिलकुल कमर कस कर दुनिया की हवा बिगाड़ने के लिए तैयार बैठे हैं। दुनिया के वैज्ञानिकों ने जाहिर किया है कि लड़ाई की बात तो छोड़ ही दीजिये, पर इन बमों का प्रयोग ही करना खतरनाक है।

सोचने की बात है कि इन वैज्ञानिकों ने ही ये सारे बम बनाये हैं और अब वे ही उसका निषेध कर रहे हैं। इसका मतलब यह है कि वैज्ञानिक पेट के लिए गुलाम बनकर हुक्म के मुताबिक काम करते हैं। वे अपनी आजादी भूल गये हैं। वैज्ञानिकों को हमेशा अपनी आत्मा की प्रतिष्ठा रखनी चाहिए। उन्हें यह जाहिर कर देना चाहिए कि वही शोध हम करेंगे, जिससे दुनिया का कल्याण हो, हम किसी के हुक्म से काम नहीं करेंगे। किंतु इन दिनों साम्राज्य-वादियों का हुक्म होते ही ये वैज्ञानिक ऐसे शस्त्रास्त्र बनाने के लिए जुट जाते हैं। औरों का क्या नाम लें, बेचारे छोटे-छोटे वैज्ञानिक पेट के लिए दास बन ही जाते हैं, परन्तु आईन्स्टीन जैसे महान् वैज्ञानिक ने भी किसी जमाने में एटम बम बनाने के लिए उत्तेजन दिया था। उसे लगा कि अगर ये शस्त्रास्त्र बनें, तो शायद दुनिया हिंसा से बच सकेगी। इस तरह इतने बड़े वैज्ञानिक की बुद्धि भी डाँवाडोल हो गयी।

महाभारत की कहानी है, द्रौपदी को सभा में लाया गया और सवाल पूछा गया था कि, क्या द्रौपदी माल है? क्या उसपर किसी का हक हो सकता है?'

मतलब यह है कि जो नम्र होता है, वही ऊँचा बनता है। जो चाहता है कि मेरी सत्ता किसी पर भी न चले, उसीकी सत्ता चलती है। जो चाहता है कि मेरी सत्ता दूसरों पर चले, उसकी खुद पर ही सत्ता नहीं चलती, फिर दूसरों पर क्या चलेगी? हिटलर ने कितना पैसा खर्च किया, कितनी बड़ी सेना बनायी, कितने मनुष्यों से त्याग करवाया। अगर वह यह सारा दुनिया की सेवा के लिए करता, तो आज दुनिया का प्रियपात्र बन जाता।

आजादी के मानी क्या है

आजादी के मानी क्या है, यह आपको समझ लेना चाहिए। ६०–७० साल पहले की बात है। इटली ऑस्ट्रेलिया के कब्जे में था। उस समय मेजिनी, गैरीबाल्डी आदि नेता उसकी आजादी के लिए कोशिश करते थे। आखिर इटली आजाद हुआ, तो हम हिन्दुस्तानी भी इटली के गाने गाने लगे। लेकिन आजाद होने के बाद इटली ने क्या किया। उसने दूसरे देशों पर कब्जा करने की नीयत रखी। उसका आजादी का प्रेम कहाँ गया? समझना चाहिए कि दूसरों के कब्जे से हम मुक्त हो जायँ, इसकी कोशिश करने से ही आजादी का पूरा निश्चय नहीं होता, वास्तव में हम स्वतंत्रता-प्रेमी हैं या नहीं, इसका पता उससे नहीं चलता। उसका पता तो तब चलता है, जब हम उन्हें मुक्त करें, जिन्हें हमने गुलाम बना रखा है।

हमने बहुत बार कहा है कि जिसके घर में तोता पिंजड़े में है, वह स्वतंत्रता-प्रेमी नहीं। पांडिचेरी आजाद हो गयी, भारत आजाद हो गया। लेकिन वह स्वतंत्रता-प्रेमी है, यह पूरी तरह सिद्ध नहीं हुआ है। स्वतंत्रता-प्रेमी की पदवी तब प्राप्त होगी, जब हम अपने गुलामों को मुक्त करेंगे। हमें सोचना चाहिए कि हमने किन्हें गुलाम कर रखा है। हम अगर स्वातंत्र्य-प्रेमी सिद्ध हो जायँगे, हमारे घर के गुलाम को, जिनका हमने शोषण कर रखा है, उन शोषितों को जिनको हम दबाते हैं, उन पीड़ितों को जब हम अपनी बराबरी में लायेंगे, तभी सारी दुनिया में शान्ति की स्थापना कर सकेंगे। भारत में और इस छोटी-सी पांडिचेरी में ऐसी ताकत है कि वे कुल दुनियापर प्रकाश डाल सकते हैं।

पांडिचेरी
८-७-'५६

नहीं है, आपको जो ग्रन्थ अच्छा लगे, पढ़ सकते हैं। यह भारतीय संस्कृति है। यहाँ के प्रमुख बाशिन्दों, हिन्दू लोगों की मनःस्थिति और भावना का असर दूसरोंपर भी हुआ है। हमने पूछा कि तमिलनाड में कौन-सा ग्रन्थ सब लोग पढ़ते हैं? तो जवाब मिला: ऐसी कोई किताब नहीं है। कोई "कुरल" पढ़ता है, कोई 'तिरुवाचकम्' पढ़ता है, तो कोई गीता। जिस ग्रंथ से जिसकी आत्मा को तृप्ति होती है, वह उस-उस ग्रन्थ को पढ़ता है। भारत में प्राचीन काल से विचारों की बहुत उदारता रही है। इसलिए हम भिन्न-भिन्न लोगों की भावनाओं को अच्छी तरह सहते और उनका स्वागत भी करते हैं। इसीलिए हिन्दुस्तान में दुनिया भर के लोग आकर रहे हैं, जैसा कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गाया है: **'भारतेर महामानवेर सागर-तीरे।'** यह भारत महामानवों का समुद्र है।

मुसलमान लोग कहते हैं कि 'कुरान' ही एक किताब है और दूसरी कोई किताब नहीं है। ईसाई कहते हैं कि 'बाइबिल' ही एक किताब है और कोई किताब ही नहीं। इस तरह का आग्रह हिन्दुओं में नहीं है। हमने ऐसे कई हिन्दू देखे हैं, जिनमें हमारे कुछ मित्र भी हैं, जो बहुत प्रेम से बाइबिल पढ़ते और कहते हैं कि उसमें से हमें स्फूर्ति मिलती है। यह जो उदारता है, वह स्वतंत्रता का मूल है। इसीलिए हम आशा रखते हैं कि हम हिन्दुस्तान में सच्चा स्वातंत्र्य प्रकट करेंगे।

परमेश्वर में मस्त भारत

एक घटना मैं आपके सामने रख रहा हूँ, जो कोई छोटी नहीं है। हिन्दुस्तान का कुल इतिहास देखने पर यह चमत्कार दीख पड़ता है कि हिन्दुस्तान जब वैभव के शिखर पर था और इसके हाथ में अत्यधिक सत्ता थी, उस समय भी हिन्दुस्तान के किसी भी राजा ने बाहर के किसी भी मुल्क पर आक्रमण नहीं किया। यहाँ से धर्म-प्रचार के लिए बौद्ध भिक्षु और उनके संघ निकल पड़े, पर वे अपने साथ कोई सत्ता नहीं ले गये। वे चीन, जापान, मलाया, लंका और इधर एशिया माइनर तक गये, परन्तु उनके साथ सत्ता का कोई संबंध नहीं रहा। वे केवल प्रेम और ज्ञान लेकर गये थे, विचार समझाने गये थे। यह

है। शिव से अलग शक्ति, राक्षसी है, विनाशकारी-संहारिणी शक्ति है। हाथ में शस्त्रास्त्र धारण किये हैं परन्तु छाती में धड़कन है और वे समझते हैं कि हम निर्भय बने, क्योंकि सामनेवाले के पास वह शस्त्र नहीं है। अगर उसके पास भी यह शस्त्र आ जाय, तो इनका शस्त्र निकम्मा साबित होगा।

समझने की बात है कि बहादुरी और निर्भयता शस्त्रास्त्रों का नहीं, आत्मा का गुण है। इस गुण को हमें प्रकट करना चाहिए। राजनैतिक आजादी प्राप्त हुई, इसके मानी यह है कि हमारा जो खेत हमारे हाथ में न था, वह हाथ में आ गया। अब तो उसमें बोना है, मेहनत-मशक्कत करनी है, तब कहीं फसल आयेगी और फिर हम भोग कर सकेंगे। खेत आने से भोग का आरंभ होता है, यह समझना गलत है। इसलिए राजनैतिक आजादी के बाद 'कर्मयोग' का आरम्भ होना चाहिए। आध्यात्मिक उन्नति का क्षेत्र तबतक नहीं खुलता, जब तक राजनैतिक आजादी प्राप्त नहीं होती। अब आजादी के बाद पांडिचेरी और भारत को आध्यात्मिक उन्नति का क्षेत्र खोलना चाहिए। भारत पर यह जिम्मेवारी है, क्योंकि हिन्दुस्तान के इतिहास में किसी राजा ने बाहर के देशों पर आक्रमण नहीं किया। इस देश के लोगों को इसका भान होना चाहिए कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हमारे सामने दुनिया की सेवा करने का मिशन उपस्थित है। हरएक देश का अपना-अपना मिशन होता है। सारे विश्व में सामंजस्य निर्माण और अविरोध की स्थापना करने का मिशन भारत को प्राप्त हुआ है। इस आध्यात्मिक कार्य के लिए हमें तीन प्रकार के कार्य करने होंगे।

सब सेवा में लगें

सर्वप्रथम बात यह है कि हमें देश में एकता स्थापित करनी होगी। हमारा देश बड़ा है, इसलिए अगर उसमें एकता रही, तो वह बड़ा बलवान् बनेगा। और यदि एकता न रही, तो उसकी यह बड़ाई ही उसकी कमजोरी साबित होगी। जिस देश में भिन्न-भिन्न प्रकार के भेद, विरोध आदि पड़े हों, वह देश जितना बड़ा होता है, उतना ही उसके लिए खतरा है। आपको अगर भेदों को जिलाना

उनमें कभी एक-दूसरे से मेल नहीं मिलता। चाहे शंकर-रामानुज हों या कोई मामूली मनुष्य, वे बड़े तत्त्वज्ञानी तो हम छोटे तत्त्वज्ञानी, उनके बड़े सिद्धान्त तो हमारे छोटे। और हर कोई अपने-अपने सिद्धान्त पर अड़ा रहेगा।

यहाँ पेड़ लगाने की बात हो, तो एक कहेगा नीम का लगाओ, दूसरा कहेगा आम का और तीसरा कहेगा कि पेड़ ही मत लगाओ। इस तरह तीन तत्त्वज्ञानी हो गये—नीमवादी, आमवादी और बिनवादी। इस तरह हमारे लोग तत्त्वज्ञानी होने के कारण बारीक-सा भी भेद नहीं सहते और छोटी-छोटी बात में पक्षभेद बना लेते हैं। बंगाल में तो गंगा की जितनी धाराएँ हैं उतने पक्षभेद हैं। हमने विनोद में कहा कि गंगा की धाराओं को एक करने का प्रयत्न करो, तो आपके प्रदेश की एकता बनेगी। हमारे देश में पहले से ही जातिभेद पड़े हैं। पेड़ की पत्तियाँ गिनी जा सकती हैं, पर हिन्दुस्तान की जातियाँ नहीं। धर्मभेद, भाषाभेद सब हैं ही और अब इसके साथ पक्षभेद भी जोड़ दिया गया है। हर कोई कहता है कि हमारी अलग राजनैतिक विचारधारा (पोलिटिकल आइडियोलॉजी) है। हम पूछना चाहते हैं कि देश की भलाई का काम हो, गाँव में स्वच्छता रखनी हो, सबको खाना मिलने की व्यवस्था करनी है, तो उसमें समाजवाद, साम्यवाद, सर्वोदय आदि सब कहाँ आते हैं? इस हालत में सब मिलकर एक कार्यक्रम क्यों नहीं बनाते? जिन कामों के बारे में वाद हों, उन्हें छोड़ सकते हैं। लेकिन देश में निर्विवाद काम कुछ तो जरूर होंगे ही। दारिद्र्य अद्वितीय पड़ा है, विषमता, जातिभेद, छूआछूत मिटाना है, हमारे धर्मक्षेत्र तो अस्वच्छता के सागर बन गये हैं।

एक जगह हमें एक तालाब दिखाया गया और कहा गया कि इसमें स्नान करने से स्वर्ग जा सकते हैं। हमने कहा कि इस गन्दे पानी से स्नान करने से स्वर्ग जाने के बजाय हम अपने घर के स्वच्छ पानी से स्नान करके इसी दुनिया में रहेंगे। अज्ञान की कोई कमी ही नहीं है। हिन्दुस्तान की भिन्न-भिन्न भाषाओं में अनंत साहित्य पड़ा है। किन्तु हमारे लोग पढ़ना-लिखना भी नहीं जानते। इतना सारा कार्य सामने पड़ा है, तो उसमें मतभेद है कहाँ? ये सारे काम पूरे करके फिर अपनी-अपनी विचारधारा पर जोर लगाओ।

के लिए उनके मन में प्रेम पैदा होगा, दिल से दिल जुड़ जायँगे। फिर संपत्तिदान देनेवाले भी आगे आयेंगे। हमने व्यापारियों से कहा है, देश का आदर हासिल करना तुम्हारे हाथ में है। व्यापारियों में व्यवस्थाशक्ति और दयाभाव होता है। हिन्दुस्तान में व्यापारी को एक धर्म, एक मिशन दिया गया है। वह अपने वैश्यधर्म का ठीक से आचरण कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इस तरह भूदान में जनशक्ति और प्रेमशक्ति के जरिये विषमता मिटाकर, समता की स्थापना करने की बात है।

निर्भयता सर्वश्रेष्ठ गुण

तीसरी बात यह है कि देश में निर्भयता आनी चाहिए। कोई हमें डराकर हमसे कोई काम कराना चाहे, तो हम वह हरगिज न करें। बच्चों से भी हम यही कहना चाहते हैं कि तुम्हारे माता-पिता या गुरु तुम्हें पीटें, तो उनकी बात हर्गिज मत मानो। जुल्मी लोगों के जुल्म की सारी ताकत भयवृत्ति में है। मनुष्य की देह को मार-पीटकर वे उसे अपने वश में करना चाहते हैं। हमें ताज्जुब होता है कि जो बच्चे अपने माता-पिता पर पूर्ण निष्ठा रखते हैं, माता-पिता को उन्हें भी पीटने की जरूरत क्यों महसूस होती है? वे कहते हैं कि बच्चों को सद्गुण सिखाने के लिए पीटना आवश्यक है। अगर बच्चा ठीक समय पर स्कूल नहीं जाता, तो उसे पीटना पड़ता है। लेकिन पीटने से बच्चे में नियमितता का गुण आ भी जाय, पर उसके साथ उसे डर भी सिखाया जाता है। अब उसे आगे कोई भी पीटकर चाहे जो काम करवा सकता है। इस तरह निर्भयता खोकर नियमितता का गुण पैदा किया, तो रुपया गँवाकर पैसा कमाने जैसा ही हुआ।

मैंने ऐसे कई लड़के देखे हैं, जो बोर्डिंग में सुबह ठीक समय पर उठते हैं, पर घर जाने पर देरी से उठते हैं। क्योंकि वहाँ उनसे जबर्दस्ती से काम लिया जाता है। इससे बिलकुल उल्टी बात हमने आज 'अरविन्दाश्रम' में देखी। वहाँ के लड़कों को पूरी आजादी होती है। लड़का क्लास में नहीं आता है, शिक्षक ही फेल माना जाता है, क्योंकि उसने अच्छा नहीं सिखाया होगा। तो क्या आप समझते हैं कि आश्रम के लड़के बेवकूफ पैदा होंगे, उन्हें ज्ञान कम मिलेगा?

उनका असर दुनिया भर अव्यक्त रूप में हो रहा है। धीरे-धीरे व्यक्त होगा। उन्होंने यहाँ आश्रय लिया। भारती ने भी यहीं आश्रय लिया। हम आशा करते हैं कि ऐसी स्वातंत्र्यप्रेमी भूमि के नागरिक हमारी इन बातों को अपने जीवन में लायेंगे।

पाण्डिचेरी
६-७-'५६.

भूदान और ढोंगी लोग : १८ :

आज एक भाई मिले, जिन्होंने कहा कि यह काम तो बहुत अच्छा है, पर इसमें कुछ ढोंगी लोग भी काम करते हुए दीख पड़ते हैं। हमने कहा कि ऐसी कोई योजना नहीं, जहाँ ढोंगी लोगों ने प्रवेश न किया हो। फिर भी हम इतना कह देना चाहते हैं कि इस आन्दोलन में जो ढोंगी हैं, वे कम-से-कम हैं। क्योंकि इसमें उन्हें कष्ट उठाना पड़ता है, पैदल घूमना पड़ता है, गाँव-गाँव जाकर लोगों को समझाना पड़ता है, धूप, ठंड और बारिश सहनी पड़ती है। इसलिए इसमें ढोंग करनेवाले एक-दो आकर ढोंग कर सकते हैं। वैसे हम भी समझते हैं कि इसमें पूरे दिल से काम करो तो तुम्हारी शोभा है, नहीं तो हँसी होगी। इस काम की कोई हँसी नहीं होगी, क्योंकि लोग उसे अच्छी तरह से समझते हैं। उनके मन में श्रद्धा पैदा हुई है कि बाबा का काम शुद्ध-बुद्धि तथा धर्म-वृत्ति से चल रहा है और उसमें गरीबों को राहत देने की दृष्टि है। बाबा का सिर्फ इतना ही उद्देश्य नहीं, बल्कि यह भी उद्देश्य है कि भूमिवान् और श्रीमान् लोग अपना कर्तव्य समझें, उनके और गरीबों के बीच हार्दिक प्रेमभावना पैदा हो।

ढोंगियों का रहना भी हमारा दोष

मैंने इस भाई से यह भी कहा कि आपके जैसे लोग बाहर रहकर टीका करते रहेंगे, तो कैसे चलेगा? आप स्वयं कुछ काम करोगे या सिर्फ दूर खड़े

ही होना चाहिए, पुरुष नहीं ? और क्या वह अन्धा होना चाहिए, आँखवाला नहीं ? क्या न्याय-देवता का काम कागज-कलम से न चलेगा ? उसे तराजू ही चाहिए ? वास्तव में ऐसा कुछ नहीं, ये सारे संकेत हैं। न्याय-देवता को आंखें नहीं, इसका अर्थ यही है कि न्यायाधीश पक्षपात नहीं करता। हाथ में तराजू की सीधी डंडी और दो पलड़ों का अर्थ है, न्याय के साथ करुणा और दया भी मिश्रित रहे।

इसी तरह अन्य देवताओं की जो विभिन्न मूर्तियाँ होती हैं, वे भी गुणों का संकेत ही हैं। शेषशायी भगवान् को साँप के बिछौने पर सोते हुए दिखलाते हैं। उसका भावार्थ यही है कि वे अत्यंत भय के प्रसंग में भी परम शान्त रहते हैं। आराम-गद्दी पर शान्ति से सोनेवाली तो दुनिया है ही, पर साँप के बिछौने पर शान्ति से बैठना ही नहीं, सोना भी कोई सादी बात नहीं। भगवान् शान्तमूर्ति हैं, यही वे दिखलाना चाहते हैं। जहाँ अत्यंत भय हो, वहाँ भी शान्ति बनाये रखना ही सच्ची शान्ति है। इस तरह परमशान्ति बताने के निमित्त ही वह चित्र खड़ा किया गया है। इसी तरह भिन्न-भिन्न देवताओं की मूर्तियों में भिन्न-भिन्न गुणों के दर्शन होते हैं। वास्तव में ईश्वर अनेक नहीं, एक है। अगर अपना हृदय शुद्ध किया जाय, तो उसमें हरएक को उसकी ध्वनि सुनाई पड़ेगी।

ईश्वर के गुणों का चिंतन

ईश्वर के गुण अनंत हैं। ईसा ने कहा है : 'गॉड इज लव'-परमेश्वर प्रेम हैं। इस तरह उन्होंने परमेश्वर को प्रेमरूप में देखा। उपनिषदें कहती हैं कि 'सत्यं ब्रह्म'—परमेश्वर सत्यरूप है। तो उन्होंने ईश्वर को सत्यरूप में देखा। मुहम्मद पैगंबर ने कहा है कि 'रहमाने रहीम है' याने ईश्वर दयामय है। तो उन्होंने ईश्वर को करुणा के रूप में देखा। करुणा या सत्य की मूर्ति मूर्ति के रूप में अलग बना सकते हैं। इसी तरह परमेश्वर की भी प्रेमस्वरूप, दयास्वरूप मूर्तियाँ बना सकते हैं। इन सब मूर्तियों के बनाने का अर्थ यह नहीं कि परमात्मा भी इतने हैं। ईश्वर में अनेक गुण हैं। उन सबका हम एक साथ ध्यान-चिंतन नहीं कर सकते। जिन गुणों की हमें अत्यंत आवश्यकता है, उन्हींके

आसमान के नीचे जितना एकता का भाव होता है, उतना किसी मंदिर में नहीं। चर्च और मंदिरों की दीवारों से हृदय में भी दीवारें आ जाती और वे संकुचित हो जाते हैं। इसलिए दुनिया में विभिन्न धर्मों के बीच झगड़े चलते हैं। जो धर्म एकता के स्थापनार्थ निर्माण हुआ, वही भेद निर्माण करता है।

इसके सिवा कई प्रार्थना-मन्दिर में बहनें जाकर नहीं बैठ सकतीं। मस्जिद में भी पुरुष ही बैठते हैं, स्त्रियों को प्रवेश नहीं मिलता है। सन् १९४८ की बात है। मैं अजमेर में एक बड़ी मस्जिद देखने गया था। मुसलमानों ने मेरा बड़ा स्वागत किया। वह स्थान 'हिन्दुस्तान का मक्का' माना जाता है। उन दिनों हिन्दू-मुसलमानों के बीच बहुत झगड़े चल रहे थे। अजमेर में मुसलमानों को बड़ा खतरा मालूम हो रहा था। मैं वहाँ सात दिनों तक रहा। मैंने सबको समझाया कि इस तरह झगड़ा करना ठीक नहीं। फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमान मान गये और मस्जिद में ही प्रेम से एक साथ बैठकर सबने प्रार्थना की। दूसरे दिन नमाज के समय पुनः मैं पहुँचा। देखा, सारे भक्तजन बहुत शान्ति से बैठे थे। उसमें एक भी स्त्री न थी। उन लोगों का मुझपर बड़ा ही प्रेम और विश्वास रहा। हरएक ने आकर हमारे हाथ का चुम्बन किया। यह कार्यक्रम आधा-पौन घंटे तक चला। आखिर मुझे जब चंद बातें कहने के लिए कहा गया, तब मैंने कहा : 'आपकी शान्तिमय प्रार्थना देख मुझे बड़ी खुशी हुई। किंतु यह न समझ सका कि ईश्वर की प्रार्थना में भी स्त्री-पुरुष का भेद क्यों कायम रखा जाता है? मुसलमानों को अपने रिवाज में इतना सुधार करना ही होगा।'

आज की हमारी प्रार्थना किसी मंदिर या मस्जिद में नहीं, बल्कि आसमान के नीचे है, इसलए अभेद है। यहाँ स्त्री-पुरुष दोनों बैठे हैं, सब धर्मों के लोग इकट्ठे हैं। इसलिए हम सब बड़े प्रेम से परमेश्वर के गुणों का चिंतन करें।

कड्डलोर (दक्षिण अर्काट)
११-७-'५६

बदल जायगा ? नहीं, ऐसा करेंगे, तो प्रतिष्ठा मारने को मिलेगी। उससे क्रान्ति न होगी, क्योंकि पुराने समाज में मारने को तो प्रतिष्ठा प्राप्त है ही। बच्चे ने गलती की, तो बाप एक तमाचा लगाता है। नागरिक ने गलत काम किया, तो पुलिस डंडे से पीटती ही है। यह पुराने समाज का मूल्य है। फिर हम भी उसी मारने-पीटने का आधार लेंगे, तो पुराना मूल्य और पुराना समाज ही कायम रहेगा। फिर तो स्त्रियाँ भी आगे नहीं आयेंगी, क्योंकि मारने-पीटने में पुरुष ही जोरदार होते हैं। फिर तो पीटनेवालों का ही राज्य होगा।

रूस में कम्युनिस्टों ने वादा किया था, मार्क्स-लेनिन ने कहा था कि 'शस्त्र से क्रान्ति करेंगे, तो जनता के हाथ में सत्ता आ जायगी और उसके बाद राज्य-सत्ता खत्म हो जायगी'। किन्तु क्या वह बना ? वहाँ जिनके हाथ में शस्त्र आ गये, उनके हाथ में वे कायम रहने के लिए रह गये और उन्हींकी सत्ता चली। जब स्टालिन की सत्ता चलती थी, तो क्या मजाल कि क्रुश्चेव भी उसके विरुद्ध कुछ कह दे। किन्तु स्टालिन की मृत्यु के बाद अब वह उसे गालियाँ भी देने लगा है, सबूत पेश कर रहा है कि स्टालिन कितना जालिम था, कितना सख्ती से बरतता था। इस तरह स्पष्ट है कि एक बार जिनके हाथ में तलवार आ जाती है, तो फिर उसके हाथ से वह सारी दुनिया में बँटती नहीं, वह कुछ लोगों के हाथ में ही कायम रह जाती है। सारांश, अगर हम मारकर या हिंसा पर श्रद्धा रखकर काम करेंगे, तो समाज में नये मूल्य न आयेंगे, पुराने मूल्य ही कायम रह जायँगे। इसलिए हमें पुराने मूल्यों में पूरा परिवर्तन करना चाहिए।

जो लोग क्रान्ति की बात करते और हिंसा से पूरी-क्रान्ति हो जाने की उम्मीद रखते हैं, वे क्रान्ति को जानते ही नहीं। क्रान्ति तो तब होती है, जब मनुष्य के विचार में परिवर्तन होता है। क्रान्ति सिर काटने से नहीं, सिर बदलने से होती है। अगर हम अन्दर के दिमाग को बदलने की हिम्मत न करेंगे, तो क्रान्ति न होगी। हमें समाज के मूल्य बदलने हैं, मालकियत मिटानी है, किन्तु यह सब समझा-बुझा कर, प्रेम के और अहिंसा के तरीके से करना है।

लोकशिक्षण से राज्यविलयन

यह काम नया मानव करेगा। पूछा जा सकता है कि नये मानव का कैसे

हम गाँव-गाँव जाकर एक सादी-सी बात समझा रहे हैं। हम किसी गाँव में रहते हैं, तो हमें अपने पड़ोस के भाइयों के सुख-दुःख में हिस्सा लेना चाहिए। जानवर और मनुष्य में यही फर्क है। मनुष्य दूसरे के लिए त्याग करके आनंद और सुख हासिल करता है, यही आध्यात्मिक सुख है। एकादशी का व्रत जानवर को मालूम नहीं रहता। वे अपने ही सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होते हैं। हिरन के दुःख से शेर को सुख होता है। सारांश, दूसरों को लूटकर संपत्ति इकट्ठा करना, यह मानवस्वभाव नहीं, पशुस्वभाव है। इसलिए दूसरों को दान देना, करुणा प्रकट करना यही धर्म का लक्षण है। यही सच्चा भक्तिमार्ग है। करुणा को ही 'भक्ति' कहते हैं। हम सब परमेश्वर की संतान हैं, इसलिए हमें सब पर समान प्रेम होना चाहिए। उनके दुःख का निवारण करना ही भक्तिमार्ग है। स्वामीजी (कुंड्कुडि के मठाधिपति) ने हमें आज अपना विचार यह बताया कि 'वे भूदान में इसीलिए काम करते हैं कि इससे गरीबों का दुःख-निवारण होता है। इसके बिना वे उन्हें भक्तिमार्ग सिखा नहीं सकते। जिन्हें रोज का खाना ही नहीं मिलता, उन्हें भक्तिमार्ग का आकर्षण नहीं हो सकता। प्रसाद मिलने पर ही भक्ति उन्हें खींचेगी।' स्वामीजी की यह बात सुनकर हमें खुशी हुई, क्योंकि यह सही बात है। भूखे को परमेश्वर का स्मरण कराना गलत है, जब कि हमने खाया हो, हम उसके अधिकारी नहीं हो सकते।

सहानुभूति का जीवन ही भक्तिमार्ग

दरिद्रों को भक्ति की दीक्षा देनी हो, तो उन्हें खिलाना चाहिए। यह एक सत्य वस्तु है। इससे भी बेहतर और बड़ा सत्य है कि जब भूखे हमारे सामने हैं और हम खाते हैं, तो हमें भक्ति नहीं सधेगी। भूदान-यज्ञ से दरिद्र और श्रीमान्, दोनों का भक्तिमार्ग खुल गया। श्रीमान् भक्ति का नाटक करते हैं, पर उन्हें सचाई हासिल नहीं होती, क्योंकि वे आस-पास के गरीबों का दुःख दूर नहीं करते। इसलिए आज की हालत में श्रीमान् नीतिहीन बनते हैं। उन्हें भी

वे ऐसे न हों, जिनमें बहुत से लोगों का बहुत मतभेद हो। हम ऐसा कदम उठायें, जिसके बारे में सबसे सलाह-मशविरा हो गया हो और बहुत-से लोग उसे पसंद करते हों। इस तरह सोचकर कोई योजना बनती है, तो उसमें जनता की ताकत अवश्य लगती है।

रजोगुणी योजना भारत की प्रकृति के प्रतिकूल

हमारे देश में कुछ तमोगुण है, यह हमारा दोष है और कुछ सत्वगुण है, यह हमारा गुण। हमें तमोगुण का निरसन करना होगा। हममें आलस्य, अनियमितता, अव्यवस्था आदि जो दुर्गुण हैं, वे तमोगुण के लक्षण हैं। इसी तरह कुछ त्याग करने की वृत्ति, कुछ भक्ति, श्रद्धा, धर्मनिष्ठा या आदरभाव है, वह सारा सत्वगुण का हिस्सा है। उसका लाभ हमें मिलना चाहिए, उसे बढ़ावा देना चाहिए। अगर हम इनसे लाभ नहीं उठाते और रजोगुण की ही योजना करते हैं, तो काम न बनेगा। उस रजोगुण पर दोनों बाजुओं से आक्षेप आयेगा।

सत्वगुणी लोग उस ओर खिंच नहीं सकते, क्योंकि उसमें रजोगुण है। हम केवल बड़े-बड़े काम करते रहें, उनका उद्देश्य क्या है, यह ठीक मालूम न हो, फिर भी काम करते रहें, तो इस तरह उद्देश्य की सफाई के बिना कोई भी बड़ा काम करने की तरफ सात्विक लोगों का मन नहीं जाता। हम ग्रामों को किस तरह बनाना चाहते हैं, शहर और ग्रामों के बीच कैसा सहयोग चाहते हैं, हम पैसे का उपयोग बढ़ाना चाहते हैं या घटाना, हम सत्ता का केन्द्रीकरण चाहते हैं या विकेन्द्रीकरण ?' ऐसे असंख्य प्रश्न उपस्थित होते हैं। इन प्रश्नों के बारे में सफाई हुए बिना बड़े काम उठाये नहीं जा सकते। इस तरह सात्विक लोगों का आकर्षण इस राजसिक कार्यक्रम के लिए नहीं होता। वे कहते हैं कि 'यह तो आपकी भौतिक उन्नति की योजना हो रही है, इसमें जीवन के बारे में आध्यात्मिक विचार क्या है, मानसिक उन्नति के बारे में क्या विचार है ? आप इतना ही कहते हैं कि किसी तरह उत्पादन बढ़ाओ, फिर उसका ठीक ढंग से बँटवारा होता है या नहीं, इसका कोई सवाल नहीं। किस चीज

या दूध बढ़ाने और गोरक्षण की बात हो, तो सात्विक लोगों को उसमें उत्साह आयेगा। ऐसी कई मिसालें दी जा सकती हैं, जिससे सात्विक लोगों को प्रेरणा हो सकती है। जब सात्विक लोग कहेंगे कि यह योजना बहुत जरूरी है, इससे धर्म बढ़ेगा, लोग सुखी होंगे, तब उनके जरिये तमोगुणी लोगों को प्रेरणा दी जा सकेगी। तमोगुणी लोगों के परिवर्तन के लिए रजोगुण पर्याप्त नहीं, उसके लिए सत्वगुणी लोग ही चाहिए। इस तरह समाज के मूल में जाकर गुणवृत्ति के बारे में सोचने की जरूरत है।

भूदान भारत की मनोवृत्ति के अनुकूल

यद्यपि कार्यकर्ताओं की कमी के कारण तमिलनाड में अभीतक भूदान में जोर नहीं आया, फिर भी यह चीज लोगों का ध्यान खींचती है। क्योंकि भूमि-हीनों को भूमि दिलाना, दुःखियों का दुःख मिटाना सत्वगुण के अनुकूल है। इसीलिए इस काम में सात्विक लोगों की एकदम सहानुभूति प्राप्त हो जाती है। उनके जरिये न केवल तमोगुणियों पर, बल्कि रजोगुणियों पर भी हमला करना पड़ता है, क्योंकि रजोगुणी लोग जमीन को पकड़े हुए हैं। इसलिए इस आन्दोलन में सात्विक लोगों का ही उपयोग होता है। इसमें सत्वगुण की बहुत प्रेरणा है, क्योंकि इसमें कुछ-न-कुछ त्याग करना पड़ता है, दुःखियों का दुःख मिटाना होता है, इसमें धर्म का साक्षात्कार होता है, और करुणा बढ़ती है। परिणाम यह होता है कि बच्चे भी कहते हैं कि सबको जमीन मिले। उनके सामने अर्थशास्त्र की भाषा रखेंगे, तो वे कुछ न समझेंगे।

अभी आन्ध्रवालों ने अर्थशास्त्र की चर्चा करके १५० एकड़ की 'सीलिंग' (अधिकतम संख्या) बनाने की सोची। किंतु उसमें भी उन्हें डर मालूम हुआ और उन्होंने तय किया कि इसके बारे में फिलहाल नहीं सोचेंगे। वे इसके बारे में तब सोचेंगे, जब जमीनवालों को अपनी जमीन आपस में बाँटने और बेचने के लिए पूरा समय मिल जायगा। फिर वे कानून बनायेंगे, तो जमीनवालों के ही हाथ में जमीन रह जायगी, परिस्थिति में कोई फर्क न पड़ेगा। सिर्फ जो लोग 'कानून बनाओ' कहते हैं, उन्हींके लिए कानून बनाया जायगा। यह सारा रजोगुण

के दो रूप हैं। यद्यपि कुछ लोगों को तमोगुण की आवश्यकता होती है, फिर भी उनमें रजोगुण का विकार प्रधान होता है। और दूसरे कुछ ऐसे होते हैं कि उन्हें कुछ करने की जरूरत होती है, फिर भी वे कम-से-कम काम करेंगे और बाकी दिनरात सोते रहेंगे। वे व्यसनों में मस्त रहते हैं, उन्हें काम करने की रुचि नहीं होती। सोना ही उनका परमानंद है।

दोनों ओर से पाप

रजोगुणी लोग दुनिया को लूटने का कार्य करते हैं। बहुत जोरदार काम चलाते-चलाते वे हाइड्रोजन बम तक पहुँच गये हैं। अब उनकी आपस में टक्कर शुरू हो गयी है, क्योंकि रजोगुण का ठेका भगवान् ने किसी एक देश को ही नहीं दिया। दूसरे देशों में भी रजोगुण होता है। रजोगुणियों की इस आपसी टक्कर से सारी दुनिया भयभीत है। उधर रजोगुणियों की तमोगुणियों के साथ टक्कर हो रही है। तमोगुणी लूटे जाते हैं, जिसका उन्हें भान नहीं, वे आलसी और सुस्त हैं। लोग उन्हें पीड़ा देते हैं, तो उसका उन्हें दुःख भी होता है, परंतु प्रतिकार करने की न उनमें हिम्मत है, न स्फूर्ति। आखिर प्रतिकार करने के लिए भी तो कुछ मेहनत करनी पड़ती है, कुछ तकलीफ उठानी पड़ती है? उतना भी वे नहीं करते, इसलिए कष्ट सहते रहते हैं और कभी-कभी अपने बचाव के लिए वेदान्त का भी उपयोग करते हैं।

सारांश, जिन्होंने सारी दुनिया का कब्जा करने की महत्त्वाकांक्षा रखी है, वे तो पाप के ठेकेदार हैं ही, किन्तु जो उसका प्रतिकार नहीं करते, लूटे जाते हैं, दुःख भोगते रहते और सिर्फ गालियाँ देते हैं, वे भी पाप में पड़े हैं। इस तरह दोनों बाजू पाप हो रहा है। पाप के भार से पृथ्वी काँप रही है। लोग कहते हैं कि भूमि को जनसंख्या का भार हो रहा है, बड़े-बड़े नेता भी कहते हैं कि बहुत ज्यादा जनसंख्या हो गयी है, उसे कैसे घटाया जाय? इसकी योजना करनी ही होगी। पर वास्तव में दुनिया को आज जनसंख्या का नहीं, पाप का भार हुआ है। पापभार से पृथ्वी तंग आ गयी है, दीन बन गयी है।

मानसिक क्रान्ति की मिसालें

इन दिनों बहुत से लोग 'क्रान्ति' का नाम लेते हैं। ऐसे भी लेते हैं, जिन्हें वह नाम लेने का हक नहीं। वे समझते हैं कि हम जोर-जबर्दस्ती से क्रान्ति करेंगे। इतना ही नहीं, उन्होंने क्रान्ति का अर्थ ही 'खूनी क्रान्ति' कर दिया है। मान लीजिये कि इस गांव में आग लग जाय और सारा गांव जल जाय, तो क्या वह क्रान्ति होगी? अवश्य ही सब लोग जल मरेंगे, तो छोटा नहीं, बड़ा भारी फर्क होगा। परन्तु केवल बड़ा भारी फर्क होने से क्रान्ति नहीं होती। जब तक मन में क्रान्ति नहीं होती है, तब तक वह बाहर होती ही नहीं है। 'मानसिक परिवर्तन' को ही 'क्रान्ति' कहते हैं।

मैंने कई दफा मिसाल दी है कि पहले के जमाने में चोरों के हाथ काटे जाते थे, लेकिन आज उस चीज को कोई पसंद न करेगा। उल्टा लोग कहेंगे कि 'चोरों के हाथ काटे जायँगे, तो उनका काम करने का साधन ही खतम हो जायेगा और उनका भार समाज पर कायम रहेगा। इसलिए चोरों को और कोई सजा दीजिये, परन्तु उनके हाथ मत काटिये।' इस तरह समाज के विचार में फर्क हुआ, तो यह विचार-क्रांति हुई। अब कभी भी चोरों के हाथ न काटे जायँगे। बल्कि इसके आगे चोरों को जेल भी न भेजा जायगा। लोग कहेंगे कि उन्हें जेल भेजना याने उन्हें खिलाना-पिलाना उनके बीबी-बच्चों को भूखों मारना है। इसलिए चोरों को जेल में भेजने के बजाय ऋषियों के आश्रम में भेजना चाहिए, जहाँ कुछ जमीन हो और उन्हें काश्त करना सिखाया जाय। फिर कुछ समय बाद उन्हें ४-५ एकड़ जमीन दी जाय, जिससे वे आगे कभी चोरी न करेंगे।

समाज में बदल हुआ, तो यही होगा। अभी इंग्लैण्ड की पार्लमेण्ट ने प्रस्ताव किया है कि फाँसी की सजा रद्द की जाय। हम समझते हैं कि इंग्लैण्ड हिंसक है और हम हिन्दुस्तानी बड़े अहिंसक। फिर भी वहाँ यह प्रस्ताव हो भी गया और यहाँ के लोग अभी इस बारे में डाँवाडोल ही हैं। यहाँ के बड़े-बड़े नेता कहते हैं कि फाँसी की सजा बंद होगी, तो गुनाह बढ़ेंगे और मामला कठिन

इसी तरह से मुख में समता, बंधुता और हाथ में तलवार लेकर दूसरों के गले काटना है। इसमें जो विरोध है, लोग उसे नहीं समझते। यह मूर्खता बड़े-बड़े इतिहासकारों ने भी की है। हम रामायण, महाभारत के धर्मराज, द्रौपदी आदि का बहुत आदर करते हैं। उस जमाने में दौपदी के पाँच पति थे। पर क्या इस जमाने में किसी स्त्री के पाँच पति हो सकते हैं? आज मनुष्य का मन बदला है, विवाह-व्यवहार में भी क्रान्ति हो गयी है। नहीं तो एक जमाना था, जब कि विवाह की पद्धतियों में से 'लड़कियों को छीन ले जाकर शादी करना' भी एक पद्धति थी। उसी तरह हाथ में तलवार लेकर गले काटने की इन लोगों की क्रान्ति की पद्धति है।

क्रान्ति-विचार और भ्रान्ति-विचार

जैसे विचार बदलने पर मनुष्य ने अपने अनेक प्रकार के आचार बदल दिये, वैसे ही हमें मनुष्य का मन बदलकर राजनीति, समाजनीति और अर्थ-नीति में क्रान्ति लानी है। किंतु मन बदलने की बात आती है, तो कुछ लोगों की कमर ही टूट जाती है। वे कहते हैं कि ऐसी हृदय-क्रान्ति हमसे न होगी। वे केवल धर्म-विचार में ही यह न मानते, तो दूसरी बात थी; पर वे तालीम में भी इसे नहीं मानते। उन्हें यह हिम्मत नहीं कि हम ज्ञान-प्रचार करेंगे तो उसके परिणामस्वरूप बदल लायेंगे। उन्होंने मान लिया है कि मनुष्य का मन जैसा है, वैसा ही रहेगा। फिर भी वे दुखःमुक्ति चाहते हैं। इस तरह का दुःखमुक्ति का काम तो भगवान बुद्ध को भी सधा। उन्होंने दुःखमुक्ति का रास्ता बताया, पर यह नहीं कहा कि तुम्हारा मन जैसा है, वैसा ही रखो तो भी दुःखमुक्ति होगी। लेकिन इन लोगों को यह बात सधी है। वे कहते हैं कि मनुष्य का मन जैसा-का-तैसा ही रहने दो, हम बाहर से समाज में परिवर्तन करेंगे, फिर लोग सुखी होंगे, पैदावार बढ़ेगी और पैदावार बढ़ने पर झगड़े क्यों होंगे? लेकिन हम उनसे कहते हैं कि समृद्धि होने पर झगड़े होते हैं या नहीं, यह श्रीमानों के घर में जाकर देखो। जितने ज्यादा पैसेवाले हैं, उतने ही झगड़े अधिक हैं। वे यह भी कल्पना कर लेते हैं कि आगे चलकर राजसत्ता

है। आज यहाँ सबको पर्याप्त खाना नहीं मिलता। फिर लोग मिर्च, इमली खा लेते हैं, चाय, कॉफी पीकर अपना समाधान कर लेते हैं। पर इन चीजों से पोषण नहीं मिलता। इसलिए पोषण देनेवाली चीजें खूब बढ़नी चाहिए, यह तो सब समझ सकते हैं। उसके बिना आध्यात्मिक उन्नति भी नहीं हो सकती। इसीलिए उपनिषदों ने कहा था :—"अन्नं बहु कुर्वीत:" अन्न खूब उपजाओ, उसका व्रत लो, जिससे हमारे घर में कोई अतिथि आये, तो हमें उसका संकोच न मालूम हो। 'कुरल' में इसपर भी एक अध्याय है। घर में खाने का सामान कम रहा, तो अतिथि-सेवा हो सकेगी। वास्तव में देश में दो साल के लिए पूरा अनाज होना चाहिए, जिससे किसी साल बारिश कम-ज्यादा हो, तो भी कोई चिंता नहीं। अगर हम जीवन की बुनियादी चीजें नहीं बढ़ाते तो धर्म भी नहीं रह सकता। इसलिए इन वस्तुओं को बढ़ाना बहुत जरूरी है।

अन्य भौतिक विषयों का त्याग ही आदर्श

किंतु आजकल इतने से लोगों की तृप्ति नहीं होती। वे चाहते हैं कि भौतिक सुख बढ़े। अगर हो सके तो हर घर में मोटर हो, रेडियो हो, हार्मोनियम हो। इस तरह लोगों का चित्त ऐहिक सुखोपभोगों की तरह दौड़ रहा है। पश्चिम के लोगों ने तो उसका एक तत्त्वज्ञान ही बना लिया है। वे कहते हैं कि जिन्दगी के उपभोग जितने बढ़ा सकते हो, बढ़ाते चलो पर भारत का यह विचार नहीं। भारत ने अन्नवृद्धि को महत्त्व दिया है, पर दूसरे भौतिक विषयभोग बहुत बढ़ने चाहिए, ऐसा भारतभूमि नहीं मानती। इससे उल्टे भरतभूमि का यह विश्वास है कि सबके भरणपोषण के लिए हमें त्याग करना चाहिए। 'भरतभूमि' का अर्थ ही है, सबके भरण-पोषण की चिंता करनेवाला देश।

जबर्दस्ती का त्याग दुर्भाग्यपूर्ण !

समाज का पोषण तभी होगा जब हरएक व्यक्ति त्याग की भावना रखेगा। अगर व्यक्ति भोगपरायण हो जाय, तो समाज को ही त्याग करना पड़ेगा। भारत कहता है कि त्याग व्यक्ति करे और भोग समाज को मिले। इसके विपरीत बाहर के देश कहते हैं कि हरएक व्यक्ति को खूब भोग मिले, फिर

गीता सबके लिए

एक जमाना था जब भगवद्गीता का अध्ययन चंद लोग करते थे। आम समाज में उस ग्रंथ के लिए आदर अवश्य था, परन्तु उसका अध्ययन न होता था। माना जाता था कि वह ग्रन्थ संन्यासियों के लिए है, व्यवहार में काम करने वालों के लिए उसका उतना उपयोग नहीं। यह विचार बिलकुल ही गलत था। यह बात प्राचीन टीकाकारों ने भी नहीं मानी है। शंकर, रामानुज, ज्ञानदेव आदि महान् भाष्यकार गीता को हासिल हुए हैं। उन्होंने अपने-अपने अनुभव के अनुसार गीता का तात्पर्य समाज के सामने रखा। लेकिन किसी ने यह नहीं कहा कि यह ग्रन्थ सब समाज के लिए उपयोगी नहीं है। उसमें मोक्ष-धर्म जरूर है और वह प्रधान है, फिर भी जीवन में उसका अत्यंत उपयोग है, ऐसा ही सब भाष्यकारों ने माना है। बल्कि आर्य कल्पना तो यही रही कि हमारी संस्कृति का ही यह विचार है कि हम जीवन को मोक्ष से अलग नहीं कर सकते। मोक्ष-दृष्टि रखकर ही हरएक को जीवन बिताना चाहिए, फिर भी किसी कारण आम समाज में यह गलतफहमी थी कि साधारण जीवन बितानेवालों के लिए गीता का विशेष उपयोग नहीं। इस भ्रम का निरसन लोकमान्य तिलक ने किया और उसके बाद गांधीजी ने किया। फलतः आज लोगों में प्रायः इस प्रकार की गलतफहमी नहीं है। जिन्होंने इस जमाने में गीता को लोकप्रिय बनाया, उनमें लोकमान्य तिलक अग्रणी थे।

गीता के महान् भाष्यकार

मुझे बचपन के दिन याद आते हैं, जब मैं हाईस्कूल में पढ़ता था। मेरी सेकन्ड-लैंग्वेज 'फ्रेञ्च' थी, संस्कृत नहीं। इंगलिश तो चलती ही थी। इस ईश्वर-कृपा से मुझे पश्चिम की दो भाषाओं के (इंगलिश और फ्रेञ्च) साहित्य का बहुत अच्छा लाभ मिला। उस समय लोकमान्य तिलक मंडाला में छह साल की जेल भुगत रहे थे। और जाहिर हुआ था कि उन्होंने वहाँ गीता पर एक प्रबंध लिखा है। मेरे मन में तीव्र इच्छा पैदा हुई कि उनका वह प्रबंध पढ़ने लायक संस्कृत तो अपने को आनी ही चाहिए। मैंने स्वतंत्र रीति से संस्कृत का

माना है कि उनके जीवन को गीता ने आकार दिया है और तीनों ने कहा है कि 'यह ग्रंथ देश के उत्थान के लिए अत्यंत उपयुक्त है।' मैंने भी अपने जीवन की दारोमदार इसी पुस्तक पर रखी है। बचपन से सतत इसीका चिंतन-मनन करता आया हूँ। आप जानते हैं कि भूदान-यज्ञ के साथ 'गीता-प्रवचन' का भी प्रचार सहजभाव से चलता है।

गीता धर्मविशेष का ग्रन्थ नहीं

गीता सबके लिए उपयोगी है, यह तो अब सब लोगों को ध्यान में आ गया और पुरानी गलतफहमी मिट गयी। फिर भी एक और गलतफ़हमी बाकी रह गयी है। अक्सर माना जाता है, और गलती से माना जाता है, कि 'भगवद्गीता हिन्दूधर्म का ग्रन्थ है।' किंतु गीता में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि धर्म का विचार ही नहीं है। वह ग्रन्थ इन सारे पंथभेदों से परे है। वह मानवजीवन को सत्य की ओर ले जाने की राह दिखाता है। उसमें से किसी को 'आत्मज्ञान' मिला, किसी को 'भक्तियोग' का लाभ हुआ है, किसी ने उसमें से 'चित्तनिरोध' का योग साधा, किसी को उससे 'कर्मयोग' की स्फूर्ति मिली, तो किसी को उससे 'अनासक्ति' का बोध हुआ। इतने प्रकार का बोध उस ग्रन्थ ने मनुष्य को दिया। इसका अर्थ यह है कि उसके शब्द अत्यंत व्यापक हैं, बच्चों के भी काम के हैं और बूढ़ों के भी काम के। इस दुनिया के भी काम के हैं और उस दुनिया के भी काम के। वह संसार में काम करनेवाले लोगों के भी उपयोग की चीज है और मोक्ष-परायण निवृत्त मनुष्यों के भी उपयोग की। सुख में भी वह मदद पहुँचाता है और दुःख में भी। वह प्रतिक्षण राह दिखाता और किसी पर आक्रमण नहीं करता। जिसकी मनोदशा जैसी है, उसके अनुकूल उन्नतिकारक बोध उसमें मिलता है।

इस प्रकार का यह अद्भुत् ग्रन्थ सब धर्मों से पर है। अतः सभी लोगों को उसका अध्ययन करना चाहिए। यह ठीक है कि वह संस्कृत में लिखा है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि वह किसी धर्मविशेष के साथ जुड़ा हुआ है। बल्कि उसमें यह विचार लिखा है कि मनुष्य जो भी राह लेता है,

तरह उन्होंने हम सब लोगों को अद्‌भुत स्वातंत्र्य दिया है। गीता का सब-से श्रेष्ठ शब्द 'प्रज्ञा' है, याने हम मुक्त मन जिसे कहते हैं,—किसी भी प्रकार के बंधन से रहित मन—वह प्रज्ञा है। जैसे गरुड़ आसमान में बिना किसी प्रकार की रुकावट के उड़ेगा, वैसे ही विचार की हवा में बिना किसी रुकावट के उड़नेवाली स्वतंत्र बुद्धि गीता चाहती है। किंतु आकाश में मुक्तविहार करते हुए भी, पक्षी के सामने लक्ष्य होता है और उसी लक्ष्य की ओर वह जाता है, उस अपने घोंसले को वह नहीं भूलता। हमारा घोंसला, वह परमपुरुष, वह परमप्रिय परमात्मा हमारे सामने निरंतर होना चाहिए। उसकी ओर सतत दृष्टि रखते हुए, विचार के आकाश में मुक्तविहार करने की योग्यता गीता मनुष्य को देती है। ऐसा धर्मग्रंथ कौन मिलेगा, जो पढ़नेवालों को यह भी इजाजत देता है कि जँचे तो कबूल करो, न जँचे तो मत कबूल करो। सांप्रदायिक धर्मग्रंथ ऐसे नहीं होते। गीता सब संप्रदायों से परे है, इसीलिए वह तटस्थ रहकर सबको विचारों की आजादी देती है।

गीता और भूदान

मैं चाहता हूँ कि इस प्रदेश का प्रत्येक बालक, प्रत्येक बूढ़ा, प्रत्येक भाई, प्रत्येक बहन इस ग्रंथ के अमृतपान से वंचित न रहे। यह केवल पढ़ने का ग्रंथ नहीं, जीने का ग्रंथ है। इसके एक-एक शब्द के लिए जीवन न्यौछावर करना है। उसपर अत्यंत प्रेम से चिंतन-मनन करना है। अनुभवियों का अनुभव है कि मनुष्य को जीवन की कोई भी कठिनाई उसके चिंतन से आसान मालूम होती है। लोकमान्य तिलक ने अपने जीवन का आधार इसी ग्रंथ पर रखा। मुझे विश्वास है, मैं निश्चित मानता हूँ कि उनके स्मरण के दिन, हम अगर गीता का स्मरण करते हैं, तो उन्हें अधिक खुशी होगी।

मैं चाहता हूँ कि हमारे साथ जो 'गीताप्रवचन' है, उसे आप लें। आज मैंने आपसे भूदान-यज्ञ के बारे में कुछ नहीं कहा, लेकिन आपको अगर गीता मिल गयी, तो मुझे भूदान मिल ही जायगा, इसमें कोई शंका नहीं।

वलपड्डी (सेलम)
२३-७-'५६

उपासना का आध्यात्मिक स्वरूप लोगों के सामने रखा। उसी विचार को हाथ में लेकर लोकमान्य तिलक ने बिलकुल आमजनता में आन्दोलन किया। वे जनता के छोटे-बड़े सारे दुःखों को अपने लेखों द्वारा तेजस्वी भाषा में, सरकार और लोगों में बिलकुल निर्भयता से रखते थे। जनता को और दरिद्रों को कहीं भी पीड़ा या तकलीफ होते ही उनके लिए लोकमान्य तिलक ने हर जगह आवाज उठायी ही है।

अब सबकी बुद्धि गरीबों की ओर लगे

आज उनके स्मरण में हमें निश्चय करना चाहिए कि हम हिन्दुस्तान से दरिद्रता मिटा देंगे। अभी हिन्दुस्तान से दरिद्रता मिटी नहीं है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद भी वह कायम है। उसी को मिटाने के लिए लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधीजी स्वराज्य की माँग करते थे। अब वह स्वराज्य प्राप्त हो गया है। अब हम सब लोगों का ध्यान गरीबों को ऊपर उठाने में लग जाना चाहिए। जैसे बारिश में पानी कहीं भी गिरता है, तो नीचे ही जाता है, वैसे ही सब लोगों की बुद्धि गरीबों की ओर ही जानी चाहिए, तभी हिन्दुस्तान सुखी होगा। और तभी स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधीजी का स्वप्न सत्यसृष्टि में उतरेगा।

वेलूर
२३-७-'५६

और वही बुना कपड़ा किसान पहनेगा, ऐसा निश्चय होना चाहिए। आज ये दोनों बातें नहीं हैं। किसान मिल का कपड़ा खरीदते और कहते हैं कि हमें वही सस्ता मालूम होता है। बुनकर ने भी यह निश्चय नहीं किया कि हम किसान का काता हुआ सूत ही बुनेंगे। याने इनका सूत बुनने को वे राजी नहीं और उनका कपड़ा पहनने के लिए ये राजी नहीं।

इसमें दोष किसीका नहीं। दोष परिस्थिति का है। यह परिस्थिति हमें सुधारनी चाहिए। किसान कातना शुरू करें, तो बुनकरों को अच्छा सूत मिलेगा। सूत अच्छा न हो, तो बुनकर को मुश्किल हो जाती है। इसलिए अच्छा सूत निकालने की तरकीब ढूँढ़ निकालनी चाहिए। साथ ही किसानों को यह संकल्प करना चाहिए कि बुनकर जो बुनेंगे, वही पहनेंगे। किसानों की गरज खतम होनेपर ही बाद में बचा कपड़ा, शहरों में बेचा जायगा। सूत सुधारने की एक अच्छी योजना बनी है। 'अंबर चरखा' नाम का चरखा निकला है। उसका सूत करीब-करीब मिल के बराबरी का होता है। थोड़ा और अभ्यास और प्रयत्न करने से वह सूत मिल के सूत से भी ज्यादा अच्छा होगा। किंतु वही सूत हम बुनेंगे, ऐसा निश्चय बुनकरों को भी करना चाहिए। अंबर चरखे से हिन्दुस्तान की सूत की समस्या हल हो सकती है। भारत सरकार भी इसे मदद देना चाहती है।

सरकार के दो सिर

लेकिन भारत सरकार का एक अजीब ढङ्ग है। उसके दो सिर हैं। एक सिर से वह अंबर चरखे को उत्तेजन देती है और दूसरे से सोचती है कि बुनकरों को पावर लगाना चाहिए। अगर पहले सिर से पूछा जाय कि 'तुम अम्बर को उत्तेजन क्यों देते हो, मिल का सूत तो बहुत है और उसे बढ़ाया भी जा सकता है?' तो उत्तर मिलेगा : 'अंबर चरखे से ज्यादा लोगों को रोजी मिलेगी।' यह एक सिर का विचार हुआ। अब दूसरे सिर से पूछा जाय कि 'तुम करघे को पॉवर लगाने के लिए क्यों कहते हो?' वह कहेगा, 'हम बुनकरों की आमदनी बढ़ाना चाहते हैं। यदि वे पॉवर पर बुनेंगे, तो उन्हें आज से चार-छह गुना अधिक आमदनी होगी।' किंतु इससे सब बुनकरों को काम कैसे मिलेगा? पॉवर

बढ़ेगी। किसानों और नागरिकों को यह भी निश्चय करना होगा कि हम पॉवर-लूम का कपड़ा न खरीदेंगे। ऐसा कोई काम करें, तभी उसके पीछे कुछ-कुछ ताकत आयेगी, जिसे हम 'जनशक्ति' कहते हैं।

एक सिर रखने में सरकार को लाभ

सारा भूदान आन्दोलन इसी जनशक्ति के विकास के लिए चल रहा है। सरकार की ताकत जनशक्ति के बिना बढ़ नहीं सकती। उसके अच्छे काम भी बिना इसके नहीं हो सकते और बुरे काम भी इसकी मदद के बिना दुरुस्त नहीं हो सकते। सरकार कोई भगवान् नहीं कि गलती न करे, इसलिए उससे अच्छे काम भी होते हैं और गलत भी। लेकिन दोनों में जनशक्ति के के बिना चल नहीं सकता। आप यह मत समझिए कि सरकार का निषेध करना और पॉवरलूम का कपड़ा न खरीदना, सरकार के विरुद्ध होगा। कारण, सरकार आप ही हैं। जिसे आप सरकार कहते हैं, वे आपके पाँच साल के लिए चुने हुए नौकर हैं। इसलिए अगर आप अपनी आवाज उठाते, अपनी शक्ति बनाते और पॉवरलूम के बदले अम्बर चरखे के सूत का उपयोग करते हैं, तो सरकार को मदद ही होगी। क्योंकि आप यह करेंगे, तो सरकार को अपना एक सिर कटवाना होगा। फिर एक ही सिर रहेगा और वह मजबूत बनेगा, तो सरकार का काम ठीक होगा और आपका काम भी ठीक चलेगा। दो सिरवाले लोगों का काम अच्छा नहीं होता।

ईश्वर को यह मालूम है। इसीलिए उसने हमें दो हाथ, दो पाँव, दो कान, दो आँखें दी हैं, पर दो सिर नहीं दिये। दो सिर होंगे, तो एक कहेगा, इस पेड़ को काटना चाहिए, तो दूसरा कहेगा इसे पानी देना चाहिए। आखिर दशमुखी रावण की हालत क्या हुई ? उसका एक सिर कहता था, वेदाध्ययन करो। दूसरा कहता था, तपस्या करो। तीसरा कहता, दूसरे की स्त्री भगाओ। चौथा कहता, दुनिया को लूटो। और उसने ये सब काम किये, तो उसकी हालत क्या हुई ? इसीलिए, भगवान् ने यह प्रयोग करके देखा कि

दूसरों का शोषण न कर सके। आज हम ग्रामोद्योग की सिफारिश इसलिए करते हैं कि वे आज की परिस्थिति के लिए आवश्यक हैं।

ओमलूर (सेलम)
२७-७-'५६

रामायण के आक्षेपों का उत्तर : २८ :

इस प्रदेश में रामचन्द्र के लिए कुछ लोगों के मन में कुछ विरोधी भावना पैदा हो रही है। उसके बारे में एक भाई ने मेरी राय पूछी है। ऐसा रामविरोधी इस सभा में कोई है या नहीं? मैं नहीं जानता, और न जानना चाहता हूँ। केवल अपने मनोभाव और अपने अनुभव आप लोगों के सामने रखता हूँ।

रामायण पर दो आक्षेप

रामचंद्र के विरोध में यहाँ लोग जो कुछ बोलते हैं, उसमें जहाँतक मैं जानता हूँ, दो आक्षेप आते हैं। पहला यह है कि राम उत्तरभारत का मनुष्य था, और 'रामायण' में उत्तर भारत ने दक्षिण भारत को किस तरह दबाया, इसका इतिहास है। दूसरा आक्षेप यह है कि रामचंद्र का जीवन लोगों ने जितना आदर्श माना, उतना नहीं है, उसमें काफी दोष हैं।

अंग्रेज इतिहासकारों की करतूत

पहला आक्षेप बहुत महत्व का है और इसका पश्चिम के इतिहासकारों ने निर्माण किया है। जबतक उन्होंने लोगों के सामने इतिहास को उस दृष्टि से न रखा था तबतक हिन्दुस्तान के लोगों को उसकी कल्पना भी नहीं थी। अंग्रेज इतिहासकारों ने कुछ तो जान-बूझकर और कुछ अनजान में हिन्दुस्तान के इतिहास में कई प्रकार के भेद निर्माण किये। अभी मैं उसका खंडन-मंडन करना नहीं चाहता। मैं तो रामायण के बारे में अपना अनुभव आप लोगों के सामने रखना चाहता हूँ।

हिन्दुस्तान की जनता में ऐसा एक भी शख्स नहीं, जिसने रामायण को, उत्तर भारत के दक्षिण भारत पर आक्रमण के तौर पर पढ़ा हो। वह केवल एक धार्मिक कथा है और चित्तशुद्धि और भक्ति-मार्ग की अनुभूति के लिए हम लोग उसे सुनते और पढ़ते हैं।

हम कहना चाहते हैं कि दक्षिण के महाविद्वान् और ज्ञानियों ने भी रामायण का यही अर्थ किया है। इसी तमिलनाड का बहुत बड़ा ज्ञानी 'कम्बन' अगर यह महसूस करता कि यह उत्तर भारत के दक्षिण भारत पर आक्रमण का इतिहास है, तो वह रामायण क्यों लिखता ? लेकिन उसने रामचंद्र को परमात्म-विभूति ही समझकर कुल रामायण लिखी है। आप सभी जानते हैं कि तमिल भाषा में 'कम्बन रामायण' से अधिक अत्युत्तम कृति शायद ही और कोई हो। तमिल-साहित्य में हम तीन-चार बड़े ग्रंथों का नाम सुनते हैं। 'तिरुकुरल, तिरुवायमुलि, तिरुवाचकम्, तेवारम्' के बाद 'कम्बन रामायण' का ही नाम सुनते हैं। ये सभी ग्रंथ तमिल भाषा में सर्वोत्तम कोटि के माने जाते हैं। दुनिया की किसी भी भाषा के सर्वोत्तम साहित्य के साथ तुलना में रखने पर ये दूसरे दर्जे में आयेंगे, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं। बल्कि दुनिया की किसी भी भाषा के साहित्य की सर्वोत्तम कृति की बराबरी में इनका नाम आयेगा। जरा मानसशास्त्र का थोड़ा-सा अभ्यास हो, तो तुरत खयाल में आ जायगा कि अगर रामायण में किसी देश का किसी देश पर आक्रमण का ध्यान होता तो वह कभी भी इस तरह सर्वोत्तम कृति न बनती। अवश्य ही, गुलाम लोग अपने जीतनेवालों की भी 'हाँ जी-हाँ-जी' करते हैं, पर उन खुशामदी गुलामों में कोई 'कम्बन' नहीं होता।

खैर, जो हालत तमिल भाषा की है, वही 'मलयालम्' भाषा की भी है। मलयालम् में सर्वोत्तम कृति कौन-सी है, यह पूछा जाय, तो 'एलुतच्छन की रामायण' का ही नाम आयेगा। वह पुस्तक शायद उस भाषा की सर्वोत्तम किताब मानी जाती है और हरएक पढ़नेवाले के घर वह पढ़ी जाती है। अगर वह उत्तर भारत का दक्षिण भारत पर आक्रमण होता, तो उस आक्रमण का दक्षिण भारत वाले गौरव क्यों करें ?

रामायण का यही आदर और यही कल्पना कर्नाटक और आन्ध्र में भी है।

कह सकते, उसमें दोष भी हैं। आप ऐसी रामायण लिख सकते हैं, जिसमें आपके रामचंद्र में वे दोष न हों, जो पहले के रामचंद्र में थे। क्योंकि राम-चरित्र तो कोई इतिहास नहीं। अगर वह इतिहास होता, तो आपको वे जैसे थे, वैसा ही लिखना पड़ता। आप अपनी मर्जी के मुताबिक उस पर रंग न चढ़ा सकते थे। अगर शिवाजी का चरित्र लिखना हो, तो हम यह नहीं कह सकते कि आप उसे अपनी मर्जी के मुताबिक लिखें, क्योंकि वह ऐतिहासिक चरित्र है। इसलिए वहाँ जैसा बना, वैसा ही लिखना होगा। लेकिन जैसा कि मैंने कहा, राम के एक बाण से चौदह हजार राक्षसों का संहार हुआ, यह सारी घटना एक दिव्य-सृष्टि की घटनाएँ हैं, वह भौतिक सृष्टि की कल्पना नहीं। इसलिए वह वर्णन आप जैसा चाहें, वैसा बदल सकते हैं। जिन लोगों ने रामायण लिखी, उन्होंने भी जैसा उनको लिखना था वैसा ही लिखा।

तुलसी की दिव्य सृष्टि

मैंने अभी तुलसी-रामायण का जिक्र किया। उत्तर प्रदेश, बिहार आदि प्रान्तों में जिस घर में कोई पढ़ना जानता है, वहाँ बहुधा तुलसी-रामायण जरूर होगी। मैं समझता हूँ कि जैसे 'बाइबल' और 'कुरान' करोड़ों में बिकती और हरएक ईसाई और मुसलमान के घर होती हैं, वैसे ही उत्तरप्रदेश में तुलसी-दास की रामायण है। लेकिन वाल्मीकि ने जैसी रामायण लिखी, वैसी तुलसीदास ने नहीं लिखी। दोनों में बहुत फर्क है। मिसाल के तौर पर कहूँ, तो वाल्मीकि-रामायण में 'शूद्रक-वध' की कहानी है, पर तुलसीदास की रामायण में उसका पता ही नहीं है। किसी मनुष्य के कहने पर लोकनिन्दा से राम ने सीता का परित्याग किया, इसका कोई जिक्र तुलसी-रामायण में नहीं है। तुलसी का राम सीता का त्याग ही नहीं करता और न कर ही सकता है। कारण, सीता राम का ही एक अङ्ग है। जैसे महादेव के साथ उनके अंग में पार्वती जुड़ी हुई हैं, वैसे ही राम के साथ उनके अंग में सीता जुड़ी हैं। इसलिए राम ने सीता का परित्याग किया, यह कहानी तुलसी-रामायण में नहीं है। बल्कि उसमें राम स्वर्ग में गये, इसका भी जिक्र नहीं है। राम हमारे

भी मनुष्य नहीं हो सकता, जिसमें एक भी दोष न हो। जैसे रूप के साथ छाया होती है, वैसे गुण के साथ दोष भी होते हैं और तभी तो वह मानव बनता है। दूध देनेवाली गाय लात मारती है, तो उसका हम त्याग नहीं करते, पाँव हटाते और दूध लेते हैं। इसी तरह मानव अगर गुणों और दोषों से भरा है, तो उसके दोषों को सहन करना और उन्हें छोड़ उसके गुणों को लेना पड़ता है। गांधीजी ने कहा था कि 'उन्होंने हिमालय के समान बड़ी गलतियाँ की हैं', तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि उन्होंने हिमालय के जैसे बड़े काम भी किये हैं। इसलिए उनसे जो गलतियाँ हुईं, वे भी हिमालय के समान हुई होंगी। इसलिए राम के जीवन में कोई दोष दीखते हैं, तो उन्हें छोड़ दो और गुणों को ले लो। किंतु हिन्दू समाज उस व्यक्ति की ओर इस दृष्टि से देखता है कि उसका दिव्य रूपान्तर हो चुका है, उसमें जो दोष दीखते हैं, उनको भी दैवी स्वरूप आ गया है।

कृष्ण की माखन-चोरी

हर घर में भागवत् भी पढ़ा जाता है। कृष्ण भगवान् के बचपन की चोरी की कहानियाँ हर माता अपने बच्चों से कहती है। हमें दुनिया में ऐसा एक भी ग्रन्थ नहीं दीखा, जिसमें चोरी का बखान किया गया हो। हर घर में भागवत् पढ़ा जाता है, पर उसे सुननेवाला बच्चा अगर घर में चोरी करे, तो क्या माँ कबूल करेगी? नहीं, वह घर में चोरी करता है, तो माँ उसे धमकाती और कहती है कि 'अगर तू माँग लेगा, तो मैं दे दूँगी।' अगर वह दूसरे के घरमें चोरी करे और बाँटकर खाये और फिर कहे कि 'कृष्ण के मुआफिक मैंने किया', तो उसकी माँ कहेगी : 'जैसे कृष्ण को यशोदा ने पीटा वैसे मैं भी तुम्हें पीटूँगी। इसलिए यह सारा नाटक नहीं चल सकता।' कृष्ण की कथा चोरी सिखाने के लिए नहीं है, उसकी चोरी भी आध्यात्मिक बन गई, उसे दैवी रूप मिल गया और मक्खन भी दूसरा बन गया। इसलिए आज हर जगह भागवत् पढ़ा जाता है, फिर भी कोई लड़का उसमें से चोरी का बोध नहीं लेता, क्योंकि वे समझते हैं कि यह दिव्य कथा है, यह प्रभु की लीला है।

अगर हम इतने उदार धर्म में हैं, तो हमें किसी से द्वेष करने की जरूरत नहीं। जो पसंद नहीं, उसे छोड़ दें और जो पसंद हो, उसे ले लें। रामायण-भागवत् पढ़ना ही क्या मनुष्य का कार्य है? वैसे पढ़ना ही मनुष्य का कार्य नहीं। मनुष्य का कार्य है, चित्त की शुद्धि करना, आत्मा का दर्शन करना। निर्दोष हृदय ही सच्चा धर्म है। उस चित्तशुद्धि के लिए रामायण की मदद होती है, तो रामायण पढ़ो। हम अपनी गरज से रामायण पढ़ेंगे। उससे चित्त-शुद्धि नहीं होती और दूसरे से होती है, तो दूसरा ग्रंथ पढ़ेंगे। इसलिए सारे ग्रंथ हमारे लिए हैं, हम उन ग्रन्थों के लिए नहीं, ऐसा हिन्दू-धर्म कहता है। अतः इसके बारे में कोई झगड़े की बात नहीं। फिर भी अगर उनका उपयोग इस तरह विरोध बढ़ाने में करेंगे, तो हिन्दुस्तान की ताकत क्षीण होगी, बढ़ेगी नहीं।

मोरप्परु (सेलम)
१-८-'५६

अहिंसा के अंतरंग में : २९ :

आज जो सबसे बड़ी बात है, वह यह है कि वातावरण में हिंसा आयी है और हिंसा से कुछ काम बनता है, ऐसा लोगों को विश्वास हो रहा है। हाँ, कुछ काम बनता तो है, पहले भी बनता था और अब भी बनता है। लेकिन वह काम ही बेकार है और वह बनेगा, तो भी देश का नुकसान ही होगा—यह सब अहिंसा की विचार-श्रेणी में आता है।

अहिंसा की श्रद्धा पर दो प्रहार

इन दिनों अहिंसा की इस विचार-श्रेणी का जोरों से खंडन हो रहा है। वैसे बोलने में तो ठीक है, सभी अहिंसा को मानेंगे। परन्तु वास्तव में आज हिंदुस्तान की मानसिक स्थिति डाँवाडोल है। जो श्रद्धाएँ गांधीजी ने बनायी थीं, वे दो प्रकारों से टूट रही हैं : कुछ लोग उन्हें एकांगी समझकर छोड़ रहे हैं,

बहुत अच्छी बात है। आज नहीं तो कल, उधर आप आयेंगे ही, ऐसा हम समझते हैं। अभी जो कुछ कार्य आप कर रहे हैं, उसे हम भ्रममूलक कहें तो उसका कोई उपयोग नहीं। क्योंकि आप भी हमारे लिए कह सकते हैं कि 'हम ही भ्रम में हैं।' 'आप भ्रम में हैं' कहने का जितना अधिकार हमें है, उतना ही आपको भी। इसलिए वह चर्चा हम नहीं करते। फिर भी मन में हमें लगता है कि अगर हम इस तरह करते चले जायँगे, तो कहीं न पहुँचेंगे। प्राचीन काल से आज तक हम यही करते आये हैं। इससे अहिंसा का बेड़ा पार न होगा। हमें कभी-न-कभी हिंसा से बिलकुल विदा लेनी ही होगी। वह समय आज ही आया है या नहीं, यह आप देखें। हमें तो लगता है कि सब धर्मों के आचरण का अगर कोई उचित समय है, तो यही है। इसके पहले नहीं था, क्योंकि वह हाथ से छूट गया है। इसके आगे का भी नहीं है, क्योंकि वह हाथ में नहीं है। केवल यह क्षण हाथ में है। इस क्षण को हम इस इस आशा से खोयें कि आगे वह चीज हम करेंगे, तो इसमें हमें एक प्रकार का मोह दीखता है। संभव है, यह मोह न हो, और जैसा कि आप कहते हैं, 'रिअलिज्म' (वस्तुवाद) हो। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि दोनों तरफ से अहिंसा पर प्रत्यक्ष प्रहार ही हो रहा है। इस तरह स्वराज्य के बाद इन दिनों दोनों तरफ से हिंसा को काफी बल मिला है, हमें इसका मुकाबला करना होगा।

सौम्यतर सत्याग्रह

मुकाबला करने के लिए कोई-न-कोई योजना हो। पहली योजना जिसका मैं कई बार जिक्र कर चुका हूँ, यह है कि हम धीरे-धीरे सौम्य से सौम्यतर में जायँ और फिर सौम्यतर से सौम्यतम। आज एक पत्र बंगाल के चारुबाबू का आया। पढ़कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। आजकल हमने दो बार घूमना शुरू किया है, उसके कारण कई लोगों को चिन्ता हो रही है। सभी को एक चिन्ता तो देह की होती है और मुझे भी है। लेकिन चारुबाबू के पत्र में चिन्ता नहीं, उस पत्र ने मेरा ध्यान खींच लिया है। उसमें लिखा है कि 'आपने जो दो बार चलना शुरू किया है, मैं समझता हूँ कि उससे आपने सौम्य सत्याग्रह को सौम्यतर सत्याग्रह में

विचार। इसे मैं भी समझूँ और मेरे जीवन में वह विकसित हो। लोगों के जीवन में वह विकसित हो ही जायगा। जब वे विचार समझेंगे, तब उसका परिणाम आ ही जायगा। उसका ज्यादा आग्रह हमें नहीं है। विचार ही मैं समझूँगा और समझाऊँगा।

जितने अंश में क्रिया विचार-सिद्धि का साधन होती है, उतने ही अंश में उसपर जोर दूँगा। जैसे, पैदल चलना। मैं अगर पैदल नहीं चलता, तो विचार समझा नहीं सकता। इसलिए पैदल चलने का मैं आग्रह रखूँ, तो वह जरूरी है। किंतु अगर दान-प्राप्ति का आग्रह रखूँ, तो वह क्रिया परिणामस्वरूप क्रिया है। 'इतने दान-पत्र लिखवा लेने हैं, हर एक के पास जाकर समझाकर लिखवा लेना है' अगर यों मैं करूँ, तो वह सौम्य कार्य नहीं। उसमें फलप्राप्ति का आग्रह रहेगा। मैं नहीं जानता कि मैं स्पष्ट कर सका या नहीं कि कौन-सी क्रिया विचार-सिद्धि का साधन है और कौन-सी क्रिया विचार-सिद्धि का परिणाम, जिसका आग्रह हमें नहीं रखना चाहिए। लेकिन मेरे मन में कुछ इस तरह का भेद प्रकट हो रहा है।

हम अधिक विचार-परायण बनें

बहुतों को ऐसा डर लगता है कि इसका परिणाम निवृत्ति-मार्ग में होगा। पर वह मुझे इसलिए नहीं लगता कि निवृत्ति पहले से ही मेरे मन में बसी है। अब कोई ज्यादा निवृत्ति आयेगी, ऐसा संभव बहुत कम है। फिर भी मैं जानता हूँ कि क्रिया की अतिरिक्त आसक्ति न हो। साधनरूप क्रिया की आसक्ति हो। लेकिन आगे की जो क्रिया है, उसे समाज करे। समाज की तरफ से जो क्रिया होगी, उसका आग्रह हम अपने मन से हटाना चाहते हैं। मैं नहीं मानता कि ऐसा कोई आग्रह मेरे मन में पहले से भी था। किंतु जहाँ एक सामूहिक कार्य शुरू होता है, वहाँ उसके साथ के कुछ संकल्प भी आते हैं। वे सामूहिक संकल्प होते हैं। इसमें कोई खास दोष नहीं है। परन्तु धीरे-धीरे इस प्रक्रिया का जो परिणाम आया, उसे देखते हुए इससे अधिक सौम्य प्रक्रिया अर्थात् जिसमें क्रिया की तीव्रता कम हो और विचार की प्रक्रिया अधिक, ऐसी कार्य-पद्धति हमें धीरे-धीरे लेनी होगी।

उन प्रदेशों में अगर सर्वोदय मण्डल बने, तो कुछ लाभ होगा। यह 'सर्वोदय मंडल' कोई एक योजनापूर्वक बनाया जाय, ऐसा कुछ मन में नहीं। क्योंकि मैं संगठन पर बहुत ज्यादा श्रद्धा भी नहीं रखता। किन्तु चाहे वह अव्यक्त रूप में ही हो, चाहे उसका रूप भी हो जाय, पर ऐसा व्यक्त रूप हो, जो कि किसी को न जकड़े। शुद्ध विचार करनेवाले अर्थात् शुद्ध विचार का प्रयत्न करनेवाले लोग और सर्वभूत-हित में विश्वास करनेवाले, निष्काम कर्म माननेवाले, पक्षातीत और हमारे पक्षातीत विचार में भी जिनकी श्रद्धा है—ऐसे लोग इकट्ठे हों। श्रद्धा से मेरा मतलब इतना तो है ही कि तदनुसार क्रिया करने का मनुष्य प्रयत्न करे। ऐसी श्रद्धा जिनके अन्दर है, उनका एक मंडल बन सकता है।

धर्म के लिए इंगलिश में एक शब्द बड़े महत्व का है। वे 'धर्म' को 'फेथ' कहते हैं। एक 'हिन्दू फेथ' है और एक 'हिन्दू थॉट'। पर 'हिन्दू थॉट' तो चन्द लोग ही समझे हैं, 'हिन्दू फेथ' लाखों लोगों में है। ऐसे ही इस्लाम आदि फेथ हैं। फेथ में लाखों लोग हैं, उस 'विचार' में चंद लोग और कृति में उससे भी थोड़े लोग होते हैं। सर्वोदय के लिए जिनके मन में 'फेथ' है, ऐसे दस-पाँच लोग जो भी हों, उनका एक मंडल बने। वे खास विषयों पर विचार कर एक शुद्ध विचार के रूप में लोगों के सामने रख दें। अगर सम्मिलित रूप से कोई चीज रखनी है, तो वैसा करें। वैसा न करना हो, तो कुछ चर्चा कर लें और फिर अलग हो जायँ, तथा अलग जाकर वैसा कार्य करें। ऐसा सर्वोदय मंडल अगर बने, तो अच्छा रहेगा। शायद इस दृष्टि के विकास के लिए वह लाभदायी होगा।

आगे चलकर जैसे-जैसे हम जनता की तरफ आन्दोलन को ले जाने के संकल्प का अमल करते जायेंगे, वैसे-ही-वैसे आज की हमारी समितियाँ टूट जायेंगी और लोग अपनी-अपनी ताकत के अनुसार अलग-अलग काम करेंगे। सलाह-मशविरा 'सर्वोदय मंडल' से कर लेंगे। सर्वोदय मंडल का यह आग्रह न रहेगा कि उनकी सलाह पर अमल हो। लोगों पर ऐसा कोई भार न रहेगा

माणिक्यवाच्यकर से बढ़कर आकांक्षा

हमने सर्वोदय-समाज बनाने का संकल्प किया है। याने हम व्यापक समाज के अंदर कोई छोटा समाज बनाना नहीं चाहते। यही चाहते हैं कि कुल समाज ही सर्वोदय समाज बने। छोटा-सा भक्तमंडल बनाकर हम उसमें रहना नहीं चाहते, बल्कि कुल समाज का रूपांतर भक्त-समाज में करना चाहते हैं। एक तरह से देखा जाय, तो माणिकवाच्यकर ने जो कल्पना की, हम उससे एक कदम आगे जाना चाहते हैं। सवाल उठेगा कि क्या हममें यह योग्यता है? हम कहते हैं कि हाँ, है। पर इसलिए नहीं कि व्यक्तिगत तौर पर हम कोई ऊँचे दर्जे में पहुँचे हैं, वरन् इसलिए कि आज के जमाने की वह योग्यता है। आज के जमाने में जो विश्वव्यापक मानव की वृत्ति न रखेगा, वह टिक नहीं सकता। छोटे-छोटे अभिमान रखने के दिन लद चुके। विज्ञान ने मानव के दर्शन का क्षेत्र इतना व्यापक बना दिया कि विज्ञान के रहते छोटी नजर से देखनेवाला हार खायेगा। दीखने में तो यह भी दीखता है कि इस जमाने में हिंसा की शक्ति बढ़ रही है, परंतु वह इतनी विकसित इसीलिए हुई है कि अब समाप्त होना चाहती है, अहिंसा-शक्ति में परिवर्तित होना चाहती है। आज जितना चिंतन होता है, वह सारा व्यापक होता है। कोई व्यक्तिगत तौर पर संकुचित चिंतन करने की कोशिश करता है, किंतु उसके विरुद्ध प्रवाह इतना जोरदार है कि उसे व्यापक चिंतन करना ही पड़ता है।

जमाने की प्रेरणा

हमने आशा रखी और कहा था कि १९५७ में सर्वोदय-समाज की बुनियाद डाली जा सकती है। यह हमने कोई भविष्यवाणी नहीं की थी। हमें परिस्थिति का जो दर्शन हो रहा है, उसीसे यह प्रेरणा मिली। हम देख रहे हैं कि एक साल पहले कुल दुनिया सर्वोदय-समाज के जितनी नजदीक थी, उससे आज एक कदम ज्यादा नजदीक आयी है। दीखने में यही दीखेगा कि बड़े-बड़े देश एटम और हाइड्रोजन बम के प्रयोग कर रहे हैं। रूस और अमेरिका इस शस्त्र में बहुत शक्तिमान् बने हैं। इंग्लैण्ड भी उनके पीछे-पीछे जाने की कोशिश कर

है। सूर्यनारायण के प्रकाश में ये भेद नहीं रहते। इसी तरह विज्ञान के जमाने में मतभेदों का कोई मूल्य ही नहीं है। मतभेद मन के कारण होते हैं और जिस प्रकार की परिस्थिति तथा जैसे संस्कार होते हैं, उन्हीं के अनुकूल मनुष्य के मन बनते हैं। मनुष्य चाहे या न चाहे, लेकिन विज्ञान की माँग है कि उसे अपने मन को और अपने कुल मतभेदों को अलग करके सोचना होगा। भिन्न-भिन्न मनों के भिन्न-भिन्न अभिप्राय विज्ञान में डूब जाते हैं। अभी कच्छ में भूकंप हुआ। उस वक्त किसका कोई मतभेद टिका? सब आपत्ति में डूब गये। जैसे आपत्ति में मतभेद डूब जाते हैं, उससे भी अधिक उन्हें डुबाने की सामर्थ्य विज्ञान में है। विज्ञान बता रहा है कि हम सारे जुड़े हुए हैं। हम अंदर से जुड़े हैं, यह आत्मज्ञान पहले ही बता चुका था, लेकिन बाहर से भी जुड़े हैं, यह विज्ञान बता रहा है। एक जमाना था, जब लोग मानते थे कि समुद्र दो देशों के बीच रहता है, तो दोनों को अलग करता है। किन्तु आज यह माना जाता है कि दो देशों के बीच का समुद्र दोनों देशों को जोड़ता है। अमेरिका समझता है कि चीन और जापान मेरे पड़ोसी देश हैं, जिसके बीच सिर्फ आठ हजार मील लंबा समुद्र है। दिन-दिन विज्ञान आगे बढ़ रहा है। आप हमारे सामने बैठे हैं और हम आपके सामने, तो बीच के आकाश ने हमें जोड़ दिया। आज हम यहाँ बोलते हैं, तो हमारी आवाज के कुल दुनिया में जाने लायक औजार निकल गये हैं। यह सारा आकाश हमारे शब्दों को वहन करनेवाला साधन है, उन्हें रोकनेवाला नहीं। जहाँ आकाश और समुद्र जैसे तत्त्व दो राष्ट्रों को अलग करते थे, वे दो राष्ट्रों को जोड़नेवाले साबित हुए हैं, तो वहाँ मन का क्या चलेगा?

मन बदले, तो सारा प्लानिंग बदलेगा

मनुष्य का मन अगर बदला, तो वह चाहे तो जो आज है, उसे कल खतम भी कर सकता है। जिन हाथों ने ये शस्त्रास्त्र बनाये, वे ही हाथ इन्हें खतम करेंगे। जो हाथ आज इस 'प्लान' को बनाते हैं, वे ही कल इसे बदलने को बाध्य हो जायँगे। इसलिए भले ही हिन्दुस्तान को उस 'प्लान' की महिमा मालूम पड़े, लेकिन हम उसे कोई महत्त्व नहीं देते। अपने समाज में जो शक्ति है

जानता था, तमिल छोड़कर शायद संस्कृत जानता हो। फिर भी उसकी प्रतिभा व्यापक थी, हृदय विशाल था। आज हमें अपना हृदय विशाल बनाये बिना चारा नहीं है। बुद्धि तो विशाल बन चुकी है।

धर्मपुरी (सलेम)
४-८-'५६

हृदय-परिवर्तन की विधि : ३१ :

हमारे काम में जितनी बातें हैं, उनके अनेक पहलू होते हैं। लेकिन मूलभूत विचार अहिंसा का ही है। हम सब जानते हैं कि अहिंसा की प्रक्रिया हृदय-परिवर्तन पर आधृत है। हृदय-परिवर्तन की अपनी एक पद्धति है। मनुष्य कभी-कभी जानता भी नहीं कि उसका हृदय-परिवर्तन हो रहा है और कभी-कभी जान भी सकता है, ऐसी वह प्रक्रिया है। हमें इसका ध्यान रखना चाहिए कि हमारे विचार, सोचने की पद्धति आदि उसमें बाधक न हों। हमारे देश में भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्ष हैं और भिन्न-भिन्न आर्थिक विचार। चूँकि देश बड़ा है, इसलिए समस्याएँ भी बड़ी हैं। अतः अनेक विधि से विचार होते हैं, विचार-भेद पैदा होते हैं।

हृदय-परिवर्तन अपना भी

हम जब हृदय-परिवर्तन और विचार-परिवर्तन की बात करते हैं, तो हमेशा हमारे सामने दूसरों के विचार-परिवर्तन की ही बात होती है, ऐसा नहीं। हमारे अपने और दूसरों के भी विचार-परिवर्तन, हृदय-परिवर्तन की बात होती है या होनी चाहिए। इस तरफ ध्यान कम जाता है कि हमारे अपने विचारों और हृदयों का भी परिवर्तन बहुत आवश्यक है। इसलिए हृदय-परिवर्तन की यह प्रक्रिया सबके लिए लागू है। हमसे भिन्न विचार रखनेवाले के लिए ही लागू है, ऐसा नहीं।

श्रम की जरूरत

इस प्रक्रिया के बारे में मुझे जो विशेष बात कहनी थी, वह यह है कि इसमें

कि मनुष्य को यह भास नहीं होता कि मैं अपना विचार छोड़कर दूसरा विचार ले रहा हूँ। कभी-कभी ऐसा भास होगा भी, लेकिन अक्सर नहीं। अक्सर यही लगेगा कि जिस विचार को मैं मानता आया हूँ, उसीका यह नया रूप है, बल्कि अधिक शुद्ध रूप है, पर है उसीका भाषान्तर। यदि उन्हें यह लगता है कि अन्य भाषा में वही विचार प्रकट हो रहा है, तो शायद भाषा कुछ बेहतर है, लेकिन है वह मेरा ही मूल विचार, तो हम उनका खंडन न करेंगे। मैं अपनी वृत्ति इसी तरह बना रहा हूँ।

कांग्रेस का ही काम

प्रजा-समाजवादी और कांग्रेसवादी तो पहले से ही यह कह रहे थे। अब कांग्रेसवाले कुछ अधिक कहने लगे हैं कि 'यह विचार उत्तम है, हमारा ही विचार है।' पहले तो वे इस पर ऐसे भी आक्षेप करते रहे कि इससे जमीन के टुकड़े होंगे, आदि। पर अब ऐसे आक्षेप ज्यादा उठाये नहीं जाते। अब वे इसके साथ एकरूपता का नाता जोड़ते हैं। कभी-कभी कहते हैं कि यह काम और कांग्रेस का काम एक ही है। 'यह कांग्रेस का काम है', ऐसा भी कहते हैं। मैं उसका भी प्रतिवाद नहीं करता। उसमें भी कुछ भ्रम है और कुछ सत्य।

बीच में भ्रम का स्थान

मैं देखता हूँ कि हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया की एक अवस्था में भ्रम और सत्य, दोनों का होना जरूरी होता है। ऐसा मनुष्य पहले केवल भ्रम में रहता है। वहाँ से उसे केवल सत्य में जाना है। केवल भ्रम से केवल सत्य में जाने के लिए रास्ते में ऐसी भूमिका आयेगी, जब कि उसके मन में कुछ भ्रम और कुछ सत्य का आभास होगा। तब अगर हम फौरन उसका खंडन करें, तो उसका चित्र चलित होगा और एक विरोध स्थापित हो जायगा। वह यह समझ कर हमारी तरफ आ रहा है कि मानों हम ही उसकी तरफ जा रहे हैं। ऐसा मानने का उसे अधिकार है। भले ही उसमें कुछ भ्रम हो, पर कुछ सत्यांश भी हो सकता है। हम अपनी भूमिका बिलकुल छोड़ते ही नहीं, ऐसा तो है नहीं। हम भी कुछ उधर को जाते हैं और वे कुछ इधर को आते हैं। इस तरह बीच रास्ते

यह विचार भी गलत है। मैं नहीं समझता कि जिन लोगों ने यह विचार अभी प्रकट किया कि अप्रत्यक्ष चुनाव होने चाहिए, उनका पहले से कोई भिन्न विचार था। सम्भव है, पहले से भी उनके मन में वह रहा हो और किसी कारण उसे प्रकट न कर सके हों और अब प्रकट कर रहे हों। यह तो मैंने सिर्फ एक मिसाल दी।

इस तरह हृदय-परिवर्तन की कई मिसालें हिंदुस्तान में और उसके बाहर भी हो रही हैं। हमसे जिसका पहले ज्यादा मेल नहीं था, उससे अब थोड़ा ज्यादा हो गया है। जाहिर है कि मेल अगर थोड़ा ज्यादा हो गया, तो फर्क थोड़ा ही बचा है। इसलिए उस फर्क पर हम जोर न दें। बल्कि अगर वे कहते हैं कि आप और हम एकरूप हैं, तो हम भी उसे कबूल करें, यह समझ करके कि उनकी मार्फत कुछ काम हो। काम होने के बाद विचार की सफाई के लिए गुंजाइश होगी, तब हम विचार की सफाई के लिए और कोशिश करें।

पास आनेवाले को आने दिया जाय

इस तरह का मत-परिवर्तन न सिर्फ राजनैतिक क्षेत्र में ही हो रहा है, बल्कि आर्थिक क्षेत्र में भी हो रहा है। मुझे तो खुशी हुई, जब मैंने 'खादी-बोर्ड' वालों का यह प्रस्ताव पढ़ा कि 'फलाने-फलाने उत्तम कार्य का सरकार ने एक अंश तो कबूल किया, अम्बर चरखे की हद तक।' उस प्रस्ताव में वे यह भी कहते हैं कि 'अब तक हमें "सर्व-सेवा-संघ" की मदद मिली और आगे भी मिलेगी, क्योंकि सर्व-सेवा-संघ का जन्म ही इसी काम के लिए हुआ है।' मैं कबूल करता हूँ, वह प्रस्ताव पढ़ने पर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। इसलिए नहीं कि इस विचार में कोई भ्रम नहीं है, बल्कि इसलिए कि ऐसे भ्रम की जरूरत होती है। सामनेवाले को तो यह लगे कि आप और हम एक हैं, लेकिन आप कहें कि 'नहीं, नहीं, आप और हम एक नहीं, हमारा अपना अलग है', यह ठीक नहीं। जब वह कहता है कि 'आप और हम एक हैं', तो हम भी समझें कि 'हाँ, ठीक है।' जो बारीक फर्क होता है, वह रहने दें। हमारे मन में कोई गड़बड़ी (कन्फ्यूजन) न हो, यह जरूरी है, परंतु अगर वह हमारे साथ अपनी एकरूपता मानता है, तो हम

है, इसलिए आज हम "सर्वोदय" का नाम नहीं लेंगे।' दोनों पद्धतियों में गुण है। पहली पद्धति में उपासना अधिक है, तो दूसरी पद्धति में ज्ञान। जब मैं कहता हूँ कि 'मैं ब्रह्म हूँ, यह शारीरिक पिंड नहीं', तो कहने भर से शरीर से अलग नहीं हो जाता। पर शरीर से अलग होकर ब्रह्मरूप होना चाहता जरूर हूँ। इस दृष्टि से आज ही 'मैं ब्रह्मरूप हूँ', 'शरीर से भिन्न हूँ', ऐसा जप मैं करता रहता हूँ। यह जप करना वस्तुस्थिति के साथ, 'स्थूल वस्तु-स्थिति' के साथ मेल नहीं खाता—इस अर्थ में यह एक भ्रम ही है। किन्तु यह भ्रम परम सात्विक है और इसकी जरूरत है। 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा कहने का आज मेरा तात्पर्य इतना ही है कि 'मैं ब्रह्म होना चाहता हूँ।' 'चाहना जब किसी को सूझता है, तब वह जिस वस्तु से प्यार करता है, उसके साथ उसका हृदय तन्मय है', इस दृष्टि से उसके कहने में सत्य भी आता है। यह उपासना की पद्धति है।

आज हम जो सर्वोदय का दावा करते हैं, उसमें हमारी यही उपासना-दृष्टि है। पं० नेहरू जो कहते हैं कि 'हम सर्वोदय चाहते तो हैं, लेकिन सर्वोदय के तत्त्व पर हम काम नहीं कर पाते और इसीलिए उसका नाम नहीं लेते', इसमें ज्ञान-दृष्टि है। हम नाम लेते हैं, तो कोई बड़ा काम कर पाते हैं, ऐसा नहीं। हम उसका नाम नहीं लेते, इसमें भी एक गुण है। हम नाम लेते हैं, इसलिए उसके लायक काम करते हैं, ऐसा भी नहीं। पर अपनी सद्‌वासना को प्राप्ति का रूप देकर, एक भ्रम रखते हुए हम उपासना करना चाहते हैं। यह उपासना की पद्धति है। जो ज्ञान की दृष्टि से देखता है, वह कहता है कि 'नहीं, जबतक मैं उस लायक नहीं होता, तबतक उसका दावा न करूँगा।'

वस्तुनिष्ठ और ध्येयनिष्ठ

एक प्रसिद्ध श्लोक है : "तद्‌ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः।" इस पर किशोरलाल भाई का और हमारा हमेशा झगड़ा चलता था। पुरानी बात है, वे कहते थे कि 'यह श्लोक मुझे बिल्कुल नहीं जँचता। मुझे इसका अनुभव नहीं होता। सुबह से लेकर शाम तक खाना-पीना, स्नान आदि सारा शरीर-कार्य चलता रहता है। कभी-कभी सोचने पर मन में भले ही आ जाय कि मैं

को कितना ही समझायें, हम चाहे जो करें, जबतक उसकी बुद्धि नहीं खुलती, तबतक मेरे लिए सत्य नहीं खुलेगा। इसलिए हम सत्य के खोलने की चिन्ता न करें। हाँ, सत्य को समझने की जरूर चिन्ता करें, जितना कि सामनेवाला ग्रहण करता जाय। मेरा खयाल है कि यह प्रक्रिया अहिंसा के लिए अधिक अनुकूल है। सत्य के लिए भी इसमें बाधा नहीं है, बल्कि अनुकूलता है।

धर्मपुरी (सर्वोदयपुरम्)
५-८-'५६

व्यापकता के साथ गहराई भी आवश्यक : ३२ :

आज विज्ञान ने एक चमत्कार कर दिया है। पुराने जमाने में जिन दो देशों के बीच समुद्र रहता, वे एक-दूसरे से अलग किये जाते थे। किंतु आज वे इसी कारण आपस में जुट जाते हैं। आज अमेरिका के साथ चीन जुड़ा है, बीच में सिर्फ आठ हजार मील का समुद्र है। ऐसे देश एक-दूसरे को पड़ोसी मानते हैं। इसीलिए उनका एक-दूसरे से झगड़ा चलता है। वास्तव में यह शुभ लक्षण है; क्योंकि आज झगड़ा चलता है, तो कल प्रेम भी पैदा हो सकता है। किन्तु पहले न झगड़ा था और न प्रेम; क्योंकि एक-दूसरे का ज्ञान ही न था। इस तरह पुराने जमाने में जो चीज तोड़नेवाली होती थी, वही आज जोड़नेवाली सिद्ध हो रही है। कहना पड़ता है कि विज्ञान ने ही इतना आश्चर्यजनक अन्तर उपस्थित कर दिया है। इसीलिए अब वह उन्हें बिलकुल सह नहीं सकता, जिनका जीवन संकुचित हो। फिर वह संकुचितता भाषा की हो, कार्य की, धर्म की या प्रदेश की। सारांश, विज्ञान के इस जमाने में कोई भी संकुचित योजना टिक नहीं सकती। व्यापक विचार करना ही लोगों के लिए लाजिमी है।

गहराई की चिन्ता भी जरूरी

आज हमें सिर्फ इतनी ही चिन्ता रखनी है कि इस व्यापक विचार में हम

होगा, तो हम कैसी योजना करेंगे ? हम कहते हैं, कि सारी दुनिया का राज्य हो जाय, तो भी योजना यही होनी चाहिए कि हर गाँव का स्वतंत्र राज्य हो ।

वेल्लामपट्टी (सेलम)
७–८–'५६.

अधिकारी-वर्ग को हटाना है : ३३ :

प्रजा की जिम्मेवारी

आजतक कितने ही राज्य आये और गये । अब यहाँ नया राज्य आया है । यह लोगों का राज्य है । पहले राजाओं का राज्य था । उनमें कई अच्छे राजा भी होते थे, तो प्रजा को लगता था कि वे हमारे माता-पिता हैं और उनके राज्य में हम सुखी हैं । बीच में कोई खराब राजा आता था, तो लोग तंग आ जाते थे और भगवान् से प्रार्थना करते कि 'ऐसे राजाओं से छुड़ाओ ।' इस तरह कभी खट्टा तो कभी मीठा अनुभव होता था, ऐसा खट्टा-मीठा खाते-खाते लोग बिलकुल हैरान हो गये । उन्होंने तय किया कि अब हमें खट्टा और मीठा नहीं चाहिए । तब राजा मिट गये और लोकसत्ता शुरू हुई । लोकसत्ता याने लोगों के नाम से चंद लोगों की सत्ता । पहले भी ऐसा ही था । पहले कोई एक राजा की सत्ता चलती थी, ऐसी बात नहीं । उसके सरदार, मंत्री, सेनापति और नौकर होते थे । सबको तनख्वाह मिलती थी और वे राज्य चलाते थे । आज भी वैसा ही है । पचासों लोग राज्य में काम करते हैं, तो राज्य चलता है । पहले जो पचासों लोग काम करते थे, वे राजा के नाम से करते थे । राजा अकेला भला-बुरा नहीं करता था, उसके साथी ही प्रजा का भला या बुरा काम करते थे । वैसे ही आज सैकड़ों लोग राज्य चलाते हैं, भला-बुरा काम भी करते हैं, परंतु वे आप लोगों के नाम से करते हैं ।

अधिकारी वर्ग हटाया जाय

लाठीचार्ज और गोलीबारी की जायेगी, बुनकरों का धंधा छुड़ाया जायेगा

मैं नहीं करूँगा, मेरी चिंता आप नहीं करेंगे, बल्कि हम दोनों की चिंता वह बीच का अधिकारीवर्ग करेगा। अगर हम इस बीच के अधिकारी-वर्ग को हटाना चाहते हैं, तो हमको एक-दूसरे की चिंता करना सीखना होगा और उनको कहना होगा कि हम आपस में मिल-जुलकर काम करेंगे। हमें आपकी जरूरत नहीं है। आप कृपा करके खेती करियेगा। वे कहेंगे कि हमारे पास खेती करने के लिए जमीन नहीं है, तो बाबा उनको भूमिदान में से भूमि देगा और कहेगा कि आइये, काम करिये और अधिकार-पद से हटिये। यह जब आप लोग करेंगे, तब सुखी होंगे।

संनूर (सेलम)
४-८-'५६

मूर्ति-पूजा से मुक्त होने का तरीका : ३४ :

हमने सुना कि यहाँ पर कुछ लोगों ने राम के चित्र जलाये और कहा कि अब रंगनाथन् के जलायेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि ये राम और रंगनाथन् तुम्हारे सिर पर सवार हैं, उन्होंने आपकी गर्दन पकड़ ली है। इससे आप राम के बंदे बनते हैं। अगर आपका मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं है, तो आपको उसकी उपेक्षा ही करनी चाहिए। मुसलमानों ने कितनी दफा मूर्तियाँ तोड़ीं, लेकिन उससे मूर्ति-पूजा मिटी नहीं, क्योंकि उसे मिटाने का वह तरीका नहीं है। आप मूर्तिपूजा को मुक्ति देना चाहते हैं, तो आपको ज्ञान-प्रचार करना होगा, मूर्ति से भी महान् कोई चीज लोगों के सामने रखनी होगी। जब वह भावना निर्माण होगी, तब मूर्ति-पूजा नहीं रहेगी। हम भी वही कर रहे हैं। हम भी मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं करते, परंतु हमें मूर्ति-पूजा का द्वेष नहीं है। उसमें द्वेष करने जैसी कोई चीज है ही नहीं। हम लोगों को समझाते हैं कि आप मूर्ति की पूजा करते हैं, जो खाता नहीं, उसके सामने नैवेद्य चढ़ाते हैं और पास ही जो भूखा खड़ा है, उसे खिलाते नहीं। इस तरह करुणाहीन बनने से भक्ति नहीं होगी ? लोग यह बात समझते हैं। इसके बदले में आप मूर्ति

जातियों के मूल में अच्छा विचार

हिन्दुस्तान में दुनिया भर की जमातों का स्वागत हुआ है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने भजन में यही गाया है कि भारत एक महामानव-समुद्र है। जैसे समुद्र में चारों ओर से नदियाँ आकर मिलती हैं, वैसे ही इस देश में चारों ओर से लोग आकर समा गये हैं।

अपने देश की यह विशेषता हमें पहचाननी चाहिए। अनेक संस्कृतियाँ हमने पचा ली हैं। हिन्दुस्तान में ये जो अनेक जातियाँ बनी हैं, वह हिन्दुस्तान का गुण है; क्योंकि ये लोग भिन्न-भिन्न देशों से आये हुए, भिन्न-भिन्न संस्कार लेकर आये हुए लोग हैं। उनके साथ लड़ने-झड़ने के बदले भारत ने उनकी व्यवस्था और इंतजाम कर दिया। लेकिन यहाँ, बाहर के लोगों को अपने समाज में लेते हुए अलग-अलग जातियाँ बनायीं, याने खिचड़ी बनायी। उन्होंने यह जो बिलकुल अलग-अलग जातियों को इकट्ठा करने का काम किया, वह बहुत अच्छा काम किया, लेकिन हमको उससे आगे जाकर जातिभेद मिटाना होगा, यह सारा एकरस बनाना होगा। और यह जो कदम हम उठायेंगे, वह अपने पूर्वजों के किये हुए काम को तोड़ने के लिए नहीं, बल्कि उनके किये हुए काम को आगे बढ़ाने के लिए होगा।

भारत-राग

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हमें समाज को एकरस बनाने का बहुत बड़ा काम करना होगा। जो एकरस समाज होगा, वह षड्रसयुक्त समाज होगा। उसमें तरह-तरह का स्वाद होगा याने भिन्न-भिन्न जमातों का जो गुण है, उन गुणों को कायम रखते हुए उनका हमको मिश्रण करना होगा, जैसे संगीत जाननेवाला करता है। सा रे ग म आदि सात स्वर होते हैं, लेकिन संगीतकार कुशलता से ऐसी योजना करता है कि एक ही राग में उन सात सुरों का अच्छी तरह से सम्मेलन हो जाय। हमको 'सा' का 'सापन' मिटाना नहीं है,

बन गयी है, वह अंग्रेजी विद्या के कारण ही। वह बिलकुल मिट जानी चाहिए। किसी भी किसान का न्यायपत्र तमिल भाषा में न्यायाधीश को लिखना चाहिए। कालेज, हाईस्कूल की कुल तालीम तमिल भाषा के जरिये दी जानी चाहिए। इस तरह तमिल का गौरव बढ़ना चाहिए। इसीसे उसकी ताकत बनेगी। तमिल भाषा में आपको 'भारत-राग' गाना चाहिए। हर एक भाषावाले अपनी-अपनी भाषा में गायेंगे, लेकिन राग "भारत-राग" गायेंगे।

भारतीयता कम से कम

हमको अपने देश में यह एक काम करना है, लेकिन यह हमारे कार्य का आरंभ है। हम भारतीय हैं, यह हमारा कम-से-कम गुण है, यह हमारा उत्तम गुण नहीं है। हमको इससे संकुचित नहीं बनना है। 'हम भारतीय हैं', इससे छोटी भाषा बोलने की हमको मनाई है। हमारे मन में भाषा यह होनी चाहिए कि हम विश्वमानव हैं, हम विश्व के नागरिक हैं, हमको विश्वकार्य करना है, हमको विश्वशान्ति की स्थापना करनी है। मनु ने यही लिखा था, "**एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः, स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन पृथिव्या सर्वमानवः।**" इस देश के नागरिकों से पृथ्वी के नागरिकों को शिक्षा मिलेगी। मनु ने यह बहुत पहले लिखा था। जब इधर से उधर जाने में पचासों साल लग जाते थे, उस जमाने में भी वह भाषा में कोई संकोच नहीं रखता है। तब आज तो ऐसी तैयारियाँ हो रही हैं कि पृथ्वी जितनी गति से दौड़ रही है, उससे भी ज्यादा गति से दौड़नेवाले हवाई जहाज की शोध हो रही है। पृथ्वी २४ घण्टे में चौबीस हजार मील चलती है। उसकी परिधि चौबीस हजार मील की है और वह दिन भर में इतना घूम लेती है। अब कोशिश यह हो रही है कि हवाई जहाज की गति घंटे में १५०० मील की हो। उसका परिमाण यह होगा कि आज हम यहाँ से दोपहर में १२ बजे निकलेंगे, तो इंग्लैंड में आज की दोपहर को ११ बजे पहुँचेंगे, ऐसा चमत्कार होगा। दूसरे दिन के ११ बजे नहीं, उसी दिन के ११ बजे पहुँचेंगे। १२ बजे निकलेंगे तो १२ बजकर १० मिनट या ५ मिनट पर पहुँचे तब तो हम कुछ समझ सकते हैं, लेकिन उसी दिन दोपहर में ११ बजे

एक होगा तब तो और तमाशा होगा। उस समय कामाच्छाटका सेन्टर होगा और वहाँ पर जो व्यवस्थापक होगा, वह सारी दुनिया में चारों खंडों में दौड़ता रहेगा। यह सेवा करने का ढंग नहीं है। सेवा करने के लिए आस-पास का छोटा क्षेत्र चाहिए और चिंतन के लिये व्यापक दुनिया चाहिए। चिंतन छोटा हो गया, तो हम संकुचित हो जायेंगे और अगर सेवा व्यापक बनाने जायेंगे, तो निष्फल हो जायेंगे। इसलिए भवानीवालों को सेवा भवानी की ही करनी होगी, लेकिन चिंतन सारी दुनिया के लिए व्यापक करना होगा। इसलिए आप भवानी की ऐसे ढंग से सेवा नहीं करेंगे, जिससे भवानी के साथ टक्कर आये, क्योंकि उसका चिंतन व्यापक होगा इसलिए वह टक्कर नहीं आयेगी।

हमारा पाँव कहाँ है और आँख कहाँ है? यह देखो। मेरी आँख आसमान के चंद्र को देखती है, इतनी व्यापक आँख भगवान् ने दी है, लेकिन पाँव तो भवानी से कोयम्बतूर जायगा और कोयम्बतूर से त्रिचिनापल्ली जायगा। वह चंद्र पर नहीं जायगा। हम चंद्र को सिर्फ देख ही सकेंगे। आँख की व्यापकता और पाँव की सेवावृत्ति। पाँव के समान नजदीक के क्षेत्र में काम करना होगा और आँख के समान व्यापक क्षेत्र में चिंतन करना होगा। इस तरह दो काम करने होंगे। सेवा करते हुए तमिल भाषा की सेवा और उसीके जरिये भारत की और दुनिया की सेवा, और चिंतन करते समय कुल दुनिया का चिंतन। ऐसी युक्ति जब सधेगी, तभी हम वैज्ञानिक जमाने में टिकेंगे, नहीं तो टिक नहीं सकेंगे। उसी को दो पंख कहते हैं—'व्यापक चिंतनम् विशिष्ट सेवा।'

भूदान की ग्राम-योजना

हम भूदान-यज्ञ के जरिये गाँव-गाँव की सेवा करना चाहते हैं। हर गाँव की कुल जमीन गाँव में बँटनी चाहिए, हरएक गाँव में ग्रामोद्योग होने चाहिए, हरएक गाँव में अपने लिए कौन-सा माल चाहिए, उसकी योजना गाँव में होनी चाहिए। हमारे गाँव में कौन-सा औजार चलना चाहिए, उसका निर्णय भी हमारा गाँव करेगा। इस तरह भूदान में जहाँ तक सेवा का सवाल है, वहाँ तक गाँव-गाँव के लिए सोचते हैं। हमारा हरेक गाँव अपने लिए चिंतन करेगा और

मालकियत ही मिट जाय। किसी देश की किसी देश पर मालकियत नहीं होनी चाहिए। अमेरिका की जमीन पर अमेरिका को मालकियत का हक नहीं है, भारत की जमीन पर भारत को मालकियत का हक नहीं है। जमीन भगवान की है। आज अमेरिका में बहुत जमीन है लेकिन वहाँ आने नहीं देते। अगर वे किसीको आने देते तो चीन, जापानवाले चाहेंगे, तो जा सकेंगे। अमेरिका के लोग अंदर के भाग में जाते ही नहीं हैं, क्योंकि गर्मी बहुत है इसलिए वे समुद्र के किनारे-किनारे रहते हैं। अंदर बहुत जमीन पड़ी है, लेकिन किसी को अंदर जाने नहीं देते। एक आस्ट्रेलियन से हमारी बात हो रही थी। वह कहता था कि दूसरे लोगों को आने देने में संस्कृति का विषय आता है। योरप के लोगों को आने देने में हम राजी हैं, उनको संस्कृति का विचार क्यों आया? भारत की यही विशेषता है। भारत ने दूसरे-तीसरे सब लोगों को यहाँ आने का मौका और इजाजत दी। उनको रोकने के बदले उनकी जातियाँ बना लीं, क्योंकि उनकी संस्कृति अलग-अलग थी। वे जातियाँ आज हमें तकलीफ दे रही हैं, लेकिन उन्हें जब बनायीं तब सहूलियत के लिए बनायी गयी थीं। दूसरे को अपने देश में आने ही नहीं देने के बदले आने दिया और उनकी जातियाँ बनायीं। तुम अपने ढंग से खाओ-पीओ, हम अपने ढंग से खायेंगे-पीयेंगे। इस तरह की व्यवस्था बना ली। भारत का विचार इतना आगे बढ़ा हुआ है। अब जाति की जरूरत नहीं है। वह तकलीफ देनेवाली है, इसलिए इसको हम मिटा देना चाहते हैं। परंतु जब बनायी थी तब उसके साथ एक गौरव की बात भी है। अमेरिका दूसरे को आने ही नहीं देना चाहता है। हम चाहते हैं कि यह नहीं चलेगा। यह ईश्वर-योजना के विरुद्ध है। भूदान-यज्ञ में मालकियत मिटाने जा रहे हैं, उसका अर्थ यह है कि सारे मानवों को कुल जमीन का हक है। यह भूदान का व्यापक विचार हुआ। यह है भूदान का चिंतन।

भूदान का सेवा-कार्य गाँव में चलता है। गाँव के कुल भूमिहीनों को जमीन मिलनी चाहिए। गाँव के सब लोगों को एक परिवार के समान रहना चाहिए। कुल जमीन गाँव की बननी चाहिए। यह ग्रामदान इत्यादि विचार हमारा सेवा

आप सब लोगों के चुने हुए, उनके विश्वासपात्र सेवक हैं और आप ऐसी संस्था को आधार दे रहे हैं कि जिसने हिंदुस्तान को आजादी दिलाने का काम किया। लेकिन वह तो भूत-काल का इतिहास हो गया। कोई भी शख्स अपने पूर्वजों की कमाई पर नहीं रह सकता। पूर्वजों के नाम का उसे बल मिलता है, परंतु उसे खुद भी अपना बल दिखाना चाहिए।

गांधीजी ने सच्चे आस्तिकों और नास्तिकों को एक किया

कोई नहीं भूल सकता कि हिंदुस्तान ने आजादी हासिल की, वह अपने ढंग से की और दुनिया में वह एक विशेष घटना है। महात्मा गांधी का नेतृत्व भारत को मिला। यह गांधीजी का भी भाग्य था और भारत का भी भाग्य था। भारतीय संस्कृति में जो ताकत थी, उसे प्रकट करने का मौका गांधीजी को मिला, और उन्होंने स्वराज्य-प्राप्ति के काम को भी मानव-सेवा का रूप दिया। वह केवल एक राजनैतिक आंदोलन नहीं रहा। उसमें ऐसे असंख्य पुरुषों ने हिस्सा लिया, जो भूतदया-परायण थे। उनके दिमाग में कोई भेद नहीं थे, क्योंकि उन्होंने वहाँ राउंड-टेबल कान्फरेन्स में यह नहीं कहा कि स्वराज्य हमें अपने अभिमान के लिए चाहिए। बल्कि यह कहा कि हमें स्वराज्य चाहिए क्योंकि हम उसके बिना दरिद्रनारायण की सेवा नहीं कर सकते। दरिद्रनारायण शब्द से उन्होंने अच्छे आस्तिकों का और अच्छे नास्तिकों का भेद मिटा दिया। अच्छे नास्तिक सज्जन होते हैं। अपने सामने प्रत्यक्ष जो सेवा है, वह छोड़कर वे हवाई बातें करना नहीं चाहते। इसीलिए वे नास्तिक कहलाते हैं। ऐसे नास्तिकों में बहुत सज्जन हो गये हैं। सच्चे आस्तिक वे होते हैं जो मानव-हृदय पर विश्वास रखते हैं; मानव-हृदय में एक ज्योति है और उस आधार पर से हम सब प्रकार के अंधकार को मिटा सकते हैं। एक तो जन-सेवा का विचार है और दूसरा हृदय-परिवर्तन का विचार है। सच्ची नास्तिकता वह है, जिसके महामुनि कपिल प्रतिनिधि

आपका आज का जो हृदय है, उसकी वह प्रतिनिधि है।' इसीलिए वह 'सेक्युलर' कहलाती है।

गांधीजी ने दरिद्रनारायण शब्द से अच्छे आस्तिकों और अच्छे नास्तिकों को एक प्लैटफार्म पर बैठा दिया। उन्होंने सेवा को ही भक्ति का रूप दे दिया। इसलिए हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया और सेवा की प्रक्रिया एक हो गयी।

सेवा और हृदय-परिवर्तन

भू-दान से जमीन बँटेगी, तो उस प्रक्रिया में गरीबों की सेवा होगी और भूमि का बँटवारा करना ही काम नहीं होगा। उसके अलावा व्यापक प्रमाण में समाज के हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया होगी। क्योंकि इसमें लोग अपने हाथों से अपनी चीज का एक हिस्सा हक समझकर दूसरों को देने के लिए प्रवृत्त किये गये। इसी को हृदयपरिवर्तन की प्रक्रिया कहते हैं। सरकार के जरिये अगर भूमि बँटेगी, आप जानते हैं कि अभी वह नहीं बँट रही है, तो उसके लिए कितना समय लगेगा, मालूम नहीं। परन्तु मान लीजिये कि बँटेगी, तो एक सेवा मात्र होगी, हृदय-परिवर्तन नहीं होगा। बिना हृदय-परिवर्तन के जो सेवा होती है, वह हमेशा निश्चित ही सेवा होती है, ऐसा नहीं कह सकते। जैसे मैंने कहा कि बीड़ी पीनेवाले को बीड़ी सप्लाई करना यह निश्चित ही सेवा है, ऐसा नहीं। हम किसीसे जमीन माँगकर दूसरों को दिलवायेंगे, इतना ही नहीं; बल्कि देने वाले से कहेंगे, तुमने जमीन तो दी, लेकिन उसकी कास्त के लिए गरीब को और मदद दोगे कि नहीं? इस साल के लिए बीज दे दो, तो वह देगा। सरकार यह नहीं कर सकती। सरकार जमीन लेगी, तो उसे मुआवजा देना पड़ता है। बीज माँगना, बैल माँगना यह सारी प्रक्रिया भूदान में है, क्योंकि इसमें सिर्फ सेवा की प्रक्रिया नहीं है, हृदय-परिवर्तनपूर्वक सेवा है।

हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया और कांग्रेस

यह सारा लंबा प्रस्तावनारूप व्याख्यान इसलिए दिया कि आप कांग्रेस-वाले डबल केपैसिटी में हैं। आप सरकारी सेवा-वृत्ति को भी रिप्रेजेंट करते हैं हैं और कांग्रेसमैन की हैसियत से आप हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया को भी

मंत्र से जीवन में रस आता है

देश का यह बहुत बड़ा भाग्य है कि जहाँ एक मंत्र समाप्त होता है, वहाँ दूसरा मंत्र सामने आता है। जिस देश के सामने मंत्र नहीं होता, उस देश के जीवन में रस नहीं रहता। हमें ३०-४० साल लगातार स्वराज्य का मंत्र मिला था और उस मंत्र के लिए जितना त्याग हो सकता था, उतना करने की कोशिश की गयी। उससे समाज के जीवन में उत्साह आया, लोक-जीवन रसमय बना। जहाँ एक मंत्र की सिद्धि हुई, वहाँ साधक अक्सर सुस्त बनता है, सिद्धि के भोग में पड़ता है। यह उसके लिए खतरा होता है। उसकी प्रगति रुक जाती है। इसलिए एक मंत्र की सिद्धि पर, ध्येय की सिद्धि हुई, वहाँ फौरन दूसरा मंत्र, दूसरा ध्येय सामने आता है। वहाँ फौरन स्फूर्ति आती है और कावेरी नदी के प्रवाह के समान जनता का जीवन प्रवाहमय बनता है। भारत का यह बहुत बड़ा भाग्य है कि 'स्वराज्य' के बाद 'सर्वोदय' का मंत्र मिला। इससे बेहतर शब्द हमारी भाषा में नहीं है। यह एक बड़ा भारी मंत्र हमें मिला है। इस मंत्र की पूर्ति में हमें लगना चाहिए। इससे समाज-जीवन में नया त्याग-उत्साह, नयी प्रेरणा आयेगी। अब इस काम में जो त्याग करना होगा, वह दूसरे ढंग का और अधिक श्रेष्ठ होगा।

स्वराज्य-प्राप्ति में लोभ था

दूसरों से कोई चीज प्राप्त करनी है, लेनी है—ऐसी लेने की बात जहाँ होती है, वहाँ खूब उत्साह आता है। इसलिए हमने कई मर्तबा वर्णन किया है कि स्वराज्य का काम निगेटिव था। याने उसमें जो त्याग का अंश था, वह बहुत छोटा था। आज जो त्याग करना होगा, वह पाजिटिव है। उस त्याग में ज्यादा बल की जरूरत थी। अंग्रेजों ने हमारी यह कमजोरी देख ली। पहले-पहले तो वे हमें जेल में डालते थे। लोग जेल में जाकर निश्चिन्त होते होते थे। उन्होंने देखा कि हम लोगों के लिए जेल में जाना बहुत आसान हो गया है, तब उन्होंने जुर्माना शुरू किया। घर-घर में जाकर वे जुर्माने वसूल करने लगे। उसमें हमारे लोग कमजोर साबित हुए। क्योंकि उसमें

एक ही शब्द 'करुणा'

तात्पर्य, इस आंदोलन में वह त्याग करना पड़ेगा, जो त्याग स्वराज्य आंदोलन में नहीं करना पड़ा। पांडिचेरी हाथ में लेनी है, ऐसी बात होती है, तो कैसा उत्साह आता है ? गोवा में आंदोलन करना है, तो कैसा उत्साह आता है ? क्योंकि इसमें प्राप्त करना है। यह बात बुरी नहीं है, अच्छी है, परंतु प्राप्ति की है। भूदान में देना है, इसलिए हमने कांग्रेस पार्टी, सोशलिस्ट आदि से अपील करना छोड़ दिया है। क्योंकि उनके मुख्य लोगों की हमारे प्रति सहानुभूति है और हमें उनपर दया आती है। दया इसलिए कि उनके जो सारे लोग हैं, वे उनके पत्रक से प्रेरित हों, ऐसी मनःस्थिति नहीं है। इस कार्य में उसी मनुष्य को प्रेरणा होगी, जिसके अंतर में करुणा होगी। किसी संस्था की आज्ञा से यह काम नहीं होगा, अंतःप्रेरणा से होगा। भगवान् बुद्ध के पिता ने उन्हें सौख्य में रखा था। उन्हें किसी दुःख का दर्शन न हो, ऐसा इन्तजाम किया था। तिस पर भी उन्हें दुःख का दर्शन हुआ। उन्होंने कहा कि मुझे बिल्कुल ही दुःख का दर्शन न हो, ऐसी कोशिश करने पर भी मुझे इतना दुःख दीखता है, तो दुनिया में कितना दुःख होगा। इसलिए उन्होंने राज्य का परित्याग करके दुःख-निवारण का काम किया। उसके वास्ते ध्यान किया और उपवास किये। चालीस दिन के उपवास के अंत में उन्होंने आँख खोलकर देखा। उन्हें चारों ओर प्रकाश फैला हुआ दीखा, चारों ओर करुणा फैली है, ऐसा दीखा—ऐसा वर्णन मिलता है। हम आजकल भक्ति-साहित्य पढ़ते हैं। उसमें भी हम यही चीज देखते हैं। हमने पढ़ा कि 'ऐसी करुणा जहाँ पैदा होगी, जैसे बाढ़ आयी हो'। आपके लिए हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि जिस संस्था को महात्मा गांधी का नेतृत्व मिला, उस संस्था के लोगों के हृदय में करुणा भर दे। बिना करुणा के भूदान जैसा काम नहीं हो सकता। इसमें अपना अंश देना पड़ता है। यह इसकी एक रुकावट है। लेकिन इतनी ही रुकावट नहीं है। इसमें गाँव-गाँव में घूमना पड़ता है, धूप में, बारिश में, ठंड में घूमना पड़ेगा, सतत् काम करना होगा। यह भी तपस्या करनी होगी। लोभ का त्याग करना पड़ेगा।

भी सतत घूमते ही रहते थे। इस तरह हमें हर प्रान्त के भक्तों के नाम मालूम हैं, जो कि सतत घूमते ही रहते थे और भक्ति का संदेश हर मनुष्य को सुनाना ही अपना काम समझते थे। हमें भी आज यात्रा का जो इतना बल प्राप्त है, वह इसीलिए कि हम अपने मन में समझते हैं कि हम इस युग के लिए सच्ची भक्ति का प्रचार कर रहे हैं। जैसे किसी सिपाही को उत्साह और हिम्मत कम नहीं पड़ती है, जब कि वह याद करता है कि मैं शिवाजी की सेना का सिपाही हूँ या अर्जुन की सेना का सिपाही हूँ, उसी तरह हम अपने को इन भक्तों की सेना का एक सिपाही समझते हैं। इसीलिए हमें बल मालूम होता है। जब आप भी यह महसूस करेंगे कि एक बहुत ही विश्व-व्यापी भक्ति का प्रचार करने का मौका हमें मिला है, तब आप सब लोगों को यह उत्साह स्पर्श करेगा।

समाज, सृष्टि और स्रष्टा के साथ एक रूप होने के लिए भूदान

भक्ति के मानी हैं, अपना अहंकार छोड़कर विराट में विलीन हो जाना। मनुष्य जितने अंश में समाज से, सृष्टि से और स्रष्टा से अलग रहेगा, उतने अंश में वह दुःख का भागी रहेगा। जब वह समाज में, सृष्टि में और ईश्वर में लीन होगा, तब वह अनंत आनन्द का भागी होगा। भूदान-यज्ञ में सृष्टि, समाज, और परमेश्वर में एकरूप होने की तरकीब बतायी गयी है। हम अपने पास जो जमीन है, उसका एक हिस्सा अपने समाज में जो ऐसे भाई जिन्हें उसकी आवश्यकता है, उनके लिए देते हैं, तो समाज के साथ एकरूप होने का आरंभ करते हैं। वैसे ही जब हम अपने पास ज्यादा जमीन रखते हैं, तो हम कुदरत से अलग रह जाते हैं। हम खुद खेती करते नहीं, दूसरों से परिश्रम करवाते हैं। इसलिए जब हम अपनी सब अधिक जमीन समाज को देंगे, तो बची हुई जमीन पर हम खुद काश्त करेंगे और हमें कुदरत के साथ एक रूप होने का मौका मिलेगा। जब हम अपने हृदय में इतना कारुण्य रखेंगे जिससे कि भूदान हो सकेगा, तो ईश्वर के साथ अत्यन्त स्वाभाविकता से एकरूप होंगे, क्योंकि वह तो करुणा-मूर्ति है। हम निठुर बने रहेंगे, तो उससे अलग रहेंगे। मनुष्य थोड़ा भी करुणा का कार्य करता है, तो उसके

सब लोगों का हृदय-परिवर्तन नहीं होता। जो हृदय-परिवर्तन की कीमिया ईश्वर को नहीं सधी, वह क्या मुझसे सधेगी ? हम लोगों को मुक्ति दिलानेवाले नहीं है बल्कि भक्ति सिखानेवाले हैं। मुक्ति दिलानेवाला तो परमेश्वर है। हम भक्ति का प्रचार करते चले जायँ, तो उसका थोड़ा-सा परिणाम होगा। लेकिन उसका मुख्य परिणाम तो यह होना चाहिए कि उससे हमारे हृदय की शुद्धि हो, उसका परिवर्तन हो। इन दिनों हर कोई दूसरे के हृदय-परिवर्तन की बात करता है। वह समझता है कि अपने हृदय में ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसका परिवर्तन होना जरूरी है। और लोगों के हृदय में ऐसी चीजें भरी हैं, जिनका परिवर्तन होना जरूरी है। कितना अहंकार, कितना अज्ञान !

अंदर का प्रवाह सूखता नहीं

हमें ज्यादा जमीन मिलती है, तो खुशी नहीं होती और कम मिलती है, तो दुःख नहीं होता। हमारी बिहार-यात्रा में हमें औसत प्रतिदिन तीन हजार एकड़ जमीन और तीन साढ़े-तीन सौ दान-पत्र मिले। वकील की प्रैक्टिस बढ़ती है, तो उसकी फीस भी बढ़ती है। परन्तु यहाँ के लोगों ने हमें डिग्रेड कर दिया है। सेलम जिले में हमें ३३ दिनों में सिर्फ ४–४।। हजार एकड़ जमीन मिली। इतनी कम जमीन हमें आजतक कभी नहीं मिली। तेलंगाना में भूदान-यज्ञ के आरंभ में भी हमें हर रोज २०० एकड़ के हिसाब से जमीन मिली थी। उसके बाद तो काम बढ़ता ही चला गया। नदी जैसे आगे बढ़ती है, वैसे छोटी नहीं बनती है। लेकिन तमिलनाड में हमारी नदी सूखने लगी। फिर भी अंदर जो नदी बहती है, वह सूखी नहीं है। भक्ति का प्रवाह अखंड बह रहा है। चाहे कावेरी सूख जाय, लेकिन अंदर का झरना नहीं सूखेगा। जमीन कम मिले या ज्यादा, उससे हमारा क्या बिगड़ता है ? मेरा तो तब बिगड़ेगा, जब अन्दर का भक्ति का झरना सूखना शुरू होगा। लेकिन वह नदी इतनी भरी है कि हम उसे रोक लेते हैं। नहीं तो चौबीस घंटे अश्रुधारा चलेगी, ऐसी मेरी हालत है। हमें इन सारे ईश्वरों का दर्शन हो रहा है। सच्चे और बुरे अर्थ में हमारी यह यात्रा चल रही है।

नेता की नहीं, ईश्वर की मदद

हमेशा यह शिकायत की जाती है कि हमारे कार्यकर्त्ताओं के पीछे कोई बड़ा मनुष्य नहीं है। यह सोचने की बात है कि बड़ा कौन है। इस दुनिया में जो सबसे छोटे होते हैं, वे ईश्वर के राज्य में सबसे बड़े होते हैं। अगर आपको किसी नेता की मदद मिलती, तो आप ईश्वर की मदद से वंचित रह जाते, ईश्वर की ज्योति आपके हृदय में प्रकट नहीं होती। अगर जमीन मिलती तो आपको यही लगता कि उस नेता की ताकत के कारण मिली और नहीं मिलती, तो लगता कि उसमें ताकत नहीं है। याने वह यश और अपयश, दोनों आप उस नेता पर डालते तो आपकी हृदय-शुद्धि का कोई सवाल ही नहीं रहेगा। इसलिए आज की हालत बहुत अच्छी है, उससे आपके अंतर में जो ज्योति है, वह बढ़ेगी, आपको आत्म-निरीक्षण का मौका मिलेगा और ईश्वर ने चाहा, तो आपकी ही ताकत बढ़ेगी और आपकी शक्ति से ही काम होगा। लेकिन फिर अहंकार मत रखो कि हमारी शक्ति से काम हुआ। आपको समझना चाहिए कि यह कार्य नया है, इसलिए नये मनुष्यों के लिए ही है। नया कार्य पुराने लोगों के लिए नहीं होता है। ईश्वर अगर नये कार्य पैदा करता है, तो उसके लिए नये मनुष्यों को भी पैदा करता है। पुराने नेता नये कार्य को पहचानें, यह आशा रखना व्यर्थ है। पुराने लोग आपके काम को अच्छा कहते हैं, आपको आशीर्वाद देते हैं, इससे ज्यादा क्या चाहिए? समझना चाहिए कि भगवान् ने आपके लिए सब द्वार खोल दिये हैं, आप जाइये और बे-रोक-टोक काम कीजिये। आपके प्लैटफार्म पर बोलने के लिए कोई नहीं आता है, वह बिलकुल खाली है, आपके लिए ही खाली रखा है। बारिश में, ठंड में, धूप में घूमना पड़ता है, छोटे-छोटे गाँवों में जाना पड़ता है, लोगों को बार-बार समझाना पड़ता है। कौन जायेगा बारिश में और काम करेगा? इससिए वह सारा कार्यक्रम हमारे लिए खाली रखा है। इसलिए परमेश्वर का नाम लेकर उत्साह के साथ काम करो।

भवानी (कोइम्बतूर)
२३-८-'५८

पर पानी बरसता और बहकर गड्ढों में चला जाता है। फसल के लिए पहाड़ काम नहीं आते। गड्ढों में पानी गिरता और वे भर जाते हैं, इसलिए फसल नहीं होती, सड़ जाती है। कालेज में जो ज्ञान सीखेगा, वह काम नहीं सीख सकता, इसलिए उसका ज्ञान बेकार है। जो खेतों में काम करेगा, उसे ज्ञान न मिलेगा, इसलिए उसका काम भी बेकार है। न तो इसके ज्ञान में कोई ताकत पैदा होती है और न उसके काम में भी। वह ताकत पैदा करने का यही उपाय है कि ज्ञान विद्यालयों में और पुस्तकों में कैद न रहे।

प्रेम घरों में कैद

दूसरी बात प्रेम की थी। आज प्रेम बिलकुल घनीभूत हो गया है। लड़का, पत्नी, माँ, बाप में ही सारा प्रेम खत्म हो जाता है, वह बहता झरना नहीं रहा। अपने लड़के की सुंदर नाक देख मुझे बड़ी खुशी होती है, पर पड़ोसी के लड़के की उससे बेहतर नाक मुझे खटकती है। इसीका नाम है, प्रेम की सड़न! उसका बहाव बंद हो गया। जहाँ पानी का बहाव बंद हो जाता है, वहाँ वह इकट्ठा होकर सड़ने लग जाता है। आत्मा का अखंड प्रवाह है। क्या वह मुझमें और मेरे लड़के में कैद हो गयी है? ये सब-के-सब आत्मराशि मेरे सामने खड़े हैं, ये सभी मेरे ही रूप मेरे सामने खड़े हैं। लेकिन मैं उसे काटता हूँ, उसके दो टुकड़े करता हूँ। मेरे अड़ोसी-पड़ोसी मुझसे भिन्न हैं और मेरे घर के सभी मेरे हैं। घर में प्रेम का कानून काम करेगा, पर गाँव में स्पर्धा का। जो जितना कमायेगा, उतना खायेगा, यह कानून गाँव के लिए है और जो सब कमायें, वह इकट्ठा कर बाँट खायेंगे, यह घर का कानून है। मान लीजिये, गाँव के लिए यह कानून ठीक है। एक में कम योग्यता थी, इसलिए उसने कम कमाया और कम खाया। दूसरे में अधिक योग्यता होने से ज्यादा कमाया और ज्यादा खाया। हम तो इसे भी अत्यंत अन्याय समझते हैं, पर घड़ी भर मान लेते हैं कि यह न्याय है। इसी तरह खूब ज्ञानी को ज्यादा पैसा देना और खेत में मजदूरी करनेवालों को बारह आना देना, हम न्याय नहीं समझते; पर कुछ देर के लिए मान लेते हैं कि यह भी न्याय है।

में लागू न करना चाहिए। लेकिन जब घर का प्रेम-प्रयोग यशस्वी हुआ है, तब उसे समाज में बड़े पैमाने पर लागू करना ही चाहिए। सारांश, हमने आज प्रेम को जाना है, पर उसे घर में कैद कर रखा है। उसका व्यापक प्रयोग नहीं करते, उसे बहने नहीं देते।

धर्म मंदिरों में कैद

तीसरी बात धर्म की है। धर्म भी हिन्दुस्तान के लोग पहचानते नहीं, सो नहीं। किन्तु उन्होंने उसे मंदिर की चहारदीवारों में कैद कर रक्खा है। व्यवहार में, बाजार में धर्म की कोई जरूरत नहीं। बाजार में खुलकर झूठ चलेगा।

कुछ लोग इधर बाबा को भूदान में जमीन दान में देते हैं, तो उधर अपने काश्तकारों को बेदखल करते हैं। यह देख हमारे कम्युनिस्ट भाई कहते हैं: 'बाबा, क्यों ठगे जा रहे हो? ये लोग तो तुम्हें साफ ठग रहे हैं।' मैं उनसे यही कहता हूँ कि वे मुझे नहीं ठगते, अपने आप को ठग रहे हैं। वे जानते नहीं कि इसमें ढोंग हो रहा है। सोचते हैं कि बाबा जैसा एक सत्पुरुष दान माँगता और धर्म की बात बोलता है, तो दान देना हमारा धर्म है, लेकिन उधर व्यवहार में न मालूम सरकार क्या करेगी; इसलिए जमीन कब्जे में ले लेना ही अच्छा है। एक ही शख्स दोनों चीजें करता है। मनुष्य के हृदय में दोनों चीजें है। तुलसीदास ने गाया है: **'कुमति सुमति सबके उर बसई।'** कौरव-पांडवों का कुरुक्षेत्र हर हृदय में है। वहाँ सतत राम-रावण युद्ध चलता है। इसलिए उनका यह ढोंग है, ऐसा भी हम नहीं कहते। फिर भी उस धर्मबुद्धि का संबंध अपने बाजार, व्यवहार और जीवन के साथ है, यह बात उनके खयाल में नहीं रही। उनकी वह धर्मभावना मंदिर में ही प्रकट होती है। हमने धर्म-भावना को पहचाना है, लेकिन उसे मंदिर तक ही सीमित माना है।

बाजार का अधर्म मंदिरों में

इन तीन परम मित्रों को, जिनकी मदद हमारी उन्नति के लिए अत्यंत जरूरी है, हमने घर, युनिवर्सिटी और देवालय में कैद कर रखा है! इन्हें शीघ्र से शीघ्र खोल दें और समाज में लायें। समाज में ज्ञान आये और

किंतु आज का ज्ञानी तो अभिमानी बन गया। ज्यादा पढ़े-लिखे लड़के की शादी के बाजार में ज्यादा कीमत होती है। वह ज्यादा दहेज माँगता है, जैसे ज्यादा खिलाये-पिलाये बैल की कीमत बाजार में ज्यादा होती है। यह आज की विद्या का नग्न रूप है!

रामकृष्ण परमहंस बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे तो न थे। एक बार उनके मन में आया कि थोड़ी विद्या आ जाय, वे देवी के बड़े भक्त थे। रात में उन्हें स्वप्न आया, देवी ने दर्शन देकर उनकी इच्छा पूछी, तो उन्होंने विद्या की माँग की। देवी ने सामने पड़े कचरे के ढेर में से विद्या ले लेने को कहा। रामकृष्ण समझ गये और उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा : 'मुझे ऐसी विद्या नहीं चाहिए।'

आस्तिकों के ढोंग से नास्तिकता का विस्तार

इस तरह विद्या, प्रेम और धर्म को हमने कैद किया तो विद्या अविद्या बन गयी, प्रेम कामासक्ति और धर्म ढोंग बन गया। परिणामस्वरूप लोग कहने लगे कि 'ऐसे आस्तिक बनने से हम नास्तिक बनना ही ज्यादा पसंद करेंगे।' उनके खिलाफ आस्तिक कहते हैं : 'सारे नास्तिक बन गये!', पर नास्तिक कौन है, जरा देख तो ले! आइने में देखा कि नाक गंदी है, तो कहने लगे कि आइना ही गंदा है। नास्तिक वह नहीं है, तू है। तू भक्ति का और आस्तिकता का ढोंग करता है, इसीलिए नास्तिकता फैली है।

भूदान से प्रेम, ज्ञान और धर्म फैलेगा

भूदान में हम चाहते हैं कि विद्या सबको मिले। सबको जमीन मिलेगी, तो उन्हें विद्या की भी सहूलियत होगी। हम समझते हैं कि इस आंदोलन से प्रेम भी फैलेगा। प्रेम से आप जमीन देंगे, तो भूमिहीन और आपके बीच प्रेम की गाँठ बँध जायगी। हम अपेक्षा करते हैं कि भूदान-आंदोलन से धर्म भी व्यापक बनेगा। आप सभी अपने-अपने गाँव के दुःखी और भूखों की चिंता करना अपना कर्तव्य समझें, उन्हें मदद दें, धर्म सहज ही व्यापक हो जायगा।

तुक्कनायकन् पालेयम् (कोयम्बतूर)
१-६-'५६

धर्मग्रन्थ परलोक के लिए

कुछ लोगों ने अपने मन में यह मान लिया है कि इन धर्मग्रन्थों का उपयोग जरूर है, परन्तु वह परलोक प्राप्ति के लिए है, इस लोक में उनका विशेष उपयोग नहीं। कई पुस्तकों में इस तरह के वाक्य भी मिलते हैं। 'कुरल' में भी इस आशय का वाक्य मिलता है : 'जैसे परलोक के लिए भगवत्कृपा चाहिए। वैसे ही इहलोक के लिए अर्थ।' 'कुरल' में दूसरे प्रकार के वाक्य भी हैं, जिनमें यह बताया गया है कि 'इस लोक में भी प्रेम की जरूरत है और परलोक में भी।' अपने मन में लोगों ने इस तरह बँटवारा कर लिया है कि इस दुनिया के अर्थप्राप्ति के नियमों के मुताबिक काम कर अर्थ की प्राप्ति करेंगे। फिर कोई विशेष मौके पर थोड़ा दान और जप कर लेंगे, तो परलोक की सिद्धि के लिए उतना काफी होगा। वह रोज के काम की चीज नहीं, क्योंकि रोज के काम में तो इस दुनिया से सम्बन्ध आता है। फिर भी सत्य, प्रेम आदि गुणों की परलोक प्राप्ति के लिए जरूरत अवश्य है। सारांश इस तरह इहलोक और परलोक में विरोध और भेद मान लिया गया। उस हालत में लोग कोशिश करते हैं कि इहलोक भी सधे और थोड़ा परलोक भी सधे। ये लोग हमेशा निष्ठुर होते हैं, ऐसा भी नहीं। कभी-कभी थोड़ी दया भी कर लेते हैं, तो उनका परलोक सुरक्षित हो जाता है। और बाकी का व्यवहार चलता ही है। हम लोगों के बीच यह भी एक बड़ी भारी गलतफहमी है कि हमारे धर्मग्रंथ परलोक के काम के हैं, इहलोक के काम के नहीं हैं।

धर्म व्यक्ति के काम का है, समाज के नहीं

दूसरे कुछ लोग कहते है कि ये धर्मग्रंथ परलोक के ही काम के हैं, ऐसा नहीं; इहलोक के भी काम के हैं। किन्तु इहलोक में व्यक्ति के काम के हैं, समाज के काम के नहीं। अपनी व्यक्तिगत चित्तशुद्धि, व्यक्तिगत उन्नति के लिए उनका उपयोग है, परन्तु उनसे समाज-रक्षा नहीं हो सकती। आज सब धर्मों की यही अवस्था है। ईसाई धर्म में ईसा ने अहिंसा का अत्यधिक उपदेश दिया है। वे प्रेम और अहिंसा के लिए किसी प्रकार का अपवाद

हृदय मेंछुपे सत्यनिष्ठा, प्रेम आदि गुण, जिनका धर्म-ग्रंथों में बड़ा गौरव गान गाया गया है, काम में आयेंगे।

भूदान से दोनों लोकों में लाभ

तमिलनाड में भूदान का एक तमिल-गीत गाया जाता है, जिसे बहुत अच्छे कवि ने लिखा है। उसमें कहा गया है कि 'हमारे गरीब भाइयों को जमीन देना पुण्य में श्रेष्ठ पुण्य है।' लोग इसका अर्थ क्या समझते होंगे, मालूम नहीं। शायद यह समझते हों कि 'अगर हम भूदान करेंगे, तो स्वर्ग में हमारी जगह सुरक्षित होगी, इसलिए थोड़ा देना चाहिए। पर इहलोक में तकलीफ न हो, ऐसे हिसाब से दें। इससे बहुत बड़ा पुण्य होगा।' पर मैं ऐसा वादा नहीं करता कि भूदान करने से आपको मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा। बल्कि मैं यही समझाऊँगा कि भूदान इसी जिन्दगी को सुधारने के लिए है। हम कबूल करते हैं कि जैसे अच्छे काम का फल इस दुनिया में मिलता है, वैसे परलोक में भी मिलता है। हमारा परलोक पर विश्वास है, परन्तु साथ ही इहलोक पर भी। हम दोनों को एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं मानते। हम मानते हैं कि जिस सत्कार्य से इस जिन्दगी में सुधार होगा, आनंद मिलेगा, उसी से परलोक में भी लाभ होगा। भूमिमालिकों से हम भूमि माँगते हैं, तो वह केवल भूमिहीनों को सुख दिलाने के लिए नहीं, बल्कि भूमिमालिकों को भी सुख पहुँचाने के लिए माँगते हैं। उन्हें परलोक में ही नहीं, इस जिन्दगी में भी सुख मिलेगा। उसे श्रेय और प्रेम दोनो मिलेंगे, जो अपनी जमीन का एक हिस्सा भूमिहीनों को बाँट देंगे। माँ बच्चे के लिए त्याग करती है, तो यह समझकर नहीं कि परलोक में इसका फल मिलेगा। उससे इहलोक में ही उसके दिल को तसल्ली होती है, आनन्द होता है। अगर हम करुणा का आश्रय लें, तो हम और हमारा समाज दोनों सुखी होंगे। परलोक में तो सुखी होंगे ही; इस जिन्दगी में भी हमारा समाधान होगा। जिन गरीबों की मदद करेंगे, उनका समाधान तो होगा ही, साथ ही सारे समाज का भी समाधान होगा। इससे इहलोक, परलोक कुल-का-कुल सधता है।

धर्म हमारा चतुर्विध सखा

जब हमें यह निश्चय हो जायगा कि धर्म हमारा व्यक्तिगत, सामाजिक, ऐहिक और पारलौकिक सखा है, तब आज की अवस्था न रहेगी। अभी तक समाज में अहिंसा, सत्य आदि सद्गुणों के विषय में इस प्रकार की निष्ठा नहीं बनी है। हमें यह श्रद्धा निर्माण करनी है। वह केवल व्याख्यान से न होगा। व्याख्यान देना होगा और आचरण से भी समझाना होगा।

भूदान से धर्म-स्थापना

भूदान इसी दिशा में छोटा-सा प्रयत्न है। उसमें कितने ही लोगों ने बहुत त्याग किया है। आज ही अखबार में नबबाबू (उड़ीसा के मुख्यमंत्री) का एक व्याख्यान पढ़ा। उन्होंने कहा है कि '१९२१ और १९३० में जितने उत्साह से हमने त्याग किया था, वह आज भी हममें मौजूद है। जब टालस्टाय ने आखिर के दिनों में घर छोड़कर श्रम करने का निश्चय किया, तो हम भी इतनी बड़ी उम्र में त्याग कर सकते हैं।' आप सब देखते हैं कि बाबा रोज दो-दो पड़ाव घूमता है, बहुत मेहनत उठाता है। लेकिन बाबा से भी दस-बारह साल बड़े गुजरात के रविशंकर महाराज दो-दो दफा घूम रहे हैं। इस तरह भूदान में अनेक लोगों ने अपने जीवन का सर्वस्व अर्पण किया है। वे रोजमर्रा कुछ-न-कुछ तपस्या कर ही रहे हैं। सच्चे अर्थ में धर्म की स्थापना हो, इसके लिए यह छोटा-सा प्रयत्न चल रहा है। अभी तक धर्म की पूरी स्थापना नहीं हुई। वह तभी होगी, जब बतायी हुई उपर्युक्त श्रद्धा लोगों में निर्माण हो। 'धर्म मेरा व्यक्तिगत सखा है, सारे समाज का सखा है, इस दुनिया के जीवन का सखा है और परलोक के लिए भी सखा है।' इस प्रकार का चतुर्विध निश्चय होने पर ही हर कोई धर्म पर अमल करेगा।

नाक्का नायकन् पालेयम्
३-९-'५६.

देना ही पड़ेगा। इसकी उत्तम मिसाल जगन्नाथपुरी का जगन्नाथ का मंदिर है। मंदिर के आस-पास की हजारों एकड़ जमीन मंदिर की है। आस-पास कुल गरीब लोग रहते हैं, सब-के-सब मंदिर के नाम गालियाँ देते हैं। क्योंकि वे उस जमीन में मजदूर बनकर काश्त करते है, लेकिन पूरा खाना नहीं मिलता। इसलिए आजकी हालत में मंदिरों के हाथों में जमीन देने का अर्थ है, उन्हें शोषण का साधन देना।

धर्म-संस्थाओं के स्थायी आय-साधन न हों

हमारी राय में ऐसी पारमार्थिक संस्थाओं की स्थायी आय न होनी चाहिए, क्योंकि उससे लोग धर्मभ्रष्ट हो जाते हैं। एक राजा अच्छा निकला, तो उसका बेटा भी अच्छा निकलेगा, ऐसा नहीं। रामानुज ने मंदिर बनाया, तो उसका शिष्य भी अच्छा निकलेगा, इसका निश्चय नहीं। इसलिए वे जो धर्म-कार्य करते हैं, उसे अच्छा मानने पर ही लोग उन्हें मदद दें। अच्छा काम करते रहेंगे, तो लोगों की उनपर सदा श्रद्धा रहेगी। फिर भी उन्हें स्थायी आय का साधन देना उन्हें आलसी बनाना है। उससे लोगों का शोषण भी होता है। इसलिए आज की हालत में मंदिरों को इनाम के तौर पर जमीन देना गलत है। कुछ लोग स्कूल के लिए जमीन देते हैं। उसमें भी मकान बनाने के लिए जमीन देना ठीक है, पर जमीन की आमदनी पर स्कूल चले, यह गलत है। अगर शिक्षक और विद्यार्थी मिलकर उस जमीन की काश्त करें, तो स्कूल को जमीन देना भी उचित माना जायगा। तब तो खेती भी तालीम का एक हिस्सा बन जायगी। उससे विद्या बढ़ेगी और श्रमनिष्ठा भी। इसलिए हम उसे पसंद करते हैं। किंतु मजदूरों से काश्त करवाई जाय और उसके मुनाफे पर स्कूल चले, तो वह शोषण ही है।

मैं नास्तिक नहीं, पूरा आस्तिक

इसीलिए हमने कहा था कि इन दिनों मंदिरों के पास जमीन रहती है, तो उसमें आज हम धर्म नहीं, अधर्म देखते हैं। हमारा दावा है कि हमने बड़ी श्रद्धा से धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया है। जैसे कोई नास्तिक बोलता है, वैसे

अभी आप लोगों ने यहाँ एक प्रतिज्ञापत्र सुना। उसमें ग्रामवालों ने गाँव की तरफ से एक संकल्प जाहिर किया है। उसमें यह था कि 'हमारे गाँव में बाहर से कोई कपड़ा न आयेगा। अपने गाँव में ही कते सूत का कपड़ा पहनेंगे। इसी तरह गाँव में दूसरे उद्योग भी खड़े किये जायेंगे। जमीन भी सबको मिलेगी। "जीवन की तालीम" भी गाँव में देंगे।' उसमें यह भी जाहिर किया गया है कि 'हम सभी गाँव में मिलजुलकर काम करेंगे, छूत-अछूत भेद न मानेंगे।' आखिर में यह भी कहा गया है कि 'हम सारे मिलजुलकर एक परिवार के जैसे रहेंगे।' याने इस काम में एक 'प्रेम-संकल्प' किया गया। इसी तरह एक 'संघर्ष-संकल्प' भी इसमें है। संकल्प के अंदर दोनों निहित हैं। जहाँ आप रामजी का नाम लेते हैं, वहाँ राक्षसों के खिलाफ खड़े होने का संकल्प उसीमें आ ही जाता है। जहाँ आप जाहिर करते हैं कि आप 'राजाराम' को मानते हैं, वहीं हम दूसरे राजा को न मानेंगे, यह स्पष्ट है।

इसमें 'संघर्ष' कैसे ?

आखिर इसमें संघर्ष क्या होगा ? हम चाहते हैं कि हमारे गाँव का इन्तजाम हम करेंगे, लेकिन दूसरे लोग कह रहे हैं कि तुम्हारे गाँव का इन्तजाम हम करेंगे। दुनिया में ऐसे भी लोग हैं, जो समझते हैं कि 'दुनिया का इन्तजाम करने की जिम्मेवारी हम ही पर है। आपके गाँव में तालीम कौन-सी भाषा में दी जायगी, कौन-सा कपड़ा आयेगा ? आपकी विरासत में किस प्रकार के हक होंगे ? यह सब हम तय करेंगे।' याने जीवन के जितने अंग हैं, सबमें हम आज्ञा देंगे और आपको उसी मुताबिक चलना होगा। जो पाठ्य ग्रन्थ हम निर्धारित करेंगे, वही यहाँ के कुल बच्चों को पढ़ना होगा। उसका अच्छी तरह अध्ययन करें, उसी की परीक्षा देनी होगी। इस पर यदि आप कहेंगे कि नहीं, हम तो अपनी मर्जी की किताब लेंगे और पढ़ेंगे, तो बस, संघर्ष आ गया। आप कहेंगे कि हम स्कूल चलायेंगे, तो वे कहेंगे : 'नहीं चला सकते।' फिर भी आप चलायेंगे,

हमें इसका कोई डर नहीं कि दुनिया जोरों से हिंसा और महायुद्ध की ओर जा रही है। हमने बहुत बार कहा है कि महायुद्ध होनेवाला है, तो होने दो। जितने जोरों से हिंसा आयेगी, उतने ही जोर से दुनिया में अहिंसा की ताकत आयेगी। फिर वह खरगोश आँखें खोल कर देखेगा कि यह कछुआ मुकाम पर पहुँच गया। इसलिए अपना यह काम कितना भी धीरे-धीरे चलता दीखता हो, उसकी विशेष कीमत है। कोई पराक्रमी पुरुष सारे गाँव को आग लगा दे और ५ मिनट में गाँव खाक हो जाय तथा दूसरा २५ दिनों में गाँव बनाये, तो ५ मिनट में गाँव खतम करनेवाले के पराक्रम की कोई कीमत नहीं।

मनुष्य का मन बदलता है

इसलिए भूदान की तरफ देखने की आपकी दृष्टि ऐसी हो कि यह शांति और अहिंसा का कछुआ चल रहा है। जब लोगों का मन बदलेगा, तभी इसमें वेग आयेगा। लेकिन मन बदलने की बात आती है, तो लोगों की कमर ही टूटती है। कहते हैं कि 'मनुष्य का मन जैसा है, वैसा ही रहेगा, वह बदल नहीं सकता।' पर यह खयाल गलत है। मनुष्य का मन बदलता है और सतत् बदलता है। एक लाख साल पहले जो मनुष्य का मन था, वह आज नहीं रहा। विज्ञान के जमाने में मनुष्य-मन बड़ी तीव्र गति से बदल रहा है। हमने यह भी देखा कि बैलों या गदहों के मन में लाख साल में कोई बदल नहीं हुआ। क्या कभी बैलों और गधों का भी इतिहास लिखा गया? पुराने जमाने के और आज के बैलों की सभ्यता में कोई फर्क नहीं। मनुष्य की विशेषता इसी में है कि उसका मन बदलता आया है और आगे भी बदलेगा। हम एक और विशेष बात मानते हैं कि इसके आगे वही मनुष्य और वही समाज टिकेगा जो न केवल मन बदलेगा, वरन् मन से भी ऊपर उठेगा।

द्विविध कार्य

मन में फर्क किये बिना समाज ऊपर न ऊठेगा और मन से ऊपर उठे बगैर उसे दिशा मालूम न होगी। इसलिए हमें मन को सुधारना होगा और उससे ऊपर भी उठना होगा। अपना रद्दी घर सुधारना होगा और घर के

मिट्टी तो खायेगा नहीं। बारिश पड़ेगी, फिर भी अगर उसमें वह बीज न बोये तो घास ही उगेगी। घास वह खा नहीं सकता। खाने लायक फसल तभी उगेगी, जब अपनी मिट्टी में वह अपना पसीना डालेगा। इसलिए इस दान से लेनेवाला आलसी नहीं बन सकता। उसकी उन्नति ही होती है। इसीलिए यह दान सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

जमीन का दुरुपयोग संभव नहीं

तीसरा बात यह है कि हम अगर किसी को दो पैसे दे देते हैं, तो वह उसका दुरुपयोग भी कर सकता है। पर वह जमीन का दुरुपयोग भी क्या करेगा? हाँ, जमीन में तम्बाकू बो सकता है। किंतु दान देते समय हम ही उसे कह देंगे कि इस जमीन में तम्बाकू न बोओ। इस तरह से जमीन का दुरुपयोग भी टलेगा। इसलिए भी यह सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

देने और लेनेवाले दीन-घमंडी नहीं बनते

जब कोई दाता किसी को दान देता है, तो उसके चित्त में यह अहंकार आ सकता है कि 'मैंने दान दिया।' इसके विपरीत लेनेवाले में दीनता आ सकती है। पर भूदान में गरीब का हक समझकर उसे जमीन दी जाती है। बाप अपने बेटे को एक हिस्सा जमीन दे, तो क्या उसे उससे घमंड होगा? बाप समझता है कि बेटे का वह अधिकार है, इसलिए उसे दातृत्व का अहंकार नहीं हो सकता। इसी तरह भूदान में गरीब का हक समझकर भूमि दी जाती है। जो खुद काश्त नहीं करते, उनका धर्म है कि वे भूमिहीनों को भूमि दें। जो पढ़ना नहीं जानता, उसे अपने पास पुस्तक रखने की कोई जरूरत नहीं। जो पुस्तक पढ़ना जानता है, उसे वह दे दी जाय। इस तरह भूदान में देनेवाला घमंडी नहीं बन सकता और न लेनेवाला दीन-हीन बनता है। इसलिए भी भूदान सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

समविभाजन के लिए

महाभारत की कहानी है। पांडव कहते थे हमारा जमीन पर अधिकार है।

से दिल्ली में सत्ता आयी और कुछ मद्रास भी पहुँची, पर अभी एक गाँव में वह नहीं पहुँच पायी। दिल्ली में सूर्योदय होगा, तो क्या गाँवों में अंधेरा रहेगा? यह कौन कबूल करेगा? किन्तु आज तो गाँव-गाँव को बताना पड़ता है कि स्वराज्य आया है। सूर्य की किरणें ब्राह्मण, हरिजन, अमीर, गरीब, हिंदू, मुसलमान सबके घरों में प्रवेश करती हैं। शहरों में भी प्रवेश करती है और देहातों में भी। अगर भूमिहीनों में जमीम बँटेगी, तो स्वराज्य को किरणें सूर्य की किरणों के समान घर-घर में पहुँच जायँगी। हर मनुष्य महसूस करेगा कि स्वराज्य आया है, कोई बड़ा और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। इसलिए भी भूदान का काम सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

दुनिया को राह मिलेगी

आज दुनिया की हालत बिलकुल डाँवाडोल है। छोटे-छोटे मसलों पर राष्ट्रों के बीच बड़े-बड़े वाद-विवाद और लड़ाइयाँ हो सकती हैं। बड़े-बड़े शस्त्रास्त्र बनाये गये हैं, पर उनसे बड़े-बड़े सवाल हल होंगे, यह विश्वास नहीं रहा। उधर हाइड्रोजन बम है, इधर ऐटम बम है। फिर भी उससे कोई प्रश्न हल नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में अगर हम यह सिद्ध कर दें कि बड़े-बड़े मसले शांति से सिद्ध हो सकते हैं, तो दुनिया बच जायगी, इसमें कोई शक नहीं। हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी समस्या जमीन की है। अगर वह सुन्दर तरीके से हल हो, तो उससे दुनिया को अच्छी राह मिले। इसलिए भी यह पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

मेट्टू पालेयम्
१९-९-'५६.

में हर जगह दीख पड़ता है। केवल तमिलनाड और कर्नाटक में ही नहीं, काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक यह भावना दीखती है।

अवश्य ही भारत के लोगों का जीवन-स्तर नीचा है, परन्तु चिंतन का स्तर बहुत ही ऊँचा है। कोई गुस्सा करता है, तो लोगों की परीक्षा में बिलकुल फेल हो जाता है। कार्यकर्ता में अहंकार हो, तो लोग उस पर आपत्ति करते हैं। याने वे नाड़ी ठीक से पहचान लेते हैं। उत्तम गाड़ीवान बैल को तुरत जान लेता है। हिन्दुस्तान के लोग भी फौरन पहचान लेते हैं कि मनुष्य में कितना पानी है। किसी में अहंकार दीखते ही वे यह समझ जाते हैं कि यह अनुकरणीय नहीं, चाहे कितना ही विद्वान क्यों न हो। यहाँ सत्पुरुषों की एक कसौटी बनी है। हमारे एक मित्र कह रहे थे कि यूरोप के लोगों की सेवा करना आसान है। किन्तु यहाँ हमारी सेवा करने की इच्छा होती है, परन्तु लोग एकदम उसे नहीं लेते। मेरे यह पूछने पर कि ऐसा क्यों होता है?, लोगों को सेवा लेने में क्या कष्ट है?, तो वे बोले : "ये लोग दीखने में तो मूर्ख दीखते हैं, परन्तु सेवक की कसौटी करते हैं। उसमें जरा-सा दोष दीखा, तो उसे फौरन फेल कर देते हैं।' मैंने उनसे कहा : 'हिन्दुस्तान के देहातियों की सेवा महापुरुषों ने की है। हिन्दुस्तान के महापुरुष युनिवर्सिटी बनाकर एक जगह नहीं बैठते थे, बल्कि गाँव-गाँव और घर-घर जाते और लोगों के पास जाकर ज्ञान देते थे। वे बिलकुल नम्रता से जाते और सारा हिन्दुस्तान घूमते थे।

सतत घूमने वाले नम्र ज्ञानी

लोग कहते हैं कि रेल, हवाई जहाज के इस ज़माने में भी बाबा हिन्दुस्तान भर पैदल घूम रहा है, इसलिए यह बड़ी बात दीखती है। किंतु घूमना कोई बड़ी बात नहीं। शंकर और रामानुज कितना घूमे थे? अभी हमने आप्परस्वामी का चरित्र पढ़ा। वह भला मनुष्य यहाँ से पटना गया और वहाँ एक जैन गुरु का शिष्य बनकर बरसों रहा। वह केवल ज्ञान की तलाश में घूमा। आखिर उनकी शैवधर्म में निष्ठा बढ़ी और फिर वे यहाँ वापिस लौटे। जिस जमाने में आमदरफ्त के कोई साधन न थे, उस समय वे कुल हिन्दुस्तान घूमे। आज यहाँ से

सज्जन समाज से अलग न रहें

'सज्जन' समाज का मक्खन है। वह समाज को बिलोकर निकाला हुआ है। अगर उस मक्खन को छाछ से अलग रखा जायगा, तो छाछ फीकी पड़ जायगी। अगर मक्खन छाछ के साथ मिला हुआ रहा तो छाछ गाढ़ी बनेगी, उसमें पुष्टि आयेगी, समाज में भी पुष्टि तभी रहती है, जब समाज के महापुरुष समाज के साथ मिले-जुले रहते हैं। किंतु बीच के जमाने में लोगों के मन पर निवृत्ति का गलत असर हुआ। समाज की तकलीफों को देख सज्जन उससे अलग गये। किन्तु जहाँ सज्जन समाज से अलग होते हैं, वहाँ दोनों का अकल्याण होता है।

थोड़ा-सा दही भी दूध में डालने पर हंडे भर दूध का दही बना देता है। लेकिन उसे दूध से अलग रखा जाय, तो न दूध 'दूध' रहेगा और न दही 'दही' ही। दूध बिगड़ जायगा और दही खट्टा होता जायगा। सज्जनों के अलग हो जाने से समाज तो बिगड़ ही जाता है। सिवा इसके समाज से अलग रहने की वृत्ति के कारण सज्जन भी उत्तरोत्तर विरक्त बनता है—खट्टा बनता है। विरक्ति तभी शोभादायक होती है, वैराग्य की तभी कीमत होती है, जब वह अनुराग के साथ हो। भक्ति और प्रेम के साथ वैराग्य रहे, तो उसमें मिठास आती है। लोगों की हम सेवा करते हों, उनपर प्रेम करें, पर अपने भोग के लिए वैराग्य रखें, तो वह अच्छा है। किन्तु 'इसकी संगति नहीं चाहिए, वह दुर्जन है, इसलिए उससे अलग रहें,' ऐसा वैराग्य हो तो वह किस काम का?

वैराग्य का मिथ्या अर्थ

आपने सुना होगा कि बड़े-बड़े पुरुष गुस्सा करते थे। हिन्दुस्तान में कई पुरुषों की कहानियाँ हैं कि वे किसी को शाप दे देते तो वह खतम हो जाता था। क्या शाप देना महापुरुष का लक्षण है? उनका लक्षण प्रेम और करुणा होगा या शाप देना? हम कितने ऋषियों के किस्से सुनते हैं कि बेचारे क्रोध से भरे थे, काम से पीड़ित थे। जहाँ समाज से बिलकुल अलग रहकर वैराग्य-भावना आती है, वहाँ क्रोध आ ही जाता है। बड़े-बड़े ऋषि भी अप्सराओं को

दोष दीखेंगे। फिर हम क्या करेंगे ? इसलिए समाज के साथ एकरूप होने में ही समाज का भी भला है और सज्जनों का भी भला है।

हमारे काम का मध्यबिन्दु सत्पुरुष

हम बहुत बार कहते हैं कि भूमिदान में हम भूमि इकट्ठा करने के लिए नहीं निकले हैं। हम तो 'सज्जन-संघ' बनाना चाहते हैं, सज्जनों को खींचना चाहते हैं। जो केवल करुणा से भरे, लोकसेवा में जीवन व्यतीत करने में ही खुशी माननेवाले तथा व्यक्तिगत अहंकार से रहित जितने सज्जन हम इकट्ठा करेंगे, उतना ही यह काम जल्दी होगा। कोई कहते हैं कि कांग्रेस या सरकार की मदद मिलेगी, तो काम जल्दी होगा। हम कहते हैं : 'जो हमें मदद दे सकें, सबकी मदद लेने के लिए हम राजी हैं। किंतु हमारा न सरकार पर विश्वास है, न कांग्रेस पर और न किसी दूसरी संस्था पर। हमारा विश्वास तो सत्पुरुषों के हृदय पर है। ऐसे सत्पुरुष कांग्रेस में हैं, सरकार में हैं और दूसरी संस्थाओं में भी। हमारा संबंध उन सत्पुरुषों से है, उन संस्थाओं से नहीं। हमारा ध्यान हमेशा व्यक्तियों की तरफ रहता है। हमें ऐसे जितने सज्जनों का सहवास मिलेगा, उतना ही यह काम बढ़ेगा।'

भूदानयज्ञ से हिन्दुस्तान की सज्जनता जाग उठी है। कितने ही लोगों ने इसमें अपना सर्वस्व दे दिया है। अभी आप बाबा को घूमते देखते हैं। परन्तु दूसरे प्रान्तों में ऐसे कई लोग सब प्रकार की व्यक्तिगत कामनाओं को छोड़कर घूम रहे हैं। फिर उनके पीछे दूसरे भी आते हैं। बड़ा काम सबकी मदद से होता है, किंतु इसका मध्यबिंदु है सत्पुरुष। हम ग्रामदान की बात करते हैं, परन्तु ग्रामदान तभी टिकेगा, जब उसके पीछे कोई सत्पुरुष हो। फिर गाँव की भी समस्याएँ उसके जरिये हल हो सकती हैं।

मेक पालेयम्
२०-९-५६

हैं। मैं अपनी माँ का नाम लेता हूँ, आप अपनी माँ का नाम लेते हो, दोनों में फर्क नहीं है, दोनों का रास्ता एक ही है।

छोटी चीजों पर मतभेद

सभी सत्पुरुषों ने, जिन्होंने धर्म-संस्थापना की, दुनिया को एक ही रास्ता बताया है। फिर भी कहीं अगर भेद हों, तो वे परिस्थिति के कारण ही होते हैं। सवाल उठाया जाता है कि पश्चिम की तरफ मुँह किया जाय या पूरब की तरफ? हिंदू सूर्य की ओर देखते हैं, इसलिए वे सुबह प्रार्थना करने के लिए बैठेंगे, तो पूरब की तरफ मुँह करेंगे और शाम को पश्चिम की तरफ। मुसलमान कहते हैं, जिधर काबा हो, उधर मुँह कर के बैठना चाहिए। चाहे सूर्य पीछे हो या सामने, पर 'काबा' सामने होना चाहिए। काबा उनका एक धर्मस्थान है, उसके स्मरण से उन्हें अच्छा लगता है, तो उससे मेरा क्या बिगड़ता है? ये सब साधारण बातें है, ऊपरी फर्क हैं, उनसे धर्म का कोई संबंध नहीं। परमेश्वर में सत्य, प्रेम, करुणा, दया आदि गुण हैं, जितना प्रेम अपने पर करते हो, उतना ही दूसरों पर करो, आदि सब बातें ऐसी हैं, जो सभी सत्पुरुष बताते हैं। लेकिन हमारा इतने से संतोष नहीं होता। कोई कहते हैं कि घुटने टेक कर ही प्रार्थना करनी चाहिए, तो दूसरे कहते हैं, पद्मासन लगाकर ही प्रार्थना करे। हम कहते हैं कि आप जो चाहे सो करो, मुझे दोनों चीजें एक-सी मालूम होती हैं। अपनी यात्रा में हम पहले सुबह १२-१४ मील चलते थे, लेकिन आजकल दिन में दो बार चलते हैं। पहले हम सुबह की प्रार्थना भी चलते-चलते करते थे, जिससे समय बच जाय। सुबह कूच मार्च हो, तो प्रार्थना शुरू होती थी। कुछ लोग कहते हैं कि खड़े-खड़े या चलते-चलते प्रार्थना करना ठीक नहीं, प्रार्थना के लिए बैठना ही चाहिए। हम कबूल करते हैं कि बैठने से प्रार्थना अधिक शांति से हो सकती है, पर चलते-चलते प्रार्थना करें, तो भी उसमें कोई गलती है, ऐसा हम नहीं मानते। बीच में हमने चर्खा कातते-कातते प्रार्थना चलायी थी। कुछ लोगों को वह ठीक नहीं लगा। हमने उनसे पूछा : 'प्रार्थना के साथ वीणा चलेगी या नहीं?'

तरंगें होती हैं, तरंगों का समुद्र नहीं। बल्कि तरंगें तो उसमें आती-जाती हैं, पर समुद्र कायम रहता है। तू समुद्रतुल्य है, मैं तो उसकी एक तरंग :

'सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥'

यह शंकराचार्य का अद्वैत। लेकिन यह मानना, न मानना 'फिलासिफिकल' (दार्शनिक) बात हो जाती है। हम नहीं समझते कि इससे कोई फर्क पड़ता है। हमें तो ऐसी आदत पड़ी है कि हम एक ही भोजन में दाल, भात, रोटी, दूध सब एक साथ खा लेते हैं। हम एक साथ द्वैत भी खाते हैं, अद्वैत भी। हमारी पचनेन्द्रिय इतनी मजबूत है कि दोनों हजम कर सकते हैं। जिसकी पचनेन्द्रिय मजबूत नहीं, वह एक ही चीज खाये। इसमें कोई विरोध नहीं हो सकता।

अद्वैती का किसी के साथ झगड़ा नहीं

आप हमें समझाना चाहते हों तो समझाइये, आपको समझाने का हक है। रामानुज शंकर को समझाता है और शंकर रामानुज को। इस तरह की चर्चाएँ तो चलेंगी ही। उसमें विचारभेद भी रहेगा, क्योंकि वहाँ अनुभव का सवाल आता है। अगर किसी को अनुभव हुआ कि मैं ईश्वर के साथ एकरूप हूँ, तो कौन उसे क्या कहेगा? और किसीको अनुभव आये कि 'ईश्वर में और मुझमें जरा अंतर है', तो उसे भी कौन क्या कह सकता है? मैं आपको एक मिसाल देता हूँ। इस्लाम में परमेश्वर को स्वामी और अपने को भक्त माना जाता है। किंतु उनमें भी 'सूफी' ऐसे निकले, जो कहते थे कि 'अनलहक'—'मैं ही वह हूँ'। परिणाम यह हुआ कि 'मन्सूर' नाम के एक महापुरुष पर मुसलमानों ने पत्थर फेंके, सिर्फ इसीलिए कि वह कहता था कि 'मैं और वह एक है।' वे उसे पत्थर मारते गये और वह यही बोलता गया। आखिर बोलते-बोलते वह मर गया।'

अब आप क्या कहना चाहते हैं? यह तो अंदर के अनुभव की बात है। इसे हम खुला रखना चाहते हैं, इसे बंद करना गलत है। हम अपने लिए एक

समन्वय का तरीका

विनोबाजी ने कहा : इसके लिए उपाय हो सकता है। आपको काशी जाना है और हमें काश्मीर, तो इसमें कोई झगड़ा नहीं हो सकता। काशी तक हम दोनों साथ जायँगे। आगे मैं काश्मीर जाऊँगा और आपको इन्दौर जाना हो, तो आप उधर जायँगे। आगे की बात अनुभव की है। मैं आपको समझा सकता हूँ कि इंदौर जाना अच्छा नहीं है, हमारे साथ काश्मीर ही चलिये। आप भी मुझे समझा सकते हैं कि काश्मीर में बहुत ठंड होती है, इसलिए इंदौर ही चलिये। अगर मुझे आपकी बात जँची, तो वहाँ से मैं इंदौर चलूँगा। यह तो अनुभव की लेन-देन है। विस्तृत क्षेत्र (हायर स्फिअर) में फर्क पड़ सकता है, परंतु प्रेम, भक्ति आदि में कोई फर्क नहीं। मैंने आपके सामने एक 'कान्क्रीट' चीज रखी है। 'मैथिव' और 'जान' में फर्क है न ?, इसका उत्तर कोई ईसाई नहीं दे सकता। उनमें से एक का 'स्टैण्ड' बिलकुल नैतिक (मॉरल) है और दूसरे का भिन्न है। तो आप मानेंगे न, कि दोनों में इतना फर्क है ? मैं कहता हूँ कि अगर फर्क न हो, तो लिखा ही किसलिए ? लेकिन आप 'जान' और 'मैथिव' में रिकन्साइल (समन्वय) कर सकते हैं।

एक भाई ने कहा : 'वी वाण्ट टु नो दी मेथड आफ रिकंसिलिएशन' (हम समाधान कराने की पद्धति जानना चाहते हैं)।

विनोबाजी ने कहा : जहाँ तक नैतिक सवाल और जन-सेवा, प्रेम, करुणा आदि बातें हैं, वहाँ तक हम एक हैं। आखिर 'हिन्दुइज्म' क्या है ? एक ओर वह अद्वैत को ग्रहण करता है तो दूसरी ओर नास्तिकों को। कपिल महामुनि हिंदू थे, पर वे ईश्वर को नहीं मानते। शंकराचार्य अद्वैती थे, वे ईश्वर और जीव को एक मानते थे। रामानुज की पोजीशन शंकराचार्य की पोजीशन से कुछ भिन्न थी, परंतु दोनों हिंदू थे। लेकिन कपिल महामुनि की पोजीशन तो बिलकुल ही भिन्न थी। वे कहते थे, 'ईश्वर है ही नहीं। जो कुछ है, मैं ही हूँ।' इस तरह तीन 'पोजीन्स' थीं, फिर भी तीनों का हिंदूधर्म में समन्वय हुआ। तब क्या हिंदू और ईसाई समन्वित नहीं हो सकते ?

इसपर एक भाई ने कहा : हम दोनों कम्युनिटीज् (समुदायों) की सेवा करना चाहते हैं, उनकी मदद करना चाहते हैं।

पाप से नफरत, पापी से नहीं

विनोबाजी ने कहा : बापू ने यह बहुत अच्छी तरह समझाया है कि हमें मनुष्यों का नहीं, उनके गलत कामों का विरोध करना है। मनुष्यों से तो प्रेम ही करना है। कोई कितना ही दुर्जन या पापी हो, फिर भी उस से प्रेम ही करना है। क्योंकि हम भी अंदर से पाजी हैं। इसलिए हम किसी से नफरत नहीं, सबसे प्रेम करेंगे। लेकिन जो पापी काम है, उसका विरोध करेंगे।

सर्वोदय के लिए अहिंसा

आपने 'रिकंसाइल' शब्द गलत इस्तेमाल किया है। आप कहना चाहते हैं कि समाज में स्वार्थ के लिए संघर्ष होते हैं, तो उस हालत में हम सबका भला कैसे करें ? याने सर्वोदय कैसे हो ? आज समाज में स्पर्धा, परस्पर-विरोध चलता है, हरएक एक दूसरे को तोड़ना चाहता है, हम एक को आनंद पहुँचाते हैं, तो दूसरे को तकलीफ होती है। ऐसे परस्पर विरोधी स्वार्थों की हालत में हम कैसे काम करें, ताकि सर्वोदय बन सके, यही आपका सवाल है न ? तो फिर इसके लिए अहिंसा को लाना होगा, प्रेम से काम करना होगा। यह ऐसा सवाल है, जिसका उत्तर कठिन नहीं। वह उत्तर आप भी जानते हैं और हम भी। वह है, जो हमारा विरोध करता है, हम उससे प्रेम करें।

एक भाई ने कहा : 'पीपल् डू नाट फील दैट इट इज प्रैक्टिकेबल' (लोग इसे व्यावहारिक नहीं मानते)।

दुर्जनों के सामने अहिंसा अधिक कारगर

विनोबाजी ने कहा : प्रेम को द्वेष के क्षेत्र में ही काम करने में आनंद आता है। सामने घना अँधेरा हो, तो दीपक को खुशी होती है, क्योंकि घने अँधेरे में वह अधिक चमकता है। एक जापानी भाई ने हमसे सवाल पूछा था कि 'गांधीजी की अहिंसा अंग्रेजों के सामने चली, क्योंकि अंग्रेज कुछ भलाई भी

एक बार किसी ने रामकृष्ण परमहंस को पूछा: 'गीता का सार क्या है ?' उन्होंने बड़े मजे से समझाया और कहा: 'गीता-गीता-गीता इस तरह जप किया करो।' 'गीता-गीता' जोर से बोलना शुरू करोगे, तो वह 'तागी-तागी होगा' (बंगाली में तागी का अर्थ त्यागी होता है।) फिर आपको गीता का सार मिल गया" उनका समझाने का एक तरीका था। जैसे बच्चों को समझाते हैं, वैसे समझाते थे। वेदान्त समझाते थे, तो वह सहज विनोद से, सादे शब्दों में।

त्याग ही गीता का तात्पर्य

त्याग ही गीता का तात्पर्य है। उसे कोई 'अनासक्ति' का नाम देते हैं, तो कोई 'फलत्याग' का। गीता में 'मोक्ष-संन्यास योग' बतलाया है, याने ऐसी मनःस्थिति, जिसमें मोक्ष की भी जरूरत नहीं। मोक्ष का भी त्याग गीता समझाती है। यहाँ त्याग की हद हो गयी। यहाँ मुक्ति की कैंची मुक्ति पर ही चलायी गयी है और इसके लिए 'मोक्ष-संन्यास' 'यह शब्द लिया। शब्द कुछ भी लें, तात्पर्य यही है कि गीता त्याग सिखाती है और कहने में संकोच होता है, परंतु भारतीय सस्कृति का यही मूल है। संकोच इसलिए कि इस तरह का दावा करने लायक हमारा आचरण नहीं है।

भारत का वैभव त्यागप्रधान संस्कृति

फिर भी वस्तु-स्थिति यह है कि यहाँ के लोगों को त्याग का संदेश सुनने में जितना प्रिय लगता है, उतना और कोई संदेश नहीं, जब कि त्याग करना बहुत लोगों को मुश्किल जाता है। बाबा रोज गाँव-गाँव घूमता और हजारों श्रोता अत्यंत शान्ति से उसका संदेश सुनते हैं। उसकी ऐसी कोई भी सभा नहीं होती जिसमें बच्चे, बूढ़े, बहनें सब शान्ति से न सुनते हों और सबके दिल को समाधान न हो। यह समाधान भी उन लोगों को होता है, जिनके जीवन में भोग ही प्रधान है, उन्हें बाबा का त्याग का ही संदेश अच्छा लगता है,

इसी पर है। इसीलिए यज्ञ, अध्ययन और दान तीनों चीजों की उसमें जरूरत है। याने गृहस्थाश्रम में यज्ञ और दान तो है ही। और तीनों के बीच अध्ययन का काफी महत्व है, और वह अत्यावश्यक है। उपनिषद ने इस पर और जोर दिया। कहा है 'शुचौ देशे स्वाध्यायम् अधीयानः।' अर्थात् अपने घर में एक पवित्र जगह बनाये और वहाँ बैठकर स्वाध्याय करे। सारांश, अध्ययन गृहस्थाश्रम में रखा गया है।

मनुष्य को जीवन के लिए अनेक साधन बनाये गये हैं : तप, दान, अतिथि-सेवा आदि। किंतु हर साधन के साथ अध्ययन-अध्यापन जोड़ा गया है। बार-बार कहा है, ऋतम् होना चाहिए और साथ में स्वाध्याय भी। सत्य होना चाहिए और साथ में स्वाध्याय भी। और इन्द्रियों का दमन होना चाहिए और साथ में स्वाध्याय भी। बार-बार एक-एक साधन का नाम लेकर उसके साथ स्वाध्याय जोड़ दिया गया है। 'ऋतञ्च स्वाध्याय प्रवचनेच, सत्यंच स्वाध्याय प्रवचनेच'। इस तरह अध्ययन-अध्यापन को इतना महत्व दिया गया है। ब्रह्मचर्य में भी इसका महत्व है। ज्ञानप्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता मानी गयी है : 'सत्येन लभ्यस् तपसा ह्येष आत्मा, सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।' अर्थात् सम्यक् ज्ञान के लिए ब्रह्मचर्य चाहिए, इस तरह ब्रह्मचर्य में अध्ययन को महत्व दिया गया है।

इसके बाद इद्रिय, बुद्धि और मन का विकास करने की बात है। किसी विशिष्ट इंद्रिय का निग्रह करना, इतना ही स्थूल अर्थ नहीं है। वाणी और बुद्धि का उत्तम उपयोग होना, कान से अच्छी चीजें सुनना, खूब ज्ञान-श्रवण करना, यह सब चीजें ब्रह्मचर्य में आ जाती हैं। तुलसीदासजी ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है :

> जिनके श्रवण समुद्र समाना, कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
>
> भरहिं निरन्तर होहि न पूरे।,

समुद्र में असंख्य नदियाँ जाती हैं, फिर भी वह भरता नहीं, इसी तरह अनन्त हरिकथा, हरिचर्चा सुनते-सुनते भी हमारे कान भर जायँ। इसके सिवा सतत ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इस तरह ब्रह्मचर्य की बड़ी व्यापक और भावात्मक कल्पना है।

परिवर्तन लाने में देर लगेगी। इसलिए दिमाग बदलने के बजाय हिंसा से सिर काट कर जल्दी काम करा लेना चाहिए। किंतु श्रीमानों के सिर काटना, इसका नाम क्रान्ति नहीं है। सिर काटने से क्रान्ति नहीं होती, क्योंकि उसके दिमाग में बिलकुल फर्क नहीं पड़ता। एक सुखी को दुःखी और दुःखी को सुखी बनाने पर कौन-सा फर्क हुआ? समाज में कोई दुःखी और कोई सुखी तो तब भी रहा ही। क्या यह क्रान्ति है? क्रान्ति होती है विचार-परिवर्तन से। इसलिए प्रेम से समझाना पड़ेगा। वह भावात्मक काम होगा। उसमें से धर्म होगा।

लोग कहते हैं, यह काम कानून से जल्दी होगा। पर वे एक सीधी-सी बात नहीं समझते कि सरकार जमीन छीन लेगी तो गाँव-गाँव में लिटिगेशन (मुकदमा) चलेगा, झगड़े चलेंगे, गाँव-गाँव में असंतोष रहेगा। उससे क्या होगा? भूदान के तरीके से देरी लगेगी, यह कहनेवालों से मैं पूछता हूँ कि घर बनाने में देरी लगती है और जलाने में पाँच मिनट। यदि जल्दी करना है, तो क्या घर में आग लगाओगे? इसलिए स्पष्ट है कि जो काम अभावात्मक है, उससे काम न बनेगा।

ब्रह्मचर्य और त्याग जैसे अभावात्मक नहीं, वैसे ही अहिंसा भी अभावात्मक नहीं। मन के अन्दर खूब हिंसा चले और हाथ बाँध रखें, तो क्या वह अहिंसा है? यू० एन० ओ० में क्या होता है? क्या वहाँ अहिंसा है? टेबुल पर आमने-सामने बैठते हैं, तलवार के बदले में परस्पर अविश्वास लेकर बैठते हैं। अविश्वास तलवार का काम करता है। अहिंसा में तलवार हाथ में न लेना, इतना ही नहीं। हृदय में प्रेम भी भरा होना चाहिए। हरएक के हृदय में ज्योति होती है, यह ध्यान में रखना होगा। यह भावात्मक विचार है।

भौतिक के साथ आध्यात्मिक उन्नति भी जरूरी

भूदान-यज्ञ बड़ा ही विधायक कार्य है। लोग कहेंगे कि यह पंचवर्षीय योजना—जैसा ही कार्य है। दोनों में कोई फर्क नहीं, दोनों निर्माण-कार्य हैं, फिर भी फर्क है। वह योजना भौतिक विकास के बारे में सोचती है, परन्तु भौतिक

भी उसे वह छिपाता है। कभी प्रकट भी करता है, तो उन मूर्ख साथियों के ही सामने, जिनसे कोई लाभ नहीं। फिर भी माता-पिता से वह उसे छिपाता ही है, जिनके दिल में बच्चों के लिए सिवा करुणा के और कुछ नहीं होता। वह उनसे इसलिए छिपाता है कि उसे दंड का भय रहता है। शायद माता जरा कम दंड दे, इसलिए संभव है वह कभी माता के सामने अपना दिल खोल दे।

सत्य के लिए निर्भयता जरूरी

आप सत्य की महिमा स्थापित करना चाहते और सब सद्गुणों में श्रेष्ठ गुण सत्य को मानते हैं। सब दुर्गुणों में बदतर दुर्गुण असत्य को बतलाते हैं और छोटे-छोटे दुर्गुणों के लिए दंड देते हैं। परिणाम यह होता है कि मनुष्य असत्य करता है और छोटे-छोटे दोष छिपाता है। इससे अपराध बढ़े हैं। जो लोग सत्य की महिमा मानते और उसके साथ दंड भी देते हैं, वे सत्य का ही खंडन करते हैं। सत्य की महिमा तभी स्थापित होगी, जब किसी को अपराधों के लिए दंड का भय न रहेगा। तब तक सत्य पर जोर दें, तो वह अर्ध-नीति ही रहती है, पूर्ण-नीति नहीं। इसलिए सत्य के साथ निर्भयता को महत्व देना होगा। सब प्रकार के अपराधों को दंड का भय न रहे। आप कहेंगे कि इससे अपराध बढ़ेंगे, तो हम कहते हैं कि फिर सत्य को इतना महत्व ही क्यों देते हैं?

अपराध रोग ही है

दंड न हो, तो मनुष्य अपने अपराधों को प्रकट करेगा, जैसे कि आज वह अपने रोगों को प्रकट करता है। अगर उसे विश्वास हो जाय कि अपराधों को प्रकट करने से लोगों की सहानुभूति और अपराधों के मार्जन के लिए मदद मिलती है, तब तो वह प्रकट करेगा। जिसे हम अपराध कहते हैं, वे भी रोग ही हैं। रोगों को हम छिपाते नहीं। बाबा के पेट में 'अलसर' है, लेकिन बाबा उसे छिपाता नहीं, प्रकट करता है। किन्तु अगर लोग कल यह मानने लगें कि बाबा के पेट में अलसर है, यह कितना अनीतिमान् मनुष्य है, तो फिर

लेकिन पति को भी पत्नी के लिए उतनी ही निष्ठा होनी चाहिए, यह क्यों नहीं कहते ? पत्नी को अगर पतिव्रता होना चाहिए तो पति को भी पत्नीव्रत होना चाहिए। आज पत्नी एक साथ दो शादियाँ नहीं कर सकती, परन्तु पति कर सकता है। किसी पुरुष से व्यभिचार हुआ तो उतना गुनाह नहीं माना जाता, पर वही किसी स्त्री से हुआ, तो गुनाह मानते हैं, यह क्यों ? उपनिषदों में तो उल्टा लिखा है। उसमें एक अपने राज्य में क्या-क्या अच्छाई है, उसका वर्णन करते हुए कहता है कि : "न स्वैरी, स्वैरिणी कुतः" मेरे राज्य में व्यभिचारी पुरुष ही नहीं, तो फिर व्यभिचारी स्त्री कहाँ से होगी ? उसका तात्पर्य यही है कि जहां पुरुष दुराचारी होते हैं, वहाँ भी स्त्रियाँ सदाचारिणी होती हैं, क्योंकि अक्सर वे ज्यादा धर्मनिष्ठ होती हैं। इसलिए जहाँ दुराचारी पुरुष ही नहीं, वहाँ दुराचारी स्त्री कहाँ से होगी ? याने वह दुराचार की ज्यादा-से-ज्यादा जिम्मेवारी पुरुषों पर डालती है। किन्तु आज के समाज ने वह जिम्मेवारी स्त्रियों पर डाली है। जिम्मेवारी समान होनी चाहिए न ?

स्त्रियों के गले में 'ताली' (मंगलसूत्र) डाली जाती है, इसलिए कि उनके पति है। लेकिन पति की कोई स्त्री है, तो उसके गले में कोई 'ताली' की जरूरत नहीं, याने वह 'बेताल' है। इस तरह की एकांगी नीति कभी प्रतिष्ठित नहीं हो सकती, पूर्णनीति ही होनी चाहिए। अगर आप चाहते हैं कि स्त्रियाँ 'सतीत्व' रखें, तो पुरुषों को 'सत्व' रखना चाहिए। दोनों पर समान जोर होना चाहिए। किसी का पति मर जाय और वह विधवा हो जाय, तो उसे व्रतनिष्ठ रहना चाहिए, यह बहुत अच्छी बात है। लेकिन किसी की स्त्री मर जाय, तो उसे भी व्रतनिष्ठ रहना चाहिए। वह क्यों दूसरी स्त्री कर पाये ? यहाँ मैं कोई विनोद नहीं कर रहा हूँ, बल्कि यही बता रहा हूँ कि अपने समाज की इन न्यूनताओं को दुरुस्त किये बिना समाज आगे न बढ़ेगा।

समझ-बूझकर त्याग करने से ही क्रांति

अभी तक समाज में जो मूल्य थे, वे सब-के-सब खराब थे, ऐसी बात नहीं। लेकिन वे एकांगी थे और हमें पूर्ण मूल्य स्थापित करने हैं। इसके लिए विचारवान् कार्यकर्ताओं की जरूरत है, जो इस कार्यक्रम को अपना कार्यक्रम

है', तो क्या बिहार में पानी नहीं है ? यहाँ कावेरी है, तो वहाँ गंगा है, गंडक है। बिहार में तो पाँच हजार रुपये एकड़वाली जमीन है। लेकिन हरएक को लगता है कि हमारे यहाँ मामला मुश्किल है, बिहार में जमीन का कोई खास मूल्य न होगा। आपको अपने लड़के-लड़कियाँ प्यारी हैं, तो क्या बिहार के लोगों को उनके अपने लड़के प्यारे नहीं ? दोनों में क्या फर्क हो सकता है ? जो आसक्ति यहाँ है, वही आसक्ति वहाँ है। लेकिन वहाँ कुछ समझदार, मालदार, संपत्तिवान् लोग आगे आये, उन्होंने अपना लाखों का दान दिया और इस काम का झंडा उठा लिया।

हमने सोचा कि बिहार में यह काम कैसे हुआ ? तो उसका एक ही उत्तर मिला कि 'वहाँ भगवान् बुद्ध और महावीर की प्रतिभाएँ काम कर रही हैं। फिर हम सोचते रहे कि क्या तमिलनाड में कोई सत्पुरुष नहीं हुए ? तो हमने यहाँ का साहित्य देखा। यहाँ का साहित्य दो हजार साल से चला आ रहा है। 'कुरल' से लेकर आधुनिक कवियों तक कितने ही आलवार (संत) यहाँ हुए हैं। यहीं शैव-सिद्धान्त की खोज हुई, रामानुज जैसे आचार्य हुए। तो, यहाँ क्या कुछ कम पुण्य है ? क्या गंगा ही पुण्य कर सकती है, कावेरी नहीं ? हम देख रहे हैं, यहाँ हमारी तपस्या कुछ कम पड़ रही है। यह हमारे और आपके लिए भी सोचने की बात है। इसलिए कि एक शख्स, जो अपनी भाषा भी नहीं जानता, यहाँ आये और आपके गाँव के गरीबों के लिए घूमे और आप ऐसे ही बैठे रहें, तो क्या शोभा देगा ? आजतक कई लोग फंड वगैरह लेने आये और लेकर चले गये। लेकिन हम यहाँ की जमीन गुजरात में नहीं बाँटनेवाले हैं। इसलिए आपको जरा अंतर्निरीक्षण करना चाहिए।

वेलाकिनारु (कोयम्बतूर)
२३-९-५६.

इस तरह हम आनन्द से बिलकुल परिवेष्ठित हैं, हमारे आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, अन्दर-बाहर, सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द है, लेकिन हमें आनन्द का प्रतिक्षण भान नहीं होता। यही समझिये कि जिन क्षणों दुःख नहीं, उन सभी क्षणों में आनन्द-ही-आनन्द है, कहीं दुःख का अनुभव हुआ, तो कभी उतना ही याद रह जाता है। किन्तु आनन्द चौबीसों घण्टे चलता है, लेकिन हम उसे याद नहीं करते और उसका हमें भान ही नहीं होता।

आनन्द की प्राप्ति नहीं, शुद्धि करनी है

आनन्द हमारा स्वरूप ही है, मनुष्य का ही नहीं, बल्कि गोबर में पड़े जंतु को भी आनन्द प्राप्त है, क्योंकि उसका स्वरूप ही वह है। इसलिए आनन्द की प्राप्ति में कोई विशेषता नहीं, उसकी शुद्धि में ही विशेषता है। किसी को बीड़ी पीने में आनन्द आता है, किसी को दूध पीने में, किसी को फलाहार करने में, किसी को भूखे को खिलाने में, तो किसी को एकादशी के दिन फाका करने में आनन्द आता है। इस तरह बीड़ी पीने से लेकर फाका करने और दूसरे को खिलाने तक आनन्द के कई प्रकार हैं। फिर भी उसका स्वरूप एक ही है। उससे एकाग्रता होती है। आप ने देखा होगा कि बीड़ी पीनेवाले कितने एकाग्र घूमते हैं। एक शख्स बाबा के स्वागत में आया और बीड़ी पीते हुए आया। अक्सर लोग ऐसा नहीं करते, क्योंकि कुछ शर्म आती है, पर उस दिन जब हमने उस भाई को देखा, तो बड़ी खुशी हुई। इसलिए कि यह शख्स अपने आनन्द में शर्म को भी भूल गया, वह आनन्द में इतना एकाग्र हो गया कि सब कुछ भूल गया। सारांश, आनन्द चाहे बीड़ी पीने से पैदा हुआ हो या सद्ग्रन्थ पढ़ने से, उसका स्वरूप एक ही है। मनुष्य के जीवन में जितनी शुद्धि होगी, उतना ही आनन्द शुद्ध होगा। इसलिए मनुष्य का ध्येय आनन्द की शुद्धि, न कि आनन्द की प्राप्ति है।

आनन्द-प्राप्ति के प्रयत्न में दुःख

कुछ बड़े-बड़े वेदान्ती भी कहते हैं कि आनन्द हरएक को चाहिए, इसलिए आनन्द की प्राप्ति एक बड़ा ध्येय है। लेकिन वे विचार को समझे नहीं। वास्तव

लिए घातक आनंद हमने भोगा। शराब पीने से दिमाग खराब हो जाता है, पैसा खत्म होता है, आस-पास के लोगों के साथ झगड़ा होता है, पत्नी से बनती नहीं, बच्चे प्यार नहीं करते। इस तरह शराब पीने के आनंद ने आनंद पर ही प्रहार कर दिया। इसलिए फिर 'संयम' का सवाल आता है। तरकारी में भी नमक डालने की एक मात्रा होती है। उतना ही डालने पर स्वाद आता है। यह नहीं कि जितना ज्यादा नमक डालेंगे, उतनी ही वह अच्छी लगेगी। उसकी एक निश्चित मात्रा रहने पर ही आनन्द टिकता है। एक भाई को मीठा खाने का शौक था। उन्होंने पत्नी से कहा कि मूँगफली के लड्डू बना दो। पत्नी ने अच्छी तरह लड्डू बनाये, पर वे बोले: 'यह फीका मालूम होता है, गुड़ कम है।' दूसरे दिन उनकी पत्नी ने ऐसा सुंदर लड्डू बनाया कि वे खुश ही हो जायँ। किन्तु उन्होंने कहा: 'आज कुछ थोड़ा-सा ठीक है।' पत्नी ने कहा, 'थोड़ा-सा ही ठीक है? आज तो मैंने इसमें मूँगफली डाली ही नहीं है, सिर्फ गुड़ का ही लड्डू बनाया है। अब इससे ज्यादा मीठा मैं नहीं बना सकती।' याने वह ऐसा मूर्ख था कि पहचान न सकता था कि लड्डू में गुड़-ही-गुड़ है। मीठा खाते-खाते उसकी रुचि इतनी बिगड़ गई थी कि मीठे ने ही मीठे को मारा। इसलिए जब हम आनन्द की मात्रा रखते हैं, तब वह आनन्द अपने को काटता नहीं है।

संयम आनन्द का प्राण

एक गरीब भाई ने लॉटरी में एक रुपया भेजा। उसे जब मालूम हुआ कि हजार रुपये का इनाम मिला है, तो इतना आनन्द हुआ कि शॉक (धक्के) से वह मर गया। उस आनन्द ने आनन्द को ही काट दिया। अतएव आनन्द की शुद्धि के लिए आनन्द को एक मात्रा में रखना पड़ता है। कुछ लोग समझते हैं कि जितना उत्पादन बढ़ेगा, उतना ही आनन्द भी बढ़ेगा, लेकिन आज अमेरिका में तो उत्पादन खूब होता है, फिर भी वहाँ आनन्द बढ़ा नहीं। वहाँ आत्महत्याएँ खूब होती हैं, लोग डरे हुए हैं और सदासर्वदा लड़ाई की तैयारी करते रहते हैं याने केवल आनन्द बढ़ाते चले जाने से टिक नहीं सकता। आनन्द की सीमा

अपने बच्चों से कहे कि 'पहले मैं खाऊँगी और बाद में तुम्हें खिलाऊँगी; क्योंकि मैं ही कमजोर हो जाऊँगी, तो तुम्हारी सेवा कौन करेगा?' तो उसे क्या कहा जायगा? लेकिन यही बात हम लोग करते हैं, जो 'देशसेवक' कहलाते हैं। लोगों से हम कहते हैं कि हम सेवकों को अच्छा खाना न मिलेगा, तो आपकी सेवा कौन करेगा? देशसेवकों की यह युक्ति आज माँ सीखेगी, तो कौन कवि उस पर काव्य लिखेगा? आज माँ के जीवन में इसीलिए शुद्ध आनंद है कि वह बच्चों के लिए त्याग करती है।

सारांश, आनंद-शुद्धि के दो बड़े सिद्धांत है कि (१) दूसरों को बाँटकर भोगो और (२) जो भोगना है, संयम से भोगो। दूसरों को बाँटने के बाद भी अगर हम हद से ज्यादा भोगते हैं, तो वह भी न चलेगा। उसका भी परिणाम दुःख में होगा। इसलिए बाँटकर भोगना है, तो वह भी संयम से भोगना चाहिए। इन दोनों बातों के बिना आनंद-शुद्धि न होगी। अगर लोग आनन्द प्राप्ति में ही लगेंगे, जो करना चाहिए उसे न करेंगे और जो करने की जरूरत नहीं, वह करेंगे, तो आनंद नहीं, दुःख की ही प्राप्ति होगी।

मधुकरै (कोयम्बतूर)
२९-९-'५६.

संतपुरुष और युगपुरुष

महापुरुषों के दो प्रकार होते हैं : एक, ऐसे महापुरुष, जो हमेशा के लिए कुछ-न-कुछ हिदायतें देते और लोगों को अच्छे मार्ग पर रखने की कोशिश करते हैं। ऐसे महापुरुष 'संतपुरुषों' के नाम से पहचाने जाते हैं। वे लोगों को कुछ उपदेश देते हैं। कुछ लोग उनका उपदेश पूरी तरह से अमल में लाते हैं, तो कुछ लोग उनकी चंद बातें ही मानते हैं। जो मानते हैं, वे उनका लाभ उठाते हैं और जो नहीं मानते, वे लाभ नहीं उठा पाते। किन्तु संतपुरुषों का किसी पर बोझ नहीं है। वे यही सोचते हैं कि हमारी आज्ञा न चलनी चाहिए। उन्हें यह अच्छा नहीं लगता कि उनकी सत्ता किसी पर चले। ऐसे संतों को परमेश्वर भेजा करता है। तभी दुनिया का यंत्र चलता है। इन साधु पुरुषों के जरिये उस यंत्र में कुछ-न-कुछ 'लुब्रीकैन्ट' (स्नेहन) डाला जाता है और बिना घर्षण के वह चलता है। इनके सिवा वह कुछ ऐसे भी महापुरुष भेजता है, जो दूसरे प्रकार के होते हैं। वे एक सामान्य नीति का उपदेश देते हैं पर उससे जिस जमाने की जो आवश्यकता होती है, उसकी पूर्ति होती है। जब लोगों की आवश्यकता और साधु का उपदेश, दोनों का मेल होता है, याने जब आवश्यकता की पूर्ति होती है, तब वह पुरुष 'युगपुरुष' हो जाता है। महात्मा गांधीजी ऐसे ही युगपुरुष थे।

अंग्रेजों का भयानक प्रयोग

अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को अपने हाथ में लेने के बाद एक बड़ा भारी पराक्रम किया। इसके पहले किसी ने भी ऐसा प्रयोग करने की हिम्मत न की थी। जिनपर सत्ता चलायी गयी, और जिन्होंने सत्ता चलायी, दोनों के लिए वह भयानक प्रयोग रहा। उन्होंने सारे-के-सारे देश को निश्शस्त्र बना दिया। किसी भी बादशाह ने ऐसा प्रयोग नहीं किया, जो दोनों के लिए खतरनाक हो। जो सत्ता चलाना चाहते हैं, उनपर रक्षा की जिम्मेवारी आती है। अगर बाहर से हमला हुआ, तो लोग प्रतिकार करने के लिए तैयार नहीं, भयभीत थे। अतः उनके लिए वह प्रयोग खतरनाक था। जिनपर वह प्रयोग किया गया, उनके लिए भी

को निर्माण किया, उसका परिणाम यह हुआ कि मिट्टी में से मनुष्य निर्माण हुए और मनुष्य से देवता-निर्माण। वह पुरुष अकेला नहीं था, उसने सबको प्रकाश दिया और छोटे-छोटे बच्चे भी हिम्मत के साथ स्वराज्य का मंत्र बोलने लगे। ऐसा युगपुरुष जब आता है, तो हमारे जीवन के लिए बहुत लाभदायक होता है। उससे जीवन का विकास होता है।

बहुतों को आश्चर्य होता है कि गांधीजी ने जीवन की कितनी शाखाओं में विविध हिदायतें दी हैं। समाज-शास्त्र के बारे में उन्होंने काफी कहा है। राजनीति के बारे में उन्हें कुछ कहना है ही। तालीम के बारे में वे कुछ कहते ही हैं। ग्राम-उद्योग टूटने नहीं चाहिए, यह भी उनका कहना है। राष्ट्रीय एकता और भाषा की एकता के बारे में भी वे बोलते थे। छूत-अछूत भेद मिटने की बात उन्हें कहनी थी। इस तरह अनेकविध हिदायतें, जीवन की विविध शाखाओं में उन्होंने दी हैं। दुनिया के तरह-तरह के ग्रंथ वे पढ़ते होंगे और उसमें से यह विचार निकले होंगे, ऐसी बात नहीं है। यह विद्या पुस्तकों में नहीं होती। यह शक्ति उसके पास होती है, जो आत्मा का स्वरूप पहचानता है। उसे यह विचार सहज ही सूझता है।

मार्गदर्शक और सेवक

शंकराचार्य महान् पुरुष हो गये। रामकृष्ण परमहंस भी महान् थे। उन्होंने जीवन की सब तरह की बातें लोगों को सिखायीं और उनके जीवन में परिवर्तन ला दिया। वे सूर्यनारायण के समान दूर रहकर प्रकाश देते थे। शंकराचार्य ऐसे ही ऊँचे आकाश में दीखते हैं। रामकृष्ण भी एक तेजस्वी तारे के समान आकाश में रहकर प्रकाश देते हैं। हमें सूर्य की किरणों से आरोग्य मिलता है, लेकिन शरीर के किसी हिस्से में सूजन आने पर उसे सेकना हो, तो उनसे लाभ न होगा, उसके लिए अग्नि ही चाहिए, जो पास आकर, दास बनकर, आपकी सेवा करे। सूर्यनारायण तो आपका गुरु बनता है, दास नहीं। वह प्रकाश देगा और उसमें आपको अपनी बुद्धि से काम करना होगा। वह आपका मार्गदर्शक बनता है, सेवक नहीं। किन्तु अग्नि आप का सेवक बनती है, आपके

ऐसा ही एक पुरुष पाँच हजार साल पहले यहाँ हो गया। उसका नाम था 'श्रीकृष्ण'। उसमें सूर्यनारायण की भी योग्यता थी और अग्निनारायण की भी। अर्जुन उससे कह रहा है : 'अरे, लड़ाई का मौका है, सारथी की जरूरत है।' कृष्ण ने कहा : 'हाँ, मैं तैयार हूँ, तुम्हारा सारथी बनूंगा।' घोड़ों की सेवा के लिए भी वे तैयार थे। याने अर्जुन को यह मालूम भी नहीं होता था कि यह अलग मनुष्य है। यह शक्ति शायद महात्मा गांधी में भी नहीं थी। महात्मा गांधी से हमारी यह कहने की हिम्मत न होती थी कि 'बापू यहाँ गंदा हो गया है, जरा झाड़ू लगाइये।' इतना अंतर तो रह ही जाता था।' यद्यपि गांधीजी ने भंगी का काम किया और झाड़ू भी लगाया है। लेकिन यह भान रहता ही था कि झाड़ू हमें लगाना है, उसके लिए उन्हें न कहना चाहिए। पर श्रीकृष्ण के लिए यह भी भान भूल गया। इसीलिए श्रीकृष्ण के समान श्रीकृष्ण ही हो गये। सारे हिन्दुस्तान में उसे 'गोपाल-गोपाल' ही कहते हैं। याने आप-आप नहीं, तू-तू कहते हैं। लगता है, मानो अपना दोस्त ही हो। इसलिए उसके साथ झगड़े भी करते थे, आपस में लड़ाइयाँ भी चलती थीं और उसे ऐसे काम देते थे, जो मामूली नौकर को दिया जाता था। यह नम्रता की परिसीमा हो गयी, जहाँ महापुरुष के महापुरुषत्व का ख्याल किसीको नहीं रहता। आखिर में जब अर्जुन ने भगवान् का विश्वरूप देखा, तो घबड़ा गया। तभी उसे यह भान हुआ कि जिसके साथ वह बोल रहा है, कितना महान् है। जिसे अग्नि समझा था, वह अग्नि नहीं, सूर्यनारायण रहा। हमने इसका अपराध किया, अपना सखा कहा। फिर भी वह कहता है : 'तू इतना महान् है, तो भी मैं तुझे सखा मानता हूँ। वह 'तू ही' कहता है, 'आप-आप' नहीं। गीता में हम उसे यह कहते पाते हैं कि 'मैं गुनहगार हूँ, मुझे माफ कर' "एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्।' सिर्फ एक ही बार वह "को भवान्" आप कौन हैं, कहता है और एक बार क्षमा मांग लेने के बाद वह 'तू-तू' ही कहता है। यह महत्ता भगवान् कृष्ण में थी।

'भारतीयार' ने 'कंडन्' पर एक काव्य लिखा है। वह कभी माँ बनकर सेवा

उस 'राष्ट्र-पिता' ने हमें जो सब प्रकार के जीवन विषयक विचार और हिदा-यतें दी हैं, क्या उनका हम वैसा उपयोग करते हैं? यह प्रश्न हमेशा हमारे सामने उपस्थित रहेगा। इसका उत्तर हमें देना होगा। हम उनका स्मरण करते हैं, तो अपने पर ही उपकार करते हैं। उनके स्मरण से हमारा काम बनेगा, यही हमें सोचना चाहिए। हम कहना चाहते हैं कि हिन्दुस्तान के सामने आज ऐसे मसले नहीं, जिनका उत्तर महात्मा गांधी ने कहीं न दिया हो। आगे ऐसे प्रश्न आ सकते हैं लेकिन अभी तक नहीं आये। इसलिए हमें उनसे मिली हिदायतों का चिंतन करना चाहिए।

गांधीजी का कालदर्शन : नयी तालीम

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद क्या-क्या मुश्किलें आयेंगी, इसका चिंतन वे दस साल पहले करते थे। स्वराज्य के दस साल पहले उन्होंने 'नयी-तालीम' देश को दी और कहा कि 'हिन्दुस्तान को यह मेरी सबसे आखिरी और सबसे श्रेष्ठ देन है।' स्वराज्य प्राप्त हुए सात-आठ साल हुए, तब ध्यान में आ रहा है कि देश को शायद नयीतालीम का उपयोग हो। अब यह इसलिए सूझा कि कॉलेज और हाईस्कूल के लड़के अविनयी बन गये हैं। जब हमें यह दर्शन हुआ कि वे बात नहीं मानते, अनुशासित नहीं, उच्छृङ्खल बन गये और देश के काम के लायक नहीं रहे, तब नयी तालीम सूझ रही है।

अंधे को तब दर्शन होता है, जब सामने खंभा हो और वह उससे टकराये। आँखवालों को तब दर्शन होता है, जब वह दूर से ही खंभा देखे। हम ऐसे अंधे हैं कि एक आँखवाले ने हमें बताया कि भाई यहाँ खंभा है, तो भी हम भूल गये, और टकराये। १५ अगस्त का दिन था, पहला ही स्वातन्त्र दिवस था। एक संस्था में हमारा व्याख्यान हो रहा था, हमने कहा था कि नंगे राज्य में पुराना झण्डा एक क्षण के लिए भी न चलेगा। अगर नये राज्य में पुराना झंडा रहे, तो मतलब यही होगा कि पुराना ही राज्य चल रहा है। जैसे नये राज्य में पुराना झंडा नहीं चल सकता, वैसे ही नये राज्य में पुरानी तालीम भी नहीं चल सकती है। लेकिन हम लोगों ने वह चलायी। हमें अब भान हो रहा है कि उससे कोई लाभ नहीं।

तो उनका वह व्रत तोड़ सकता था और शाम को पाँच-साढ़े-पाँच के बदले, दो-तीन बजे ही उठा लेता, लेकिन ईश्वर भक्त का बाना नहीं टूटने देता। इसलिए उस दिन भी उनका कातना हुआ। यह उनकी मिसाल हमें बलवान् बना सकती है।

भूदान-यज्ञ गांधीजी की राह पर !

मैंने कहा कि ऐसी समस्या खड़ी हो सकती है जहाँ उनका उपदेश काम न भी दे, पर आज तक ऐसा नहीं हुआ। इतना ही नहीं, जमीन के बारे में अपने खयाल उन्होंने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में 'फिशर' के साथ हुई चर्चा में बताये हैं। 'स्वराज्य के बाद जमीन का क्या होगा ?' यह सवाल उनसे पूछा गया तो उन्होंने कहा था : 'जमीन बाँटी जायगी, नहीं तो लोग कब्जा कर लेंगे।' उन्होंने जो हिदायतें दीं, उनका बहुत सौम्य उपयोग कर हमने काम शुरू किया है। इसलिए बाबा को इसका अत्यंत समाधान है कि वह अपना कर्तव्य कर रहा है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि जमीन पर सबका समान अधिकार होना चाहिए। इसमें कोई शंका नहीं कि हर देहात में कर्म और ज्ञान का संगम करनेवाली तालीम देने चाहिए। नहीं तो कुछ लोग केवल हाथ से काम करनेवाले और कुछ लोग केवल दिमाग से काम करनेवाले, ऐसे दो विभाग हो जायँगे। अगर परमेश्वर की यही इच्छा होती, तो उसने कुछ लोगों को हाथ ही हाथ दिये होते, और कुछ लोगों को सिर ही सिर—कुछ 'राहु' और कुछ 'केतु' ही निर्मित होते। लेकिन हर शख्स को उसने दिमाग दिया और हाथ भी। इसलिए ज्ञान और कर्म का योग होना ही चाहिए। इसके बिना जीवन न जमेगा। ज्ञान और कर्म की तालीम के बिना देश का उद्धार नहीं हो सकता। अशांतिमय साधनों के प्रति देश में प्रीति रही, तो नुकसान होगा। हमें अपने देश की कोई भी समस्या हल करनी हो, तो शांति और प्रेम के सिवा कभी दूसरा रास्ता न लेना चाहिए। तभी देश की प्रगति और उत्थान होगा। इसमें कोई शक नहीं कि सिर्फ पुरुषों का विकास हो और स्त्रियों का न होगा तो देश लंगड़ा रहेगा। हिन्दुस्थान में छूत-अछूत भेद रहे, तो हिन्दुस्तान के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। हर मनुष्य

से ठंडी अग्नि प्रकट करनी होगी, जो किसी को भी न जलायेगी, सबको पावन करेगी। सबके दोषों को जलायेगी। ऐसी नैतिक-धार्मिक अग्नि निर्माण करनी है। उसमें गरीबों के दोष भस्म हो जायँगे। फिर श्रीमानों के भी दोष भस्म होंगे।

गरीब समझते हैं कि जो कुछ दोष हैं, सारे श्रीमानों में ही हैं। वे चूसनेवाले हैं, पीसनेवाले हैं, सतानेवाले हैं, निर्दय हैं, स्वार्थी हैं। श्रीमान् समझते हैं कि सारे दोष गरीबों में हैं। वे पूरा काम नहीं करते, अप्रामाणिक हैं, व्यसनों में पड़े हैं, आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, बुद्धिहीन हैं। इस तरह ये उन्हें हीन समझते हैं और वे इन्हें। दोनों में एक-दूसरे के लिए हीनभाव रखने में स्पर्धा चल रही है। जहाँ समाज में आदर ही खतम हुआ, वहाँ ताकत कैसे पैदा होगी? सबसे पहली बात यह है कि मनुष्य को अपने लिए आदर होना चाहिए। अपनी शक्ति का भान होना चाहिए।

श्रीमानों के पास हृदय और बुद्धि में एक जरूर है

भूदान-यज्ञ में पाँच लाख लोगों ने दान दिया है, जिनमें साढ़े-चार लाख गरीब हैं। जब साढ़े-चार लाख गरीबों ने दान दिया, तब पचास हजार श्रीमानों को देना ही पड़ा, क्योंकि एक ताकत पैदा हुई। श्रीमान् दो प्रकार के होते हैं। एक होते हैं हृदयवाले, उनके हृदय पर फौरन असर होता है। दूसरे वे जो हृदयवाले नहीं होते, पर बुद्धिवाले होते हैं। जब वे देखेंगे कि गरीबों में इतनी नैतिक ताकत पैदा हुई है कि उसके सामने हम टिक नहीं सकते हैं, तो वे, भी इसमें शामिल हो जाते हैं। श्रीमानों में कुछ लोग हृदयहीन दीख पड़ेंगे, परन्तु यह न कहें कि वे हृदयहीन हैं, बल्कि यही समझें कि वे बुद्धिमान् हैं। जिनके हृदय है, वे फौरन आपके साथ हो जायँगे। आप यहाँ भी देख रहे हैं कि दस-बीस श्रीमान् भूदान में लगे हैं, क्योंकि उन्हें हृदय है। जिनके पास हृदय नहीं, उनके पास बुद्धि होगी। हमारा काम ऐसा होना चाहिए कि जिन्हें हृदय है, उनके हृदय पर और जिन्हें बुद्धि है, उनकी बुद्धि पर असर हो। अंग्रेज एकदम भारत छोड़कर चले गये, तो क्या आप समझते हैं कि वे एकदम हृदयवान् बन गये? ऐसी बात नहीं। किंतु वे बुद्धिमान् थे। उन्होंने

पैदा हो, उनकी हृदय-शुद्धि हो, वे एक-दूसरे की मदद कर बलवान् बनें, श्रीमानों के सामने दीन न बनें, बल्कि छाती खोलकर खड़े रहें और उनके दुर्गुणों को खतम करें। अगर यह शुद्धि-कार्य गरीबों में हो, तो उनकी ताकत बनेगी।

मजदूरों का दान वटबीज

यहाँ के मजदूर हमें संपत्तिदान देंगे, तो वे करोड़ों का ढेर न लगायेंगे, थोड़ा-थोड़ा ही देंगे। लेकिन यह जो थोड़ा है, यह वटबीज है। वट का बीज बोया जाता है, तो उसमें से प्रचंड वृक्ष पैदा होता है। आप मजदूर लोग जो थोड़ा-सा धन देंगे उसे बाबा बोयेगा। उसका उपयोग भूमिहीनों और गरीबों के लिए किया जायगा। फिर बाबा आपकी ताकत लेकर श्रीमानों के पास पहुँचेगा और उनसे पूछेगा : 'देखो, गरीबों ने इतना दिया है, तो आप भी दीजिये। उसने रुपये में दो पैसा दिया है, तो क्या आप भी उतना ही देंगे ?' फिर श्रीमान् समझ जायँगे और प्रेम से दान देने के लिए सामने आयेंगे। प्रेम से न आयेंगे तो लज्जा से आयेंगे।

एक अमेरिकन भाई ने हमसे पूछा : 'बाबा क्या आपको सभी लोग प्रेम से दान देते हैं ? कोई लज्जा से नहीं देता ?' हमने जवाब दिया कि 'लज्जा से देते हैं तो ज्ञानपूर्वक देते हैं। छोटा बच्चा नंगा रहता है, उसे लज्जा नहीं मालूम होती। क्योंकि उसे ज्ञान नहीं रहता है। अगर ज्ञान होता, तो लज्जा मालूम होती। इसलिए कहना पड़ता है कि जो लज्जा से दान देता है, उसे ज्ञान हुआ है कि देना धर्म है। इसलिए जो लोग मुझे प्रेम से देते हैं, उनका दान मुझे अत्यंत मंजूर है और जो लज्जा से देते हैं, उनका भी दान मुझे अत्यंत मंजूर है, क्योंकि एक ने हृदय से दिया है, तो दूसरे ने बुद्धि से। शास्त्रों में भी लिखा है कि "श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया अदेयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्।" श्रद्धा से दो, अश्रद्धा से मत दो, लज्जा से दो, भय से दो। यह शास्त्र की आज्ञा है। 'हम अगर नहीं देते, तो हमारा भला न होगा', इसे भय कहते हैं। यह भी ज्ञान है। हम नहीं देते, तो लोग हमसे घृणा करेंगे, इसे 'लज्जा' कहते हैं और

देह बुद्धि की दो गाँठें

यह जो सारा विविध दर्शन होता है वह ऊपर के काँच का नमूना है, पर अन्दर का रूप एक ही है। यह बात सीखने लायक है। हमें जितने मानव दीखते हैं, सबमें विविध प्रकार के रूप पाये जाते हैं। कोई किसी को ठगता, लूटता है, तो कोई दूसरे को तकलीफ देकर जीवन बिताता है। कुछ ऐसे भी होते हैं, जो दूसरे लोगों का भला करने में ही जीवन बिताते हैं। ऐसे तीन प्रकार के लोग स्पष्ट दीखते हैं। जानवरों में तो हम देखते हैं, कि वे अपने शरीर तक ही सीमित रहते हैं। वे शरीर की तकलीफ से भयभीत होते हैं। पत्थर उठाते ही भाग जाते और हरा घास आदि दिखाते ही आपके पास आ जाते हैं। यह केवल देह का ही आकर्षण है। वे अपनी देह को ही अपना रूप समझते और दूसरों को अपने से भिन्न मानते हैं। यह जानवर का जीवन है। देह ही सब कुछ है, ऐसा वे समझते हैं और उसमें भी अपनी ही सब कुछ है, ऐसा समझते हैं। ये दो बातें हैं : पहली यह कि देह के अंदर की चीज नहीं पहचानते, देह को पहचानते हैं और दूसरी अपनी ही देह को मानते हैं। गाँठ पक्की कब होती है? जब दुहरी होती है। सारांश, पशु के जीवन में देहबुद्धि की दुहरी गाँठ बनी है, पहली गाँठ 'मैं देह हूँ' और दूसरी 'मैं यह देह हूँ।'

पशु की एक गाँठ थोड़ी खुलती है

ये दोनों गाँठें जब खुलती हैं, तभी हृदयग्रंथि खुलती है। लेकिन पशुजीवन में इनमें से एक गाँठ जरा सी खुलती है, 'मैं देहरूप हूँ' यह गाँठ नहीं खुलती, कारण वे देह को ही पहचानते हैं। किंतु 'यही मैं देह हूँ' यह गाँठ जरा खुलती है। गाय अपने बछड़े को अपना रूप मानती है। कुतिया भी इसी तरह मानती है। इसलिए कुछ थोड़ा-सा प्रेम दिखाती है। यही एक गाँठ खुलती है, लेकिन वह गाँठ भी पूरी तरह नहीं खुलती, क्योंकि दुनिया में जितनी देह हैं, उतनी सभी मेरे रूप हैं, ऐसा तो वह नहीं मानती।

गहराई बढ़ाने की प्रक्रिया

एक देश भक्त है, वह समझता है कि इस देश में जितने रहते हैं, सभी

यह नाकाफी है। सारी दुनिया में खूब उत्पादन बढ़े, यह जिसने सोचा, उसने लाख-लाख फुट चौड़ा किया। सारांश, देशभक्तों की गहराई ५ फुट है और लंबाई-चौड़ाई जरा कम-वेशी होगी।

गहराई और विस्तार

हम समझना चाहते हैं कि आत्मा का विकास दो तरफ से होता है—(१) हमें इतना गहरा खोदना चाहिए कि अंदर से पानी का झरना बहना शुरू हो, और (२) इतना लम्बा-चौड़ा खोदना चाहिए कि सारी दुनिया का रूप मिले। एक को कहते हैं आत्मज्ञान की गहराई और दूसरे को विज्ञान का विस्तार। जिस देश में आत्मज्ञान की गहराई और विज्ञान का विस्तार है, वहाँ सब प्रकार की समृद्धि होगी। दुनिया में दो प्रकार के लोगों का दर्शन होता है : कुछ लोग देशभक्त बनते हैं, चौड़ाई बढ़ाते हैं, गहराई नहीं। तो कुछ लोग आत्मनिष्ठा बढ़ाते हैं, गहराई बढ़ाते हैं, पर चौड़ाई नहीं। किन्तु किसी एक से दुनिया का काम न चलेगा। गहराई और विस्तार दोनों ही चाहिए।

योजना-आयोग चौड़ाई बढ़ाने का कार्य-क्रम

योजना-आयोग का कार्य लम्बाई-चौड़ाई बढ़ानेवाला है। वहाँ सोचा जाता है कि लोग जो चाहते हों, उसे 'सप्लाई' करना चाहिए। लोग अन्न चाहें, तो अन्न देना चाहिए। कपड़ा चाहें, तो हर मनुष्य को ४० गज मिल का सस्ता कपड़ा सप्लाई करना चाहिए। लोग सिगरेट-बीड़ी चाहें, तो अपने देश में बीड़ी-सिगरेट के कारखाने खोले जायँ। उत्तम बीड़ी-सिगरेट बनाने में देश स्वावलंबी बने। लोगों के बचाव के लिए सेना चाहिए, इसलिए सेना बढ़ाई जाय। कारखाने, मिलों आदि में काम करके थके-माँदे लोगों को सिनेमा चाहिए, तो उसकी व्यवस्था की जाय। मतलब यह कि ये गहरा नहीं खोदते। इसमें लंबा सोचा जाता है। इसपर भी कुछ लोग कहते हैं कि इतना लंबा भी नहीं चाहिए। अपना तमिलनाड का छोटा-सा राज्य अच्छा चलेगा।

आत्मज्ञान और विज्ञान के समन्वय से क्रांति

हमारे देश में प्राचीनकाल से एक सभ्यता चली आयी है। पश्चिमी लोगों

जमीन पर कब्जा कर लेंगे। इतना आसान काम होते हुए भी बाबा ५ साल से इस तरह क्यों घूम रहा है? बाबा को क्या रोग हुआ है?' पर यह तो उसने अभी आपको समझाया। रोग यह हुआ है कि उसे गहराई के साथ चौड़ाई करनी है और चौड़ाई के साथ गहराई। याने दोनों गाँठे तोड़नी है।

दोनों गाँठें तोड़नी होंगी

'मैं देह हूँ' यह गाँठ तोड़नी है। 'मैं देहरूप नहीं, आत्मरूप हूँ' यह गहराई होगी। 'मैं इसी शरीर में नहीं हूँ', इसलिए 'दुनिया में जितने शरीर हैं, कुल मेरे ही रूप हैं' यह होगा, तो दूसरी गाँठ खुलेगी। दोनों गाँठें खुले बिना मानवता का विकास और समाधान तथा शान्ति की स्थापना न होगी।

पशुता से मानवता की ओर

मनुष्य की हालत जानवर से भिन्न है। वह कुछ व्यापक बनता है। उसका प्रेम परिवार तक फैलता है, वह समाज को अपना रूप मानता है और थोड़ा गहरा भी जाता है। यों तो मानव का पहला जन्म पशुओं के बराबर ही होता है। किंतु बाद में उसे संस्कार मिलता है, माता-पिता द्वारा उसे कर्त्तव्य का भान कराया जाता है। फिर वह गुरु-सेवा का महत्त्व समझने लगता है। फिर गुरु उसे विद्या सिखाता है। वह बताता है कि 'मैं देह से भिन्न हूँ; केवल शरीर का भरण करना धर्म नहीं, शरीर के लिए धर्म नहीं, धर्म के लिए शरीर है; धर्म के लिए शरीर का त्याग भी करना जरूरी हो, तो किया जाय। रोज खाना जरूरी है, लेकिन एक दिन एकादशी करना जरूरी है, एकादशी सिखाती है कि हम शरीर से अलग हैं, हमें अपने शरीर का गुलाम बनना नहीं है; धर्म सिखाता है कि शरीर का जोर अपना बल नहीं, अपना बल है धर्म और इसके लिए संयम बहुत जरूरी है।' इस तरह बालक जब संयम सीखता है, तब वह 'मनुष्य' बनता और उसका दूसरा जन्म होता है। पहले जन्म में तो वह पशु जैसा ही रहता है।

किन्तु आज पिता की यह इच्छा होती है कि मेरी सन्तान को विद्या भी कम-से-कम कष्ट में मिले, होस्टल में उसे सब प्रकार की फैसिलिटीज हों और उसका जीवन भी कम-से-कम कष्ट का हो। उसे कम-से-कम श्रम करना हो। अब

जीवन का अखंड प्रवाह

आज एक भाई मिलने आये। उन्होंने एक बड़ा सवाल पूछा कि 'हमें सद्गति कैसे मिले ?' ऐसा सवाल भारत में ही पूछा जाता है। यह अपने देश की बड़ी भारी संपत्ति है, क्योंकि यहाँ के लोग इस दुनिया के जीवन को ही अन्तिम नहीं समझते। वे समझते हैं कि यह जीवन तो अपने अखंड जीवन का एक छोटा-सा हिस्सा है। हम जनमे, उसके पहले भी जीवन था और यह शरीर गिरने पर भी वह जारी रहेगा। यह तो अखंड प्रवाह है। हम मर गये और जीवन खतम हुआ, ऐसा नहीं। दुनिया में कहीं भी देखो, अनंत सृष्टि फैली नजर आती है, सृष्टि का कहीं अन्त ही नहीं दीखता, फिर जीवन का अन्त कैसे हो ? इसलिए मरने के बाद भी जीवन है, जिसका खयाल लोग कुछ-न-कुछ रखते ही हैं। फिर भी जैसा रखना चाहिए, वैसा नहीं रखते, बहुत कम रखते हैं। अगर यह खयाल रखते कि 'हमारा यह जीवन तो छोटा-सा है, आगे बहुत लंबा जीवन पड़ा है !', तो हमारे जीवन का ढंग ही बदल जाता। नूह पैगम्बर की कहानी है। उन्हें भगवान् ने बीस हजार साल की जिन्दगी दी थी और वे भी इस बात को जानते थे। वे एक छोटी-सी झोपड़ी में रहते थे। एक दफा लोगों ने उनसे पूछा कि 'आप अच्छा मकान क्यों नहीं बनाते ?' उन्होंने जवाब दिया : 'बीस हजार साल ही तो रहना है। उसके लिए बड़ा मकान क्यों बनायें ?' ...सारांश बीस हजार साल की जिन्दगी के लिए भी नूह पैगंबर बड़ा मकान बनाने के लिए तैयार न थे, क्योंकि वे जानते थे कि अनंत काल में बीस हजार साल कुछ नहीं है। उनके जीवन से हमारा जीवन कितना छोटा है ! फिर इतनी छोटी-सी आयु में हम सबको क्यों लूटें, सबका द्वेष क्यों संपादन करें ? संपत्ति, जमीन और बच्चों का लोभ क्यों रखें ?

है। तू अगर आम चाहता है, तो तूझे आम की गुठली ही बोनी पड़ेगी।' अगर आप आम की गुठली बोयेंगे, तो भगवान् आपको बबूल कभी न देगा। एक भाई का पाँव अग्नि पर पड़ा और जला। उसने अग्निदेव से प्रार्थना की कि 'अग्निदेव! मेरा पाँव मत जलाओ।' अग्निदेव ने उससे कहा कि 'तू फिर से मुझ पर पाँव मत रख, तो मैं फिर से तुझे नहीं जलाऊँगा। यह तेरे ही हाथ में है।' ठंड के दिनों में एक आदमी अग्नि के पास बैठा तो उसे गरमी मिली। दूसरा आदमी अग्नि से दूर रहा, तो उसे गरमी न मिली। उसने अग्निदेव से प्रार्थना की कि 'अग्निदेव! तू क्यों पक्षपात करता है? तू तो देवता है न? देवता सबके साथ समान बर्ताव करता है। फिर तू उसे गरमी क्यों पहुँचाता है और मुझे क्यों नहीं?' अग्निदेव ने उसे जवाब दिया: 'तू गरमी चाहता है, तो मेरे नजदीक बैठ। दूर रहा, तो तुझे गरमी न मिलेगी। किसी को गरमी मिलती है और किसी को नहीं, इसमें मेरी नहीं, तेरी अपनी जिम्मेवारी है।'

इसी जिंदगी में पहचान

ईश्वर निमित्तमात्र है। बारिश होती है। आपने मिर्च बोयी, तो बारिश मिर्च को बढ़ाती है और केला बोया, तो केले को भी बढ़ाती है। आप मिर्च बोयेंगे, तो बारिश केले को नहीं बढ़ा सकती। सारांश, सद्गति और दुर्गति ईश्वर की मर्जी पर निर्भर नहीं है। वह अपनी कोई मर्जी नहीं रखता है बल्कि तटस्थ रहता है। वह निमित्त बनता है और आपको गति देता है। आपने जो टिकट लिया होगा, उसीके अनुसार आपको गाड़ी में बैठना होगा। गाड़ी आपके लिए खुली है, आप चाहे जो टिकट ले सकते हैं। बाबा किसी को सद्गति नहीं दे सकता, विचार समझा सकता है। जिसे मरने के पहले सद्गति मिली होगी, उसी को मरने के बाद भी मिलेगी। मरने के बाद सद्गति मिलेगी या नहीं?, इसकी पहचान यहीं हो जायगी। क्या आपके चित्त में काम, क्रोध, लोभ, मत्सर भरा है? तो फिर आपको सद्गति नहीं मिल सकती। मन का शांत और निर्विकार रहना ही 'सद्गति'

शुद्धबुद्धि के जप का परिणाम

आप देखेंगे कि बाबा रोज घूम ही रहा है। वह लोगों के पास जमीन माँगने के लिए नहीं जाता, यह काम तो दूसरे लोग करते हैं। फिर बाबा करता क्या है ? वह जप करता है। शुद्धबुद्धि से जो जप किया जाता है, उसकी बड़ी ताकत है। लोग उसकी महिमा पहचानते नहीं। जप से सारी हवा बदल जाती है। सारे भारत में यह जोरदार जप शुरू हुआ था कि 'हिन्दुस्तान को स्वराज्य चाहिए, अंग्रेज यहाँ से चले जायँ।' वह शुद्धबुद्धि का जप था और वह व्यापक हुआ। अंग्रेज बड़े समर्थ थे, शस्त्रास्त्रों से सज्जित थे, उन्होंने जर्मनी का भी पराभव किया। लेकिन उनके खिलाफ हम लोगों ने क्या किया ? केवल जप किया और उन्हीं जेलों में जाकर पड़े रहे। कोई भी पूछ सकता है कि दुश्मन के जेल में जाकर पड़ना, क्या यह कोई उसे जीतने का तरीका है ? अबतक जो लड़ाइयाँ हुईं, उनमें यही तरीका रहा कि दुश्मन के हाथ न पड़ें। जहाँ हमारे लोगों को दुश्मन ने पकड़ कर जेल में डाल दिया, वहीं हम हार गये, ऐसा माना जाता था। किंतु हम तो शत्रु के जेल में गये थे। फिर भी आजाद हुए। यह इसीलिए हुआ कि वह शुद्धबुद्धि का जप था। अब बाबा जप कर रहा है कि 'जमीन सबकी हो। जैसे हवा, पानी और सूरज की रोशनी पर सबका हक है, वैसे ही जमीन पर भी सबका हक है।' अगर बाबा के साथ आप सब लोग भी यह जप करना शुरू करें कि 'जमीन की मालकियत किसी की नहीं, केवल भगवान् की ही हो सकती है। जमीन पर काम करने का सबको अधिकार है और सबका वह कर्तव्य भी है; जमीन से किसी को वंचित रखना पाप है', तो निश्चय ही वह भी सफल होकर रहेगा।

जमीन का बँटवारा आप की मर्जी पर

लोग बाबा से पूछते हैं कि 'आप को ४० लाख एकड़ जमीन मिली, यह

उसने देखा कि यहाँ तो जहाँ देखो वहीं कचरा-ही-कचरा पड़ा है। वह सूरज-वाला मनुष्य था, इसलिए उसे अन्धकार मालूम ही न था। इसलिए उसे लगा कि चारों ओर काला-काला कचरा ही पड़ा है। इसलिए उसने कुदाली लेकर खोदना शुरू किया। कुदाली से खोद-खोदकर टोकरियाँ भरता था और कचरा फेंकता था। उसने सोचा कि ये पृथ्वी के लोग कैसे हैं, कचरे में ही रहते हैं। इससे पड़ोसी जाग गया और लालटेन लेकर आया तमाशा देखने कि रात को कौन खोद रहा है। लालटेन देखकर सूरजवाले मनुष्य को लगा कि मैं घंटेभर से कचरा खोद-खोदकर फेंक रहा था, परंतु खत्म ही नहीं हो रहा था। लेकिन अब एक क्षण में कैसे खत्म हो गया?... लेकिन वह कचरा था ही नहीं, वह तो अन्धकार था, जो खोद-खोद कर नहीं, प्रकाश से ही हटनेवाला था।

अभी भूदान हमने खोदना शुरू किया है, दानपत्र भरवा लेते हैं, किन्तु इस तरह खोदते-खोदते भूदान कब पूरा होगा? जब विचार का प्रकाश फैलेगा, तब न दानपत्र लिखा जायगा, न दिया जायगा। लोग जाहिर कर देंगे कि हमें जमीन बाँटनी है और कुल जमीन बँट जायगी। उन्हें सिर्फ विचार का प्रकाश मिलना चाहिए। बाबा क्या कर रहा है? वह विचार फैला रहा है, लोगों के पास यह विचार पहुँचा रहा है कि 'भाइयो, जमीन चंद लोगों के हाथ में रखोगे, तो हिन्दुस्तान का भला न होगा। जमीन ईश्वर की संपत्ति है। जैसे हवा और पानी सबके लिए खोलना चाहिए, वैसे जमीन भी सबके लिये खोलनी चाहिए। यही विचार समझाने के लिए बाबा घूम रहा है और इसीका जप कर रहा है। अभी कचरा खोद-खोदकर फेंकने का काम चल रहा है। पूछा जाता है कि इस कोयम्बतूर जिले में कितना कचरा फेंका, तो जवाब मिलता है कि दस हजार एकड़। फिर लोग सोचते हैं कि जो बहुत सारा कचरा बचा है, वह कब फेंका जायगा? लेकिन वह कचरा नहीं है, अंधकार है। यह बात जब लोगों के ध्यान में आयेगी, तब वे सोचेंगे कि ये लोग क्या कर रहे हैं। फिर वे अपनी लालटेन लेकर आयेंगे, तो एक क्षण में प्रकाश फैलेगा।

योजनाएँ गिरेंगी ? परंतु भूकप से जितना बड़ा मकान होता है, उतना ही वह जल्दी गिरता है। छोटे मकान टिक भी जाते हैं। उसके लिए क्या करना होगा ? विचार फैलाना पड़ेगा और वही बाबा कर रहा है।

मुलुर (कोयम्बतूर)
६-१०-'५६.

अपने कामों की जिम्मेवारी खुद उठायें :५५:

अभी आपने एक अद्‌भुत ही भजन सुना (सभा में प्रवचन के पहले माणिक्यवाचकर का एक भजन गाया था)। उसमें भक्त कहता है कि 'भला बुरा जो कुछ करना है, तू करता है। मैं उसके लिए जिम्मेवार नहीं।'

सारी जिम्मेवारी भगवान पर छोड़ना कठिन

मेरे हाथ से भला या बुरा कुछ भी हो, दोनों के लिए मैं जिम्मेवार नहीं, यह कहना बहुत बड़ी बात हो जाती है। इस तरह के भजन सुनने की आदत हमें हो गयी है। लेकिन उसका अर्थ कितना गहरा होता है, यह हम नहीं जानते। मेरे हाथ से कुछ अच्छा काम हुआ, तो उसका आनंद, हर्ष या अहंकार नहीं होना चाहिए, यह तो कुछ कोशिश करने से ध्यान में आ सकता है। किंतु मेरे हाथ से कुछ बुरा काम हो, तो उसकी भी मुझपर कोई जिम्मेवारी नहीं, उससे कुछ दुःख भी नहीं होता है, यह अनुभव बहुत कठिन है। बहुत ज्यादा खा लिया याने गलत काम हुआ, तो उसका फल मिलेगा ही, पेट जोरों से दुखना शुरू होगा। अब भक्त कहेगा कि ज्यादा खाया, इसलिए मैं जिम्मेवार नहीं और उसके कारण पेट दुखता है, उसके लिए भी मैं जिम्मेवार नहीं हूँ। लेकिन यह बोलना ही कठिन है, उसका अनुभव और भी कठिन है, इसलिए बेहतर यही है कि हम अपने कामों की जिम्मेवारी खुद उठायें।

गलत बँटवारा

कुछ लोगों ने बीच का एक मार्ग निकाला है। कुछ अच्छा काम किया

सांसारिक काम अपनी अक्ल से, पारमार्थिक ईश्वर की अक्ल से?

लोगों से जब हम पूछते हैं कि क्या भूदान देना चाहिए? सबको जमीन देनी चाहिए? तो वे 'हाँ' कहते हैं, और यह पूछने पर कि 'क्या हवा, पानी और जमीन की मालकियत हो सकती है?' तो 'नहीं' कहते हैं। इस पर हम कहते हैं कि 'तब तो आपको दान देना होगा।' लेकिन जहाँ दान देने की बात आती है, वहीं वे हिचकिचाने लगते हैं और कहते हैं कि भगवान् बुद्धि देगा, तब होगा। याने अपने हाथ से पुण्य करने का सवाल आता है, तो भगवान् बुद्धि देगा तब होगा। पर जब लड़की की शादी करनी होती है, तब खुद पचास जगह ढूँढ़ने क्यों जाते हो? क्यों नहीं कहते कि भगवान् की इच्छा होगी तब शादी होगी? भूख लगती है तो मनुष्य उठता है, चूल्हा सुलगाता है, घर में चावल न हो, तो कहीं से माँगकर ले आता है, माँगने पर न मिले तो चुराकर लाता और रसोई पकाकर खाता है। उस वक्त वह क्यों नहीं कहता कि ईश्वर चाहेगा, तब होगा? मतलब यह है कि संसार के सब काम हम अपनी इच्छा से, अपनी अक्ल से करेंगे, किंतु जब परमार्थ का कार्य करना हो, तब कहेंगे कि ईश्वर करेगा तब होगा। याने स्वार्थ के कार्य हम अपने प्रयत्न से करेंगे और पुण्यकार्य, धर्मकार्य ईश्वर करायेगा, तब होगा। बोलने में तो हम पाप-पुण्य दोनों की जिम्मेवारी ईश्वर पर डालते हैं, पर फल भोगने का समय आने पर पुण्य की जिम्मेवारी अपने ऊपर लेते और पाप की जिम्मेवारी ईश्वर पर डालते हैं। फिर पाप का फल मिलने लगता है, तब क्यों रोते हैं? पाप की जिम्मेवारी ईश्वर पर है, तो रोने दो ईश्वर को, तुम क्यों रोते हो? लेकिन मनुष्य रोता है, फिर भी वह समझता नहीं कि यह मेरी जिम्मेवारी है।

भक्तिमार्गी साहित्य के कारण भ्रम

इस तरह के भक्तिमार्गी साहित्य से हिन्दुस्तान के लोगों के दिमाग में यह सर्वथा भ्रम पैदा हो गया है। वे समझते ही नहीं कि असली चीज क्या है, अपनी हालत क्या है? अपनी हालत के अनुसार ईश्वर का स्वरूप बदलता है।

महावीर की निर्भीकता

महावीर स्वामी बुद्ध भगवान् के कुछ ३०–४० साल पहले हुए। वे इतने निर्भय थे कि उनसे अधिक निर्भय व्यक्ति शायद ही कोई हो। स्त्रियों और पुरुषों को समान अधिकार है, इस बात को वे अक्षरशः सत्य मानते थे। वे मानते थे कि सन्यास, ब्रह्मचर्य और मोक्ष का अधिकार, स्त्री और पुरुष दोनों को है। वे अत्यंत निर्विकार थे, नग्न घूमते थे। जैनियों में पुरुषों के समान सैकड़ों स्त्री-संन्यासिनियाँ काम करती थीं। उनमें दो प्रकार होते हैं : (१) श्रमण और (२) श्रावक। श्रमण माने संन्यासी और श्रावक माने गृहस्थाश्रम में रहकर धर्मकार्य करनेवाला। उनमें जितने श्रमण थे, उनसे अधिक श्रमणियाँ थीं। आज भी जैन संन्यासिनियाँ धर्म-प्रचार करती रहती हैं। स्त्रियों को दीक्षा देने के विषय में बुद्ध भगवान् को जो डर था, वह महावीर स्वामी को नहीं था।

रामकृष्ण परमहंस को भी संकोच

यह तो पुरानी बात हो गयी। आज भी यद्यपि रामकृष्ण परमहंस के आश्रम में शारदा देवी पहले से ही थीं, फिर भी स्त्रियों को दीक्षा नहीं दी जाती थी। अब पिछले साल से स्त्रियों को दीक्षा देना आरंभ हुआ है। इसका मतलब यह हुआ कि उन्हें भी इस कार्य को आरम्भ करने में इतना समय बिताना पड़ा।

गांधीजी का नया रास्ता

गांधीजी को इसमें कोई दिक्कत नहीं मालूम हुई, क्योंकि यद्यपि वे मानते थे कि संन्यास का अधिकार सबको है, फिर भी वे किसी को भी दीक्षा नहीं देते थे। जहाँ दीक्षा देने की बात आती है, वहाँ बहुत दृढ़ता की आवश्यकता होती है, जरा भी दोष आ जाय, तो उससे संस्था कलुषित होती है। दीक्षा देने की आवश्यकता गांधीजी को महसूस नहीं हुई। उन्होंने दीक्षा के बिना ही शुद्ध रहने का मार्ग बताया। उन्होंने एक नया विचार दिया कि 'गृहस्थ' को ही 'वानप्रस्थ' बनना चाहिए, याने दो-चार दिन संसार में बिता कर पति-पत्नी को वानप्रस्थ बनकर रहना चाहिए और गृहस्थाश्रम में संयम होना चाहिए। इसमें

पर श्रीकृष्ण भगवान् के बाद सबसे ज्यादा असर यदि किसी व्यक्ति का हुआ, तो वह शंकराचार्य का हुआ है। उनके भाष्य-स्तोत्र आदि देश भर में सर्वत्र पढ़े जाते हैं। किंतु उनके रहते, जो हालत थी, उसकी हम कल्पना नहीं कर सकते।

अन्त तक माफी नहीं माँगी

शंकराचार्य संन्यास लेकर निकले और उत्तर में घूम रहे थे, तो उन्हें माता का स्मरण होने लगा। उन्होंने सोचा कि स्मरण हुआ है, इसका मतलब यह है कि माँ मुझे बुला रही है। इसलिए वे दक्षिण की ओर वापस चल पड़े। घर पहुँचे, तो उनकी माता की मरने की तैयारी थी। माँ को भगवान् का दर्शन होना चाहिये, इसलिए उन्होंने कृष्णाष्टक बनाया और माँ के मुँह से उसका उच्चारण कराया। उसकी अंतिम पंक्ति का उच्चारण होते ही माँ को भगवान् का दर्शन हुआ, ऐसी कहानी है। माँ ने अपने लड़के को संन्यास लेने के लिए इजाजत दी थी और कलियुग में तो संन्यास वर्जित माना गया था, इसलिए उनके समाज की तरफ से याने नंबुद्री ब्राह्मणों की तरफ से उनका बहिष्कार था, जैसे टॉलस्टॉय का पोप की तरफ से बहिष्कार था या जैसे गांधीजी को हिन्दू धर्म का वैरी समझकर मारा गया था। बहिष्कार के कारण माँ की स्मशान की यात्रा के लिए ब्राह्मणों में से एक भी मनुष्य नहीं आया। जाति-भेद था, इसलिए दूसरी जातिवाले तो आ ही नहीं सकते थे। लाश उठाने के लिए कोई नहीं आया, तो फिर शंकराचार्य ने तल्वार से लाश के तीन टुकड़े किये और एक-एक टुकड़ा ले जाकर जलाया। वे अत्यंत प्रखर ज्ञानी थे, ऐसे मौके पर भी वे पिघले नहीं। अगर वे माफी माँगते, तो ब्राह्मण स्मशानयात्रा के लिए आते, परन्तु उन्होंने माफी नहीं माँगी।

हक पाने का यही तरीका

आज शंकराचार्य के लिए इतना आदर है कि नंबुद्री ब्राह्मणों में उनकी स्मृति में, जलाने के पहले लाश पर तीन लकीर खींचते हैं। परंतु उस जमाने में समाज इतना कठोर था कि माँ की लाश उठाने के लिए कोई नहीं आया।

रखते, सब समाज का समझते हैं, अपने शरीर के भोग को भी एक सामाजिक-कार्य समझते हैं, तो वह संपूर्ण कृष्णार्पण हो जाता है। फिर उस मनुष्य के लिए परोपकार जैसी कोई चीज ही नहीं रहती, क्योंकि 'स्व' और 'पर' में भेद ही मिट जाता है। फिर तो 'सर्वोपकार' हो जाता है। हमने 'कुरल' में एक बड़ा सुंदर मंत्र पढ़ा था कि 'जिसका हृदय प्रेम से भरा हो, जो उदार और बुद्धिमान् हो, वह समझता है कि अपनी हड्डियाँ भी अपनी नहीं, बल्कि समाज की हैं। इससे उल्टे जो छोटी बुद्धिवाला होता है, वह सारी दुनिया अपनी मालकियत की समझता है।'

पुराणों में दधीचि ऋषि की सुंदर कहानी है। वे महान् तपस्वी और भगवान् की भक्ति में तन्मय थे। उनके शरीर में ज्यादा मांस नहीं था, सिर्फ हड्डियाँ ही थीं। समाज के लोग उनके पास आये और कहने लगे : 'हमें वृत्रासुर से बहुत तकलीफ हो रही है और कहा गया है कि दधीचि ऋषि की हड्डियों के वज्र से ही उसकी पराजय हो सकेगी। इसलिए आप कृपाकर अपनी अस्थियाँ दीजिये।' दधीचि ऋषि ने बड़ी खुशी से अपनी हड्डियाँ समाज को अर्पित कर दीं और वे स्वयं मर गये।

धर्म-विचार के बिना मानव क्षण भर भी टिक नहीं सकता

अपना सर्वस्व समाज को समर्पित करना चाहिए, ऐसी बातें सुनने की हमारे समाज को आदत पड़ गयी है। आदत के कारण उनका चित्त पर बहुत ज्यादा असर भी नहीं होता। कुछ लोगों ने यह मान लिया है कि यह सारा धर्म-विचार परलोक के लिए है, इहलोक के लिए नहीं। कुछ लोगों ने माना है कि आगे जो आदर्श समाज आयेगा, उसमें यह नीति चलेगी; पर आज के समाज में नहीं। इसीलिए 'ईसा मसीह के अनुयायी' कहलानेवाले भी इन दिनों शस्त्रसंभार बढ़ाने की तैयारी में लगे हैं। वे रविवार के दिन चर्च में जाकर प्रार्थना-प्रवचन सुनते और उनकी सेना के हर सिपाही के जेब में बाइबिल होती है। वे समझते हैं कि अहिंसा व्यक्तिगत कल्याण के लिए अच्छी है, पर समाज कल्याण के लिए हिंसा की जरूरत रहेगी ही। लोग समझते हैं कि त्यागी पुरुषों की ये सारी कहानियाँ,

युग है। आज अपना सब कुछ समाज के लिए अर्पण करने की बात ठीक मालूम होती है। अगर किसी एक शख्स के लिए जमीन की माँग की गई, तो देना ठीक है या बेठीक, वह उसका उपयोग कैसे करेगा, आदि सवाल पैदा हो सकते हैं। लेकिन जहाँ समाज को अर्पण करने की बात आ गई, वहाँ तो पैसा बैंक में रखने की बात हुई। लोग इस बात को समझ जाते हैं कि मनुष्य के लिए सबसे सुरक्षित बैंक अगर कोई है, तो वह समाज है। वहाँ अपना पैसा सुरक्षित रहेगा और उसका इतना ब्याज मिलेगा कि हम अपने दो हाथों से न ले सकेंगे। कोई भी नदी कितनी ही बड़ी क्यों न हो, समुद्र में जाने से डरती नहीं। कावेरी भी अपना पानी समुद्र में उँडेल देती है और छोटा-सा नाला भी। बड़ी गंगा भी गंगासागर में मिल जाती है, क्योंकि सब का गन्तव्य-स्थान समुद्र ही है और वहीं से सबको पानी मिला है। इसलिए जहाँ समाज को देने की बात आती है, वहाँ लोगों को उसे समझने में मुश्किल मालूम नहीं होती।

ज्ञानविज्ञानमय युग

यह सारा इस युग में हो रहा है, क्योंकि यह **ज्ञानविज्ञानमय युग** है। पुराना युग **ज्ञानमय युग** था। वे लोग आत्मज्ञान से ही समझाते और आत्मज्ञान से ही माँगते थे। आत्मज्ञान का ग्रहण सबको आसानी से नहीं होता। इसलिए कुछ लोग उनकी बात सुनते थे, तो कुछ नहीं। अब इस युग जो बात कही जा रही है, वह आत्मज्ञान भी कहता है और विज्ञान भी। आत्मज्ञान कहता है कि 'तुम अपना सब कुछ दे दोगे, तो श्रेय होगा।' पहले भी वह यही कहता था और आज भी कहता है, '**तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।**' हम भी आत्मज्ञान की वही माँग कर रहे हैं और साथ-साथ विज्ञान की भी माँग कर रहे हैं। हम समझाते हैं कि भाइयो, इस विज्ञान-युग में अलग-अलग रहोगे, तो टिक न सकोगे। एक हो जाओगे तो टिक सकोगे। आपका श्रेय और कल्याण तो एक होने में ही है, वह प्राचीन काल में भी था और आज भी है। परंतु आपका ऐहिक जीवन भी इससे सुधरेगा, ऐसा विज्ञान

जायगा; पर स्वार्थ चाहते हों, तो सर्वस्व समर्पण करो, जैसे आंडाल ने अपना सर्वस्व भगवान् को समर्पित किया था। इस तरह धर्म और अर्थ, स्वार्थ और परार्थ, दोनों इकट्ठे हो रहे हैं। जरा उधर पश्चिम के देशों की तरफ देखिये। वहाँ कितना सामूहिक कार्य हो रहा है। वह सारा विनाश के लिए किया जा रहा है, फिर भी उसमें समूहभावना, सहयोग है ही। वह कितना प्रचंड सामूहिक कार्य है! ऐसे जमाने में हम अपना अलग-अलग घर, अलग इस्टेट आदि रखेंगे, तो कैसे टिकेंगे? इसलिए इस जमाने की माँग है कि हम सब व्यापक बन जायँ।

काट्टुपालेयम् (कोयम्बतूर)
१४-१०-'५६

धर्म का रूप बदलता है : ५८ :

सेवा और धर्म का रूप भी दिन-दिन बदलता रहता है। उसे पहचानना पड़ता है। युग-युग के अलग-अलग धर्म होते हैं, किन्तु कुछ समान धर्म भी होते हैं। सत्य, प्रेम और करुणा सारी दुनिया के लिए याने सब स्थानों के लिए और सब जमानों के लिए समान-धर्म है। परमेश्वर के असंख्य गुणों में से हमने ये तीन गुण चुन लिए हैं और उनका हम निरंतर स्मरण करते हैं। परमेश्वर का रूप इन्हीं तीन गुणों में देखते हैं। हमने कुल शास्त्रों, सत्पुरुषों के अनुभवों और इतिहास का निचोड़ निकालकर सत्य, प्रेम और करुणा ये तीन गुण चुने हैं। ये गुण ही अनादिकाल से आज तक सारी दुनिया को ऊपर उठाने का काम करते आ रहे हैं। फिर भी ये उस-उस समाज के लिए जैसा रूप चाहिए, वैसा लेते हैं।

पुराना समाज श्रद्धा-प्रधान, आज का ज्ञान-प्रधान

प्राचीन काल से आज तक समाज में भी सत्य, प्रेम और करुणा ये त्रिमूर्ति काम कर रहे हैं, किन्तु पुराने समाज में उनका एक रूप था, बीच के समाज में दूसरा रूप और आज तीसरा रूप है। पुराना समाज श्रद्धा-

ज्ञान था, उससे आज ज्यादा ज्ञान हुआ है और पहले हमें इस दुनिया के बारे में जितना अज्ञान था, उससे आज ज्यादा अज्ञान है। सच्चे ज्ञानी सच्चे अज्ञानी भी होते हैं, इसीलिए वे नम्र होते हैं। लेकिन अज्ञानी को थोड़ा-सा ज्ञान हो गया, तो उसे लगता है कि मुझे सारा ज्ञान हो ही गया, अब मेरे पास अज्ञान नहीं रहा। ज्ञानी को पता चलता है कि अभी प्राप्त करने के लिए कितना ज्ञान पड़ा है। इसीलिए आज भी श्रद्धा का क्षेत्र है, लेकिन जिन बातों में श्रद्धा की जरूरत नहीं है, उन बातों में लोग नाहक श्रद्धा न रखेंगे।

करुणा का युगानुकूल नया रूप

पुराने समाज के मूल्य आज के समाज में ज्यों-के-त्यों काम नहीं देंगे। आज नये मूल्य आयेंगे। उससे घबड़ाने का कोई कारण नहीं। वह करुणा का नया रूप है। छोटे बच्चों को आज्ञा करना करुणा का एक रूप है, लेकिन प्रौढ़ बाप की करुणा का रूप यह है कि लड़कों को सलाह दे, आज्ञा न दे। बूढ़े बाप की करुणा का रूप यह है कि अपने प्रौढ़ लड़के को पूछने पर ही सलाह दे, अन्यथा उसके वश में रहे। अगर कोई बाप ऐसा हो, जो बूढ़ा होने पर कहे कि बीस साल पहले मेरी आज्ञा चलती थी, लेकिन आज नहीं चलती, यह क्यों हुआ ? तो इस बाप में सिर्फ ज्ञान नहीं, ऐसी बात नहीं, बल्कि करुणा ही नहीं है।

पुराने लोग न पहचानेंगे

आज हम भूदान-यज्ञ के सिलसिले में जो कर रहे हैं, उसका आकलन पुराने ढंग से सोचनेवालों से एकदम नहीं होता, वे उसे समझ नहीं पाते, इसमें आश्चर्य नहीं। नारायण का एक अवतार राम था और उसीका दूसरा अवतार परशुराम, पर परशुराम ने राम को नहीं पहचाना। परशुराम कोई मूर्ख नहीं, महाज्ञानी और ईश्वर का अवतार था। फिर भी ईश्वर के नये अवतार को ईश्वर का पुराना अवतार पहचान न सका। लेकिन जब परशुराम ने रामचंद्र की कृति देखी, तब उसने पहचान लिया और मान लिया कि मुझे इसके सामने झुकना चाहिए।

विचार जरा भी सहन न करें, फिर भी सबके लिए आदर रखें। इस तरह हम काम करते चले जायँगे, तो यह काम खूब बढ़ेगा।

बजाजनगर (वीरपांडी)
१५-१०-'५६.

एक पुराना भ्रामक तत्त्व-विचार : ५९ :

बहुत पुराने जमाने से एक भ्रम चलता आया है, जिसके मूल में एक तत्त्व-विचार भी है। कुछ दार्शनिकों ने माना है कि आद्यतत्त्वों में एक तत्त्व नहीं, बल्कि दो तत्त्व हैं : स्त्रीतत्त्व और पुंतत्त्व याने प्रकृति और पुरुष। प्रकृति जड़ होती है और पुरुष चेतन। इस पर से कुछ लोग यह भी कहने लगे कि 'स्त्रियों को मोक्ष और वेदाध्ययन का अधिकार नहीं, क्योंकि वे जड़ हैं। वे इस जन्म में श्रद्धा-भक्ति रख सकती और फिर अगला जन्म पुरुष का पाकर मोक्ष हासिल कर सकती हैं। लेकिन स्त्री-जन्म में ही मोक्ष हासिल नहीं हो सकता।'

यह सारी गलतफहमी उस प्रकृति-पुरुष वाले रूपक के कारण हुई है। व्याकरण में 'प्रकृति' शब्द का स्त्रीलिंग और 'पुरुष' शब्द का पुल्लिंग है। किंतु वास्तव में प्रकृति याने जड़-अंश और पुरुष याने चेतन-अंश है। स्त्री और पुरुष दोनों में जड़-अंश होता है और चेतन-अंश भी। शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। इसलिए दोनों में दोनों अंश समान हैं, यह नहीं कि स्त्री के शरीर में आत्मा का अंश कम है और शरीरांश ज्यादा या पुरुष के शरीर में आत्मा का अंश ज्यादा और शरीरांश कम है। फिर भी वह भ्रामक विचार चलता आ रहा है।

बजाजनगर (वीरपांडी)
१५-१०-'५६

लिए आपके मन में कुछ घृणा पैदा करूँ, बल्कि आपके सामने सिर्फ एक इतिहास रख रहा हूँ। सारांश, उन आन्दोलनों में यहाँ की जनता की ताकत बढ़ने कोई बात न हुई, ज्यादातर वह आंदोलन मध्यमवर्ग तथा ऊपर के वर्ग के लिए था। इस तरह वह स्वदेशी विचार सदोष ही था, उसमें कोई गहरा चिंतन न था।

स्वराज्य-प्राप्ति के खयाल से चरखा स्वीकार

उसके बाद गांधीजी के समय दूसरा स्वदेशी-आन्दोलन हुआ। गांधीजी ने पुराने स्वदेशी आन्दोलन का दोष देख लिया था। इसलिए उन्होंने ग्रामोद्योगों पर जोर दिया और कहा कि ग्रामोद्योग शत-प्रतिशत स्वदेशी है। इसका मतलब यह हुआ कि जब ग्रामोद्योगों के बदले हम यहाँ की मिलों की चीजें खरीदते हैं, तो वह कुछ प्रतिशत स्वदेशी हो जाता है, उसे भी कुछ तो नंबर मिल ही जाते हैं, इसलिए उसका पूरा निषेध नहीं होता। फिर भी उसका काफी निषेध हुआ और नये आन्दोलन में पुरानी स्वदेशी का दोष नहीं रहा। किंतु इसमें भी एक दोष आ गया, जो गुण भी माना गया और वह गुण था भी। बहुत बार गुण-दोषों का मिश्रण हो जाता है। इसलिए एक गुण होता है, तो उसके साथ दोष भी होता है। उस आन्दोलन का गुण यह था कि वह चीज अपने देश की आजादी के साथ जुड़ी थी। केवल ग्रामोत्थान की ही दृष्टि से नहीं, बल्कि देश की आजादी की दृष्टि से वह चीज सामने रखी गयी। यह उसका बड़ा गुण और आकर्षण था। इसलिए आजादी के आन्दोलन के साथ वह विचार जरा व्यापक फैल गया। लेकिन उसमें एक दोष भी आया कि जिन्होंने उसको स्वीकार किया था, उन्होंने उसे आर्थिक बुनियादी अंश मानकर स्वीकार नहीं किया। गांधीजी उस आर्थिक विचार पर बहुत जोर देते थे, लेकिन उनके हाथ में एक साधन के तौर पर मुख्य संस्था कांग्रेस थी, जो अंग्रेज-सरकार से लड़ती थी। किंतु कांग्रेस के नेता बार-बार उनसे पूछते थे कि चरखे से आजादी का क्या संबंध है? क्या सूत कातने से स्वराज्य मिलेगा? याने क्या यह कोई मंत्र है? स्वराज्य तलवार से नहीं मिलता, यह चीज भी निगल जाना हमारे लिए

माल लेंगे और फलाने देश का माल न लेंगे, यह कहना ठीक नहीं है। उस समय स्वदेशी विचार मूलतः संकुचित भावना से निर्माण हुआ था, इसलिए जैसे चंद लोगों को उसका आकर्षण था, वैसे ही चंद लोगों को उसका विरोध भी था।

अतः हमें स्वदेशी को एक जीवन-विचार के तौर पर समझना बाकी है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हिन्दुस्तान में क्या दृश्य देखने को मिला? स्वदेशी का विचार ही खतम हो गया है। यहाँ तक कि परदेश में सीये हुए कपड़े यहाँ आते हैं और कुछ तो वहाँ के लोगों के इस्तेमाल किये हुए होते हैं। किंतु वे सस्ते मिलते हैं। कुछ लोग इसे भी सेवा मानते हैं, क्योंकि उससे गरीबों को कपड़ा सस्ता मिलता है।

बुनियादी विचार ठीक से समझें

हम किसी का दोष नहीं दिखाना चाहते। दोष व्यक्ति का नहीं है। जब विचार ही ठीक से समझ में नहीं आता, तब दोष निर्माण होते हैं। अगर हम अहिंसक समाज-रचना चाहते हैं, तो बुनियादी तौर पर कुछ बातें हमें समझनी चाहिए। अगर उन विचारों का ग्रहण नहीं हुआ, तो अहिंसा का नाम लेते हुए भी, विश्वशान्ति की चाह रखते हुए भी, हमारे काम से हिंसा को बढ़ावा मिलेगा। अहिंसा के लिए जिन बातों की अत्यंत जरूरत है, ऐसी दो बातों का उल्लेख वैकुंठभाई ने अपने भाषण में किया। अहिंसा के लिए और भी वस्तुओं की जरूरत है, लेकिन उन सबका विवेचन करने का आज प्रसंग नहीं। उन्होंने जो दो बातें बतायीं उनमें से एक यह है कि उस-उस स्थान के लोग अपना भार दूसरों पर न रखें, अपना भार खुद उठायें, जिसे हम स्वावलंबन का सिद्धान्त कह सकते हैं। दूसरी बात यह है कि आर्थिक समत्व की जरूरत है। इस बारे में हमें अपना विचार साफ करना चाहिए। जो लोग हमारा विचार नहीं जानते, वे अगर उसपर अमल नहीं करते हैं तो हम उनका दोष नहीं मान सकते।

समर्थों का परस्परावलंबन

हम सर्वोदयवाले स्वावलंबन सिद्धान्त को नहीं, बल्कि परस्परावलंबन के

पड़ती। सारांश, उसने अच्छी तरह से विकेंद्रित योजना बनायी है, सबको अक्ल दी है।

स्वावलंबन का अर्थ

हम भी परस्पर सहयोग चाहेंगे। जहाँ अच्छा गेहूँ पैदा नहीं होता, वहाँ उसे पैदा न करेंगे। हर रोज गेहूँ खाने का आग्रह नहीं करेंगे। हमारी जमीन में चावल और ज्वार पैदा होता हो, तो हम हर रोज वही खायेंगे। फिर भी कभी-कभी गेहूँ खाने की इच्छा हो, तो यह न कहेंगे कि गेहूँ खाना बड़ा पाप है। गेहूँ बाहर से खरीद लेंगे। जिन चीजों की रोजमर्रा आवश्यकता है, जिनके बिना एक क्षण भी न चलेगा, ऐसी चीजों के लिए अपना भार दूसरों पर नहीं डालना चाहिए। इसका नाम है अहिंसा की रचना और इसीको 'स्वदेशी' कहते हैं।

स्वदेशी में बाहर के लोगों के साथ व्यापार-व्यवहार नहीं चलेगा, ऐसी बात नहीं है। स्वदेशी में परस्पर व्यवहार के लिए अच्छी तरह गुंजाइश है। किंतु जो काम हम अच्छी तरह कर सकते हैं, उस काम का बोझ दूसरों पर डालना गलत है। जो चीजें हम देहात में अच्छी तरह बना सकते हैं, वे वहाँ न बनायें और दूसरों की चीजें खरीदते रहें, इसका क्या अर्थ है? कपड़ा शहरों की मिलों में बनता है। और कपास कहाँ बनती है? अगर यह होता कि कपास शहरों में पैदा होती, तो हम ग्रामों के लिए खादी का आग्रह न रखते। गाँव-वालों से हम यही कहते कि तुम्हारे यहाँ कपास नहीं होती है, कपास तो बंबई अहमदाबाद और कोइम्बतूर में होती है, तुम्हारे यहाँ अनाज होता है, तो तुम्हें उतना ही पकाना चाहिए। लेकिन जब कपास देहात में पैदा होती है, तो इधर की कपास उधर भेजो और उधर का कपड़ा इधर लाओ, यह सब क्या है?

रोजमर्रा की चीजें बाहर से खरीदना खतरनाक

दुनिया में विश्वयुद्ध कब शुरू हो जायगा, कोई नहीं कह सकता, क्योंकि दुनिया का सारा बुरा-भला करने का अधिकार दो-चार व्यक्तियों के हाथ में है। अगर उनके दिमाग बिगड़े, तो दुनिया में लड़ाई शुरू होगी। आजकल हम

है। उसका उपयोग इसी में होता है कि अपना कितना समय आलस्य में बीता, इसका पता चले। साथ ही किसी की घड़ी का किसी की घड़ी से मेल नहीं खाता। किसी की घड़ी १० मिनट आगे, तो किसी की १० मिनट पीछे।

खालिस चीज मिलती नहीं

इन दिनों जवान लोगों के सिर पर एक छप्पर दीखता है। वे सुन्दरता के लिए बाल रखते हैं और उसमें शहर का तेल डालते हैं। वह तेल खराब होता है, क्योंकि उसमें दूसरी खराब चीजें मिलायी जाती हैं। उससे बाल पक जाते हैं। याने सुन्दरता के लिए जो किया जाता है, उसीसे लोग कुरूप बनते हैं। लोगों को इतनी मामूली अक्ल क्यों न होनी चाहिए कि गाँव का स्वच्छ-शुद्ध तेल डालें?

आज दुनिया में बड़ी भारी समस्या है कि कहीं भी खालिस चीज नहीं मिलती। यहाँ तक कि औषध भी खालिस नहीं मिलती। यह बड़ी भयानक दशा है। इसमें मनुष्य की निष्ठुरता की कोई सीमा ही नहीं है। यह सारा मिश्रण इसलिए होता है कि लोग स्वदेशी धर्म को नहीं पहचानते। इसलिए हमें अपना काम स्वयं करना चाहिए। जितना हमसे हो सके उतना करने के बाद जो नहीं हो सकता, उसका बोझ हम दूसरों पर डाल सकते हैं। दूसरे भी जो काम न कर सकेंगे, उनका जिम्मा हमें उठा लेना चाहिए।

इस तरह एक-दूसरे की मदद देने-लेने में पाप या संकोच नहीं। वह मदद याने 'परोपकार' होना चाहिए। 'उपकार' शब्द में ही एक खूबी है। थोड़ी-सी मदद को उपकार कहते हैं। अपना मुख्य काम हम खुद ही करें और कुछ थोड़ी-सी चीजें, जो हम नहीं बना सकते, दूसरों से लें। उतना उपकार हम उनसे लें और उतना ही उपकार उनपर करें। अगर कोई पंगु हो, तो हम उसे कंधों पर उठाएँ। वह प्रेम का कर्त्तव्य होगा, सवाल यही है कि प्रेम और करुणा क्या कह रही है। अपने नजदीक वाले मनुष्य ने जो चीज बनाई, उसे न खरीदते हुए दुनिया की चीजें खरीदना एक संकुचित स्वार्थ और निष्ठुरता है।

दिमाग से किया जाता है। प्रेम और विचार अत्यन्त व्यापक हो सकते हैं, पर हाथ नहीं। हाथ नजदीक की सेवा ही कर सकते हैं।

वेद में अग्नि का जैसा वर्णन है, वैसा ही वर्णन 'वर्डसूवर्थ' की एक सुंदर कविता में आता है–"The Type of the wise who soar but never roam. True to the kindred points of Heaven and Home. अर्थात् स्काइलार्क आकाश में ऊँचा उड़ता है, फिर भी अपने घोंसले पर उसकी दृष्टि रहती है। उसमें ऊँचा उड़ने की ताकत है। किंतु वह ऐसा ऊँचा नहीं उड़ता कि घोंसले को ही छोड़े। वह पक्षी स्वर्ग की तरफ भी नजर रखता है और घोंसले की तरफ भी। वह ऐसा नहीं करता कि आकाश में ही ऊँचा भटकता रहे या ऐसा भी नहीं करता कि अपने घोंसले में बैठा रहे और उसके इर्दगिर्द ही नाचे। यह स्वदेशी धर्म है। हमें सारी दुनिया पर प्रेम करना है। मन में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखना है। हम सारे विश्व के नागरिक हैं, लेकिन हम सेवा नजदीक के क्षेत्र में ही करेंगे। आज स्वाइटझर अफ्रिका में सेवा कर रहा है। वह सारी दुनिया के लिए प्रेम रखता है, लेकिन आपके मलाबार के लिए वह क्या कर रहा है? कुछ भी नहीं कर सकता है, क्योंकि हाथ-पाँव की एक मर्यादा होती है।

इस तरह सेवा के लिए नजदीक का क्षेत्र और प्रेम तथा चिंतन के लिए सारी दुनिया पर ही नजर, इसका नाम है 'स्वदेशी धर्म'। इसलिए स्वदेशी धर्म में जाति, गाँव, प्रान्त, देश या धर्म का अभिमान आदि बातें नहीं आ सकती हैं। इन सबको स्वदेशी धर्म में से हटा देना चाहिए। क्योंकि अगर ये चीजें रहीं, तो स्वदेशी न टिकेगी। जिनकी उदार दृष्टि हो, वे ही स्वदेशी को समझ सकते हैं। स्वदेशी का यही शुद्ध दर्शन हमें करना होगा। आज इस ओर वैकुंठभाई ने ध्यान खींचा। वे सूत्रवत् बोले, तो हमें भी लगा कि उसपर भाष्य करना ही चाहिए।

गांधीनगर-तिरुपुर (मद्रास)
१७-१०-'५६.

प्रेम से मिलजुल कर काम करते हैं, एक साथ खाते-पीते हैं, अपनी कमाई दोनों बाँट लेते हैं। उनमें एक सोशलिस्ट पार्टी का है, तो दूसरा कांग्रेस पक्ष का। फिर भी एक-दूसरे से दोनों अत्यंत प्रेम करते हैं। चुनाव में ये दोनों जायँगे, तो एक कहेगा कि दूसरे को वोट मत दीजिये, क्योंकि वह अच्छा कारोबार न चलायेगा, क्योंकि उसकी कल्पना अच्छी नहीं है। दूसरा भी इसी तरह लोगों से कहेगा कि वह अच्छी लोकशाही न चलायेगा, क्योंकि उसका विचार ठीक नहीं है। इस तरह एक-दूसरे के विरुद्ध प्रचार करेंगे। लोगों में अपने विचार का प्रचार करेंगे। कोई भी हारे और कोई भी जीते, लेकिन घर पर जाकर दोनों एक साथ खायेंगे-पीयेंगे और प्रेम से रहेंगे। इस तरह के आनन्द में और विनोद के बीच चुनाव होना चाहिए। फिर हम दोनों में से कोई भी हार जाय, तो कोई हर्ज नहीं।

हमने बिहार में यह खूब देखा है। बिहार के कई कुटुंबों में एकआध कांग्रेसी होता है, दूसरा कम्युनिस्ट, तीसरा सोशलिस्ट, तो चौथा सर्वोदयवादी। बाप अगर काँग्रेसी रहा, तो बेटा जरूर कम्युनिस्ट होगा। लेकिन वे लोग कहते हैं कि किसी भी पक्ष का राज्य चले, अपने कुटुंब का नुकसान न होगा, क्योंकि कुटुंब में हरएक पार्टी के लोग होते हैं। यही आनंद प्राचीन काल में हिन्दुस्तान में आता था। बाप हिन्दू होता था, तो बेटा बौद्ध और उसका एक भाई जैन होता था, सभी एक ही परिवार में प्रेम से रहते और अलग-अलग अपने-अपने धर्म में विश्वास रखते थे। लेकिन धर्म-विश्वास अलग है, तो प्रेम तोड़ना चाहिए, इसकी कोई जरूरत नहीं। इसी तरह राजनैतिक पद्धति अलग होने पर भी प्रेम तोड़ने की जरूरत नहीं है। इसलिए चुनाव में लड़ने की वृत्ति, 'टु फाइट इलेक्शन' यह शब्द बहुत बुरा है। यह शब्द अंग्रेजी भाषा से यहाँ आया है। अपने देश में तो चुनाव खेल होना चाहिए।

घर्षण में तेल डालिये

खैर, यह तो हमने आपको बेकार बात बतायी, क्योंकि आपने प्रस्ताव पास किया कि हम चुनाव में भाग न लेंगे, इसलिए आप पर यह लागू

हमारी पुस्तक पहुँच गयी, तो उसका नाम 'काली सूची' (ब्लैक लिस्ट) में चढ़ गया कि फलाने को 'गीता-प्रवचन' दिया है ।

पन्द्रह दिनों बाद पुनः मिलने पर हम उससे पूछेंगे, कि 'क्यों भाई, 'गीता-प्रवचन' पढ़ा या नहीं ? वह कहेगा : 'पढ़ना तो है, लेकिन फुर्सत नहीं मिलती ।' मैं कहूँगा, 'ठीक ! पर आपके घर आया हूँ, तो भोजन दीजियेगा न ? अगर जमीन माँगनेवाला भोजन से मान जाय याने भोजन से जमीन देना टल जाय, तो उसे कौन नहीं देगा ? फिर भोजन करने के लिए साथ-साथ बैठने पर मैं चर्चा शुरू कर दूँगा कि 'गीता-प्रवचन क्या है ? भूदान क्या है ?' आदि-आदि । तब वह कहेगा कि 'अब मैं समझा । अगर ऐसा है, तो मैं 'गीता-प्रवचन' अवश्य पढ़ूँगा ।' बस, हमारा काम हो गया ।

सारांश, किसी के भूदान देने पर ही हमारा काम होता है, ऐसी बात नहीं । हमें उनसे बहुत बातें करवानी हैं—साहित्य पढ़वाना, खद्दर पहनवाना, सूत कतवाना, हमारे ढंग का पाखाना बनवाना आदि सभी बातें करवानी हैं और सभी प्रेम से करवानी है ।

गुड़ खिलानेवाला महात्मा

पुराने ऋषि लोगों को कड़ुवा खिलाते थे । कहते थे कि नीम की पत्ती खाओ । लेकिन गांधीजी ने तो गुड़ खिलाने की सलाह दी । बीच में उन्होंने भी नीम की पत्ती खिलाना शुरू किया था । उसके लिए दस-बारह चेले भी मिल गये, लेकिन ज्यादा नहीं मिले । तब उन्होंने समझ लिया कि नीम की पत्ती खिलाने का कार्यक्रम लोकप्रिय नहीं हो सकता, गुड़ खिलाने का कार्यक्रम ही लोकप्रिय होगा ।

हमारा एक प्रोग्राम गुड़ खिलाने का भी है । हमें लोगों से कहना चाहिए कि शक्कर क्यों खाते हो ? गुड़ क्यों नहीं खाते ? वे कहेंगे कि 'शक्कर सफेद दीखती है !' तो आप कहिये : वह सफेद दीखती है, इसीलिये वह सफेद लोगों तरह है । तुमने 'गोरों' को यहाँ से भगा दिया, तो गोरी शक्कर को क्यों ाये रखते हो ? गुड़ का रंग अपने देश का है और शक्कर का रंग गोरों के

परीक्षक जनता

दूसरी बात हमें आपसे यह कहनी थी कि हिन्दुस्तान के लोग बड़े परीक्षक हैं। बैल बराबर पहचान लेता है कि गाड़ी चलानेवाला ठीक है या नहीं। उसे तुरत पता चल जाता है कि गाड़ी चलानेवाला शिक्षित है या अशिक्षित। हम कहते हैं कि सारी जनता मूर्ख है, लेकिन वह बहुत अक्ल रखती है। वह हम लोगों की बराबर परीक्षा करती है। हिन्दुस्तान के गरीब लोगों की सेवा संतों ने की है, इसलिए जब उसे मालूम होता है कि हम सेवक हैं, तब वह हमें संत की कसौटी पर कसती है, लोगों का जीवन-स्तर गिरा है, लेकिन चिंतन का स्तर ऊँचा ही है। इसलिए वे कार्यकर्ता और सेवक की छोटी-छोटी बात भी देखते हैं। इसलिए हमारा व्यक्तिगत आचरण जितना ही निर्मल और स्वच्छ रहेगा, उतना ही हमारा कार्य जल्दी होगा।

गांधी नगर
१८-१०-'५६

हाइड्रोजन बम और चाकू : ६२ :

हमसे पूछा गया कि 'आप राज्य पर यकीन नहीं रखते हैं और कहते हैं कि फौज, पुलिस वगैरह की जरूरत नहीं है। उस हालत में अगर देश पर बाहरी हमला होगा, तो देश का बचाव कैसे किया जायगा ?' हम कहते हैं कि दूसरा देश हमपर हमला करेगा ही क्यों ? अगर हमारे देश में जमीन बहुत ज्यादा है और दूसरे देश के पास कम, इसलिए वह हमला करेगा, तो हम उसे प्रेम से जमीन दे देंगे। आस्ट्रेलिया में जमीन बहुत ज्यादा है, और वे दूसरों को वहाँ आने नहीं देते, इसलिए उनपर हमला हो सकता है। लेकिन हिंदुस्तान पर हमला नहीं हो सकता है, क्योंकि हमारे पास जमीन कम ही है।

बात यह है कि हिंदुस्तान पर अमेरिका या रूस कभी हमला न करेगा। अगर हमला होगा, तो पाकिस्तान से होगा। याने भाई-भाई के झगड़े का सवाल

साढ़े पाँच साल से भूदान-यात्रा चल रही है। लाखों लोगों ने दान दिया है। यह दान कोई नयी चीज नहीं, पुराने जमाने से ही लोग कुछ-न-कुछ दान करते आये हैं। दानी लोगों की प्रशंसा भी की जाती है, उनपर काव्य भी लिखे जाते हैं, उनके भजन भी गाये जाते हैं। जिस तरह दान की परंपरा चली आ रही है, उसी तरह तप की भी। कोई तपस्वी अपनी चित्तशुद्धि के लिए तप करता है, दूसरे लोग उसकी सेवा करते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं, उसकी तपश्चर्या के कारण उसके प्रति आदर और पूज्य बुद्धि रखते हैं और समझते हैं कि उसके आशीर्वाद से हमारा भला होगा। यहाँ ऐसे भी ज्ञानी हो गये, जो ऊँचे पहाड़ों के जैसे ज्ञान के पहाड़ थे। कुछ ऐसे भी ज्ञानी हो गये, जिनके ज्ञान का लोगों को कोई अन्दाजा नहीं लगा। लोगों ने इतना ही समझा कि ये ज्ञान के समुद्र हैं, इनसे हमें कुछ ज्ञान मिले, तो अच्छा है। किंतु हममें ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता नहीं है, इसलिए उनका आशीर्वाद मिले, उनकी कृपादृष्टि, उनका दर्शन हो, तो बस है।

सामूहिक दान

इस तरह अपने देश में एक प्रकार की साधना चली। भूदान-यज्ञ का काम उससे भिन्न प्रकार का है। इसमें भी दान है और उसमें भी। इसमें भी कार्यकर्ताओं को खूब घूमना पड़ता है, तपस्या करनी पड़ती है। इसके लिए भी अध्ययन करना पड़ता है, ज्ञान की जरूरत होती है। किंतु इसमें जो किया जाता है, वह समाज के लिए किया जाता है। सारा समाज मिलकर करे, ऐसी इच्छा रहती है। इसमें यह बात नहीं कि कोई एक-आध मनुष्य दान दे, बल्कि यह है कि सबके सब दान दें, बिना दान किये कोई न रहे। हमसे बार-बार पूछा जाता है कि क्या गरीब भी दान दें, तो हम कहते हैं कि क्यों न दें? भगवान् ने उन्हें दो हाथ दिये हैं, इसलिए उन्हें लेना भी है और देना भी। अगर देना नहीं होता, तो भगवान् उन्हें एक ही हाथ देता। गरीबों के पास भी देने

हूँ', यह कहना भी अभिमान का दूसरा प्रकार है। इन दोनों में से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि जो साधना करनी है, सब मिलकर करनी चाहिए।

सामूहिक तपस्या की प्राचीन मिसालें

१०-१५ दिनों के उपवास करनेवाले कई तपस्वी होते हैं। हम पुराने ग्रंथों में पढ़ते हैं कि फलाने ऋषि ने तीन साल फाका किया। हम सोचते रहे यह कैसे संभव है, वह ऋषि जरूर कुछ दूध वगैरा पीता होगा। इन दिनों दूध पीनेवाले और केले खानेवाले उपवास चलते हैं। उपवास के दिन खाने की कुछ खास चीजें होती हैं। अगर वैसा ही वह ऋषि करता होगा तो फिर तीन ही नहीं बल्कि तीस साल फाका कर सकता है। परन्तु ग्रंथों में लिखा है कि ऋषि ने तीन साल तक बिना पानी का उपवास किया। इसपर सोचते हुए हमारे मन में कल्पना आयी कि उस समय किसी प्रकार की साधना के लिए सब लोग मिलकर फाका करते होंगे और वह किसी मनुष्य के मार्गदर्शन में करते होंगे। मान लीजिये कि ५२ व्यक्तियों ने वसिष्ठ ऋषि के मार्गदर्शन में एक हफ्ते तक बिना पानी पिये फाका किया तो यह कहा जाता होगा कि वशिष्ठ ऋषि ने एक साल फाका किया। याने कुल की कुल तपस्या वसिष्ठ ऋषि के नाम पर लिखी गयी। हम यह भी पढ़ते हैं कि फलाने ऋषि ने तीस साल तपस्या की। इसका मतलब यह है कि कोई ऋषिसंघ होगा, और सब मिलकर तपस्या करते होंगे, जो एक व्यक्ति के नाम पर लिखी जाती होगी।

आज भी यह होता है। कहा जाता है कि बाबा ने ४० लाख एकड़ जमीन हासिल की। लेकिन बाबा ५०० साल काम करेगा, तो भी यह संभव न होगा कि वह ४० लाख एकड़ हासिल करे। लेकिन हजारों लोगों ने जमीन हासिल की और वह सारा बाबा के नाम पर लिखा जाता है। इस तरह जहाँ सामूहिक साधना होती है, वहाँ एक विशेष शक्ति प्रकट होती है और उस तपस्या का अहंकार नहीं होता।

मोक्ष व्यक्तिगत नहीं हो सकता

मनुष्य-जीवन में भोग या मोक्ष जो कुछ हासिल करता है, सब मिलकर

है। हम आशा करते हैं कि गाँव-गाँव के लोग इस बात को समझेंगे, गाँव-गाँव के लोगों को कार्यकर्त्ता यह बात समझायेंगे और इस यज्ञ में हिस्सा न लेनेवाला एक भी शख्स भरतभूमि में न रहेगा।

वेलपालेयम् (कोयम्बतूर)
२०-१०-'५६

राजा मिटे नहीं : ६४ :

हिंदुस्तान को राजा का अनुभव हजारों वर्षों से है। उस पर से वे इस निर्णय पर पहुँचे कि यहाँ राजा लोग प्रजा के कल्याण के लिए नाकाफी हैं। राजा अकेला तो राज्य नहीं करता था। कुछ मंत्री बना लेता और उनकी सलाह से राज्य चलाता था। अब लोगों ने राज्य-संस्था मिटा दी। अब प्रजा पाँच-पाँच साल के लिए राज्यकर्ता चुनती है। अगले साल लोग आपको पूछने आयेंगे कि राजा किसे बनाया जाय? लोगों की मर्जी के मुताबिक राजा चुना जायगा, जिसे आज मुख्यमंत्री कहते हैं। वह पाँच साल के लिए राज्य चलायेगा और अपने मंत्री खुद तय कर लेगा। उसमें किसी को पूछेगा नहीं।

आज सरकार के हाथ राजा से भी अधिक सत्ता

आज के मुख्यमंत्री और राजाओं में खास फर्क नहीं है। पहला फर्क तो यह कि पहले का राजा मृत्यु तक राज्य चलाता था, अब मुख्यमंत्री पाँच साल तक राज्य चलायेंगे। पाँच साल के बाद आप अगर उन्हें फिर से चुनेंगे, तो फिर से पाँच साल तक वे राज्य चलायेंगे। दूसरा फर्क यह है कि पहले राजा का बेटा गद्दी पर बैठता था, पर अब राज्यकर्ता का बेटा उसी तरह राज्य नहीं चला सकता। बस, इतना ही फर्क है और ढाँचे में कोई बदल नहीं हुआ। पाँच साल तक वह पूरी हुकूमत चला सकता है। वह जो करेगा सो बनेगा।

इस जमाने के पाँच साल पुराने जमाने के ५० साल के बराबर हैं। पुराने जमाने में राजा हुक्म देता था, तो उसे देश में पहुँचते-पहुँचते ही दो-चार साल

लोगों ने हमें राज्य चलाने की आज्ञा दी है। इसलिए हमें ऐसा करना पड़ता है। पुराने राजाओं के सरदार यह नहीं कह सकते थे कि हमने गोली चलायी, तो लोगों की सम्मति से चलायी। इसलिए वे जो पुण्य-पाप करते थे, वह राजा का पुण्य-पाप होता था और उसका बोझ उसीको उठाना पड़ता था। लेकिन आज के राजा, जो पुण्य-पाप करेंगे, उसकी जिम्मेवारी आपपर है और पुराने जमाने के राजा से शतगुणित सत्ता अभी आपके मुख्यमंत्री के पास है। इसलिए गाँव-गाँव के लोगों को जाग जाना चाहिए। अपना भला-बुरा करने की सत्ता किसी को नहीं देनी चाहिए। पाँच साल के लिए नहीं और पाँच दिन के लिए भी नहीं।

ग्राम-राज्य से गाँव आजाद होंगे

आप अपने गाँव का एक राज्य बनायें। कौन-सा माल बाहर से लाया जायगा, वह सब मिलकर तय करें। गाँव में इतनी शक्ति आनी चाहिए कि इसके अलावा कोई भी चीज कोई व्यक्ति न खरीदेगा और बेचनेवाला वैसे ही वापस चला जायगा। गाँव एक स्टेट (राज्य) है। आजकल प्रान्त-रचना के सिल-सिले में चर्चा चलती है कि कौन-सा तालुका किस राज्य में डाला जाय। राज्य चलानेवाले इधर से उधर डालते हैं और उधर से इधर। आपसे कोई पूछने नहीं आता। पाँच साल के बाद दूसरा शासक आता है, तो वह भी उधर का इधर और इधर का उधर कर देता है। कोई अगर आपसे पूछेगा कि आप कहाँ रहते हैं, तो जवाब होगा कि मैं गाँव में रहता हूँ और वह गाँव दुनिया में है। आप हमारी गिनती तमिल, मैसूर आदि चाहे जिसमें करें, हम तो अपनी गिनती गाँव में करते हैं और वह जगह कहीं है, तो दुनिया में है। हमारा राज्य परमेश्वर है और गाँव वाले मिलजुल कर राज्य-कारोबार चलाते हैं। आज तो आप के गाँव की योजना देहली में, और बहुत हुआ तो मद्रास में होती है। पर जबतक अपने गाँव की योजना आप न बनायेंगे, तबतक गुलामी न मिटेगी।

इसलिए सबसे बड़ी बात यह है कि आप अपना कारोबार चलायें। गाँव

ग्रामदान क्यों ?

यदि आप इसे ठीक तरह समझ लेंगे और उसके अनुसार बरतेंगे तो सुखी होंगे। नहीं तो पाँच-पाँच साल में राजा बदलते जायँगे और आप उन्हें चुनते चले जायँगे। यह समझ लो कि राजा अभी मरा नहीं, बल्कि जोरदार बना है, उसका नाम बदल गया है। जबतक हम अपने गाँव में गाँव का राज्य न चलायेंगे, तबतक ये राजा चलते रहेंगे। ग्रामदान में आप कुछ खोयेंगे नहीं। ५–१० या ५० एकड़ जमीन का मालिक २ हजार एकड़ जमीन का, याने सारे गाँव की जमीन का मालिक हो जायगा। उसमें कोई कुछ खोयेगा नहीं, बहुत कुछ पायेंगे। एक छोटा-सा परिवार था, तब जो आता, वही उसे पीसता। अब अगर वह परिवार बड़ा हो जाय, तो उसे कोई पीस न सकेगा। यह ग्रामदान का अर्थ है। इसीलिए बाबा ग्रामदान माँगता है।

कनकम् पालेयम
२१-१०-'५६.

बुनकरों से ! : ६५ :

बुनकरों का धन्धा सिखाने या उसे बढ़ाने के लिए आजतक किसी की एक कौड़ी खर्च नहीं हुई है। वेद में एक मन्त्र है। ऋषि भगवान् को अपना स्तोत्र अर्पण कर रहा है : "वस्त्रेव भद्रा सुकृता सुपाणि।" याने जैसे किसी बुनकर ने उत्तम वस्त्र बनाया हो, वैसे ही मैंने यह स्तोत्र बनाया है और वह तुम्हें समर्पित करता हूँ। यह दस हजार साल पहले का बचन है। इससे स्पष्ट है कि दस हजार साल से हमारे देश में बुनकर का धन्धा चलता आया है। बाप ने बेटे को वह कला मुफ्त में सिखायी है। इसे सिखाने के लिए न शिक्षक रखना पड़ा, न शाला खोलनी पड़ी और न सरकार को या और किसी को यह कला सिखाने के लिए कौड़ी खर्च करनी पड़ी। किन्तु आज उसी कला को मारने के लिए सरकार की तरफ से खर्च किया जाता है, तो यह कितनी विचित्र बात है!

उसके साथ कुछ संकल्प रहता है, तभी ताकत आती है। लेकिन यह भी समझ लीजिए कि सिर्फ प्रस्ताव में भी ताकत नहीं है। उसका अमल करेंगे, तभी ताकत पैदा होगी।

सुरट्टपालेयम्
२२-१०-'५६.

निष्काम-सेवा : ६६ :

आप के गाँव के नाम से आचार्य नरेन्द्रदेवजी का स्मरण हो आता है। वे भारत के एक बहुत बड़े सेवक थे और आखिर की बीमारी में यहाँ आकर रहे थे। सत्पुरुषों का मरण-स्थान भी महत्त्व का माना जाता है, क्योंकि उनकी आखिर की शुभवासना उस स्थान के साथ जुड़ी रहती है। हम उम्मीद करते हैं कि यहाँ के भाई-बहनों को उनके स्थान से निष्काम-सेवा की प्रेरणा मिलेगी। वैसे हर मनुष्य कुछ-न-कुछ सेवा करता ही है, उसके बिना जीना संभव ही नहीं। किंतु हम सेवा करते हैं, तो उसके साथ कुछ फल की अपेक्षा भी रखते हैं। अपने लिए कुछ अपेक्षा रखकर जो सेवा की जाती है, उसकी कीमत कुछ कम हो जाती है। पर जहाँ केवल प्रेम से सेवा की जाती है और उससे मिलनेवाले मानसिक आनन्द के अलावा कुछ भी इच्छा नहीं रहती, उस सेवा की कीमत ऊँची हो जाती है। ऐसी सेवा करनेवाले ईश्वर-भक्त होते हैं। वे लोगों की सेवा करते और उसीसे हृदय में आनन्द का अनुभव करते हैं, उसीसे उन्हें तृप्ति होती है।

खेल के जैसा सेवा-कार्य

जिस सेवा के साथ कुछ कामना रहती है, उससे पूरा आनन्द नहीं मिलता। हर काम के लिए यही बात लागू होती है। बच्चे खेलते हैं तो उन्हें उसमें आनन्द आता है। उससे व्यायाम भी होता है और देह के लिए लाभ भी। पर वे देह के लाभ की कामना रखकर नहीं खेलते, आनन्द और सहजभाव से खेलते

कि 'मैं नहीं जानता कि मैं क्या उपकार करता हूँ।' प्रकाशदान सूर्य का स्वभाव है। उसके बिना सूर्य रह ही नहीं सकता। सूर्य का सूर्यत्व ही उसपर निर्भर है। इसीलिए वह जितने काम करता है, उनका उसके सिर पर कोई बोझ नहीं होता। क्या हमें अपने आरोग्य का भार मालूम होता है? भार तो रोग का होता है, आरोग्य का नहीं। क्योंकि आरोग्य प्रकृति है, वह स्वभाव है, इसलिए उसका बोझ नहीं मालूम होता।

परोपकार के लिए ही जीवन

परोपकार करना सत्पुरुषों का स्वभाव है। वे पहचानते ही नहीं कि हम परोपकार कर रहे हैं। वे समझते हैं कि हम अपना काम करते हैं। एक बार एक किसान लोकमान्य तिलक से मिलने आया और उन्हें नमस्कार करते हुए कहने लगा : "आपका हमपर बड़ा उपकार है। आप महापुरुष हैं।' लोकमान्य ने उससे कहा : 'अरे भाई, तू खेती करके पेट भरता है और मैं लेख लिखकर, व्याख्यान देकर। इसलिए तू जो काम करता है, उससे मैं कोई ज्यादा काम नहीं करता। और अगर उपकार की बात करनी है, तो तेरा भी दुनिया पर उपकार होता है, जितना कि मेरा होता है।' कहने का तात्पर्य यह है कि उन्होंने महसूस नहीं किया कि मैं कोई उपकार करता हूँ।

माता बच्चे की कितनी सेवा करती है, वह उस बच्चे के लिए ही जीवन बिताती है, चौबीसों घंटा उसीके लिए काम करती है। अगर कल वह यह कहे कि मैं कितना काम करती हूँ, तो बच्चे भी उससे कहेंगे कि हम आपका बहुत उपकार मानते हैं। लेकिन आज माँ कहती भी नहीं कि मैं बड़ी सेवा का काम कर रही हूँ और बच्चे भी उसका आभार नहीं मानते हैं। माँ बच्चों की सेवा करती है और बच्चे माँ की सेवा करते हैं। कोई किसी का उपकार या आभार नहीं मानता।

लेकिन संस्था का सेक्रेटरी अपने सालभर के काम की लंबी रिपोर्ट पेश करता है और फिर सब लोग इकट्ठा होकर उसका उपकार मानते हैं। इस तरह जहाँ सेवा का नाटक चलता है, वहाँ उपकार का बोझ मालूम होता और आभार माना

हाथ द्वारका का राज्य आया, तो उसे बलराम को दे दिया, खुद नहीं लिया। महाभारत का बड़ा युद्ध हुआ और उसमें श्रीकृष्ण के कारण ही पांडवों की जय हुई। लेकिन भगवान् ने आखिर धर्मराज के ही मस्तक पर अभिषेक किया। वे खुद हमेशा सेवक ही रहे। इसीका नाम है निष्काम सेवा। लोकमान्य तिलक स्वराज्य के लिए सतत प्रयत्न करते रहे। लेकिन जब उनसे पूछा गया कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद आप कौन-सा पद लेंगे? तो उन्होंने कहा : 'स्वराज्य प्राप्ति के बाद पद लेना मेरा काम नहीं। मैं या तो वेदों का अध्ययन करूँगा या गणित का अध्यापक बनूँगा।' इसीका नाम है निष्काम सेवा। ऐसी थोड़ी भी निष्काम सेवा जिस किसी मनुष्य के हाथों से होती है, उसे अत्यंत समाधान और तृप्ति का अनुभव होता है।

दाताओं को निष्काम-सेवा का समाधान

हम चाहते हैं कि भूमिहीनों को भूमि मिले और उनकी मदद के लिए संपत्तिवानों की संपत्ति मिले। सब लोग अपनी जमीन, संपत्ति और बुद्धि गरीबों की सेवा में लगायें। इसके बदले में हम उन दाताओं को क्या कोई पद देंगे या उनके लिए कहीं सिफारिश करेंगे? हम उन्हें निष्काम सेवा का समाधान देंगे। केवल निष्काम सेवा करने की प्रीति से जो लोग अपनी जमीन, संपत्ति और बुद्धि का एक अंश दान देंगे, उनके हृदय को अत्यंत समाधान होगा। उससे भूमिहीनों को जितना आनंद होगा, उससे ज्यादा आनंद देनेवालों को होगा। एक प्यासा आपके घर पर आकर पानी माँगता है और आप उसे ठंडा पानी पिलाते हैं, तो उसकी अंतरात्मा तृप्त होती है। किंतु पानी पीनेवाले को जितना आनंद होता है, उससे ज्यादा आनंद पिलानेवाले को होता है। यह बात सही है या गलत, आप ही अपने मन में सोचिये। आप गरीबों के; दुःखियों के लिए कुछ मदद करेंगे, तो उनसे ज्यादा आनंद आपको होगा। आप अनुभव करके देख लिजिये और अगर आपके मन में यह निश्चय हुआ कि उसमें आनंद, संतोष और तृप्ति है, तो फिर आपको इस काम को उठा लेना होगा।

परेन्दुराई (कोयम्बतूर)
२४-१०-'५६.

के बदले दो तोले शक्कर में ले सकते हैं, लेकिन उससे ज्यादा नहीं खा सकते। इसलिये अनाज कम पड़े, इतना गन्ना नहीं बो सकते। देश को कपास भी चाहिए। क्योंकि कपास के बिना कपड़ा न बनेगा। लेकिन कपास ज्यादा बोयेंगे, तो कपड़ा खूब मिलेगा, पर अनाज कम हो जायगा। अनाज के बदले में कपड़ा, तम्बाकू, गन्ना आदि से ही काम न चलेगा। सारांश, जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती चली जायगी, वैसे-वैसे अनाज के लिए ही जमीन का उपयोग करना होगा। तब पैसे के लिए जो चीजें बोते हैं, शायद वे छोड़ देनी पड़ेंगी, या तो कम-से-कम बोनी होंगी।

ग्रामोद्योगों का माल महँगा बेचा जाय

किसान को पैसे के आधार पर अपना जीवन न रखना चाहिए। उसके हाथ में दूसरे उद्योग होने चाहिए। तेल, शक्कर, जूता, कपड़ा आदि चीजें अपने गाँव में ही बनानी चाहिए। किसान के हाथ में कुछ उद्योग होने चाहिए और उन उद्योगों का माल शहर में बेचा जाय और वह महँगा भी रहे। गाँववालों को अपना खुद का तेल बनाना चाहिए और बाकी बेच देना चाहिए। कपड़े आदि का भी ऐसा ही होना चाहिए।

गाँववाले शिकायत करते हैं कि खादी महँगी है। पर वह तो आपकी चीज है, बेचने की चीज है, खरीदने की नहीं। उसका तो ज्यादा पैसा मिलना ही चाहिए, तभी किसानों को कुछ पैसा मिलेगा। अनाज में तो उन्हें खास पैसा मिलेगा नहीं। जनसंख्या बढ़ेगी, तो वे दूसरी चीजें पैदा न कर सकेंगे, ज्यादा से ज्यादा जमीन अनाज में लगानी पड़ेगी। इसलिए तुम्हारी चीजें शहरों में बेची जानी चाहिए, तुम्हें खरीदनी नहीं चाहिए। आप सब लोगों को खद्दर पहनना चाहिए और बचा खद्दर शहर में बेचना चाहिए। शहरवालों को भी ज्यादा दाम देकर उसे खरीदना चाहिए। किन्तु आज तो देहात के लोगों का कुल जीवन पैसे पर खड़ा किया गया है। खेती के सिवा बाकी धंधे टूट गये हैं।

जमीन की कीमत नहीं हो सकती

जमीन माता है। सबके पोषण का साधन हो सकती है। पैसे का साधन

न हो, (३) थोड़ा पैसा जरूरी हो, तो उसके लिए गाँव में उद्योग चलें और उन उद्योगों की चीजें बाहर बिकें, (४) उन उद्योगों की चीजों का दाम ज्यादा हो, और (५) गाँव में सब लोगों को जमीन मिले। जैसे शादी करने का अमीर-गरीब आदि सभी को हक है, क्योंकि उसकी सबको जरूरत है, वैसे देहात में हर मनुष्य को जमीन मिलनी चाहिए। इसलिए गाँव की जमीन सब में बाँटो। जमीन का मूल्य पैसे में नहीं हो सकता।

अगर आप यह ग्रामीण अर्थशास्त्र समझ लेंगे, तो आपको भूदान समझाने की जरूरत न रहेगी। आप गाँव में जमीन बाँट लेंगे, गरीबों को जितनी जमीन चाहिए उतनी दान में देंगे, गाँव में ग्रामोद्योग खड़े करेंगे। महत्त्व की चीजें बाहर से न खरीदेंगे, वरन् खुद बनायेंगे और जो चीजें बाहर बेचेंगे, उसका दाम ज्यादा रखेंगे। यह सारा इन्तजाम संघशक्ति से ही करना चाहिए। अलग-अलग बेचने जायँगे, तो ज्यादा पैसा न मिलेगा। इसलिए आपको गाँव का एक संघ बनाना होगा। यही हमारा ग्रामीण अर्थशास्त्र है।

सिवागिरि (कोयम्बतूर)
२७-१०-'५६

आवश्यकता भी न रही। उनकी यह श्रद्धा हो गयी कि सरकार पर आधार रखकर ही काम हो सकता है। इस हालत में भी निष्काम सेवा करनेवाले हैं, पर उनकी संख्या बहुत कम, तीन-चार हाथों की उंगुलियों पर उनके नाम गिने जा सकते हैं।

राजनैतिक पक्षवालों की हालत

जो लोग राजनैतिक पक्षों में बँट गये हैं, उनमें से कुछ लोग पद लिये हुए हैं, कुछ म्युनिसिपलिटी, डिस्ट्रिक्टबोर्ड आदि में गये, तो कुछ काँग्रेस संस्था के अध्यक्ष, मंत्री आदि बने। इन दिनों काँग्रेस के अध्यक्ष आदि के हाथ में भी बहुत सत्ता रहती है, क्योंकि आज काँग्रेस शासनकर्त्री संस्था है। ऐसी हालत में निष्काम सेवक कौन होंगे ? दुनिया में कुछ तो होंगे ही, ईश्वर के भक्त कहीं-न-कहीं होते हैं तो वहाँ भी होंगे। जो लोग दूसरे राजनैतिक पक्षों में काम करते हैं, उनके हाथ में सत्ता नहीं है, किंतु वे सत्ता के अभिलाषी हैं और उनका सारा ध्यान इसी में रहता है कि काँग्रेस के या सरकार के काम में कहाँ त्रुटियाँ हैं। इस तरह दूसरों की गलतियाँ गिननेवाला अपना चित्त शुद्ध नहीं रख सकता। जहाँ चित्तशुद्धि का अभाव आया वहाँ निष्काम सेवा कहाँ से होगी ? फिर भी उनमें कुछ चंद लोग निष्काम होंगे।

सेवा का सौदा

इस तरह स्वराज्य-प्राप्ति के बाद जो सेवा हो रही है, उसका हिसाब हमने लगा लिया। अब भी 'रामकृष्ण मिशन' जैसी कुछ संस्थाएँ काम करती हैं, जो पहले भी करती थीं। उनमें कुछ निष्काम सेवक जरूर होंगे। निष्काम सेवा ही सच्ची सेवा है। बाकी सेवा याने एक प्रकार का सौदा है। किसी ने जेल में कई साल बिताये, तो वह कहता है हमें भी कुछ मिलना चाहिए। किसी ने भूदान में कुछ त्याग किया, तो वह भी कहता है कि हमें कुछ मिलना चाहिए। अभी काँग्रेस ने जाहिर किया है कि जिन्होंने कुछ काम किया है, वे अपने काम का हिसाब पेश करें और उसके अनुसार उन्हें कुछ पद आदि मिलेगा। कुछ लोग अपने काम की रिपोर्ट पेश करेंगे कि हमने इतने-इतने दिन काम किया,

परंतु जब से इनको राजसत्ता का बल मिला तब से हजारों लोग शैव, वैष्णव और जैन बने। लेकिन वे वास्तव में शैव, वैष्णव या जैन नहीं, बल्कि राजनिष्ठ और राजभक्त बने। आज दुनिया में गिनती के लिए तो हजारों शैव, वैष्णव, जैन और लाखों हिन्दू, ईसाई हैं; लेकिन उनका आचरण क्या है?

धर्म का नाम है, आचरण नहीं

आज अगर ईसा मसीह आये, तो क्या यूरोप में और अमेरिका के ईसाई धर्म का दृश्य देखकर वह संतुष्ट होगा? ईसा ने तो कहा था कि कोई तुम्हारे गाल पर तमाचा मारे, तो दूसरा गाल सामने करो। आज इसका आचरण कौन कर रहा है? आज गिनती के लिए तो करोड़ों की संख्या में ईसाई हैं। वही हालत इस्लाम की है। बड़े-बड़े राजा हुए, जो इस्लाम का नाम लेते थे, तो प्रजा में से भी हजारों लोग मुसलमान बन गये। क्या वह कोई इस्लाम का प्रचार था? अभी हम देखते हैं कि अंबेडकर के साथ दो लाख बौद्ध बने। तो क्या ऐसे धर्मांतरण से बुद्ध भगवान को संतोष होता होगा? क्या उन्होंने इस तरह लाख-लाख लोगों को दीक्षा दी थी? क्या धर्म कोई खेल है कि लाख-लाख लोग एकदम दूसरे धर्म में शरीक हों? आचरण कुछ नहीं और धर्म के नाम से झगड़े चलते हैं। इसलिए जबसे राज-सत्ता धर्म के साथ जुड़ गई, तबसे धर्म की अत्यंत हानि हुई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज हजारों, लाखों लोग अपने को धार्मिक कहलाने के बजाय नास्तिक कहलाना पसन्द करते हैं।

इसलिए राजसत्ता के जरिये सद्विचार या सद्धर्म फैल सकता है, यह कल्पना ही मन से निकाल दीजिये। बल्कि अगर सच्चे अर्थ में राजसत्ता धर्म के साथ जुड़ जाय, तो धर्म राजसत्ता को ही खतम कर देगा। दोनों एक साथ नहीं रह सकेंगे। अन्धकार और सूर्यनारायण एक साथ नहीं रह सकते। धर्म अगर सचमुच में राजसत्ता के साथ आ गया, तो वह राजसत्ता को तोड़ देगा। दूसरों पर सत्ता चलाना धर्म-विचार नहीं। सबकी सेवा करना, प्रेम से

वाचकर और नम्मालवार का तमिलनाड पर आजतक जो असर है, वह न किसी पांड्य का है, न पल्लव का है और न चोल राजा का है। यहाँ पर सब लोग भस्म लगाते हैं, तो क्या वह कोई चोल राजा की आज्ञा से करते या पांड्य राजा की आज्ञा से? आखिर किसके नाम पर लोग अपने जीवन में इतना त्याग करते हैं? विवाह-संस्था जैसी उत्तम संस्था किसने बनायी? उसमें कौन-सा कानून आता है? माताएँ बच्चों की परवरिश करती हैं, तो किस राजा के या किस सरकार के हुक्म से? असंख्य यात्राएँ चलती हैं, वह किनकी आज्ञा से? मरने पर स्मशान-विधि और श्राद्ध-विधि आदि होती है, तो किनकी आज्ञा से? यहाँ पर जो 'तिरुकुल' पढ़ा जाता है, 'तिरुवाचकम्' का रटन किया जाता है, वह क्या किसी युनिवर्सिटी की आज्ञा से होता है, या किसी म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्टबोर्ड की आज्ञा से? यह बात सही है कि आज उन कम्बख्तों के हाथ में ऐसी ताकत है कि वे कोई भी किताब कुल बच्चों से पढ़वाना चाहें तो पढ़वा सकते है। लेकिन बच्चे वैसी किताबें स्कूल में पढ़ते हैं। और स्कूल खतम होने पर फेंक देते हैं, फिर जिन्दगी भर उस किताब को खोलते नहीं। लेकिन लोग तिरुकुरल और तिरुवाचकम् जेब में रखते हैं और बार-बार पढ़ते हैं। आज लोगों की जो विवेकबुद्धि बनी है, वह किसने बनायी है? आज इतना दान दिया जाता है, वह किसकी आज्ञा से दिया जाता है? इतना सारा तप, उपवास, एकादशी, रोजा किया जाता है, वह किसकी आज्ञा से किया जाता है? हिन्दुस्तान में बहुत-से लोग स्नान किये बगैर दोपहर का भोजन नहीं करते, वह किसकी आज्ञा से करते हैं?

सिकंदर और डाकू

आप क्या समझते हैं कि पिनलकोड में चोरी के लिए सजा है, इसलिए इतने सारे लोग चोरी नहीं करते? मान लीजिये कि कल पुलिस, कोर्ट, जेल आदि कुछ नहीं रहे, तो क्या बाबा भूदान का काम छोड़कर चोरी करना शुरू करेगा? चोरी के लिए सजा न हो, तो आपमें से कितने लोग चोरी करना शुरू करेंगे? चोरी नहीं करनी चाहिए ऐसी जो हमारी विवेकबुद्धि बनी है,

है उसे 'राज्य' कहते हैं, चाहे वह अपने लोगों का ही हो। शेन्नै (मद्रास) से जो चलता है, वह 'राज्य' कहलाता है। गाँव-गाँव में हर मनुष्य अपने पर जो चलाता है वह 'स्वराज्य' है। मुझे चाहे भूखा रहना पड़े, लेकिन मैं चोरी न करूँगा, इसका नाम है 'स्वराज्य'। मुझ पर दूसरे किसी की हुकूमत चलती हो, तो क्या वह स्वराज्य है? 'स्वराज्य' का अर्थ है अपना खुद का अपने पर राज्य। इस तरह जब सब लोगों में अपने पर काबू रखने की शक्ति पैदा होगी और उन्हें अपने कर्तव्य का भान होगा, तब 'स्वराज्य' आयेगा। तब तक 'राज्य' ही चलेगा, फिर चाहे वह हिन्दीवालों का राज्य हो या तमिलवालों का राज्य हो। हमें काम स्वराज्य का करना है। उसके लिए जनशक्ति पैदा करनी है, लोगों के हृदय में आत्मशक्ति का भान पैदा करना है। अपने गाँव का कारोबार हम ही चला सकते हैं, कोई भी बाहर की सत्ता हमें रोक नहीं सकती, ऐसी ताकत पैदा होनी चाहिए।

बाबा को स्वराज्य मिला

मैं अपने ऊपर अपनी खुद की सत्ता चला सकता हूँ। बाबा ने तय किया है कि वह पैदल घूमेगा। रोज पचासों रेलें फरफर करती हैं और कई बार बाबा को उनका दर्शन होता है। बाबा का कोई भाई कलकत्ते में पड़ा है। रेल में बैठा जाय, तो दो दिनों में उसे मिलने के लिए जाया जा सकता है। लेकिन कोई भी रेल बाबा को अपने में बिठा नहीं सकती। बाबा का अपने विचारों पर काबू है। वह समझता है कि वह जो संकल्प करेगा, उसके खिलाफ दुनिया की कोई ताकत काम न करेगी। फिर भी बाबा दूसरों पर दबाव डालने का संकल्प न करेगा, वह अपने पर ही दबाव डालने का संकल्प करेगा। बाबा अपने लिए कोई संकल्प करेगा और वह देखना चाहेगा कि क्या उसे तोड़नेवाली कोई शक्ति दुनिया में है। एक जमाना था जब बाबा का अपने पर काबू नहीं था, अपने पर काबू पाने के लिए उसे अभ्यास करना पड़ा। जिस समय उसकी अपने पर सत्ता नहीं थी, तब दूसरों की सत्ता उसपर चलती थी। किंतु जब से उसकी अपने पर सत्ता चलने लगी, तभी से उसे 'स्वराज्य' मिला।

करोड़ों लोग होंगे कि जिन्होंने समुद्र न देखा होगा, लेकिन जिसने पानी नहीं देखा, ऐसा कोई भी शख्स नहीं होगा। बच्चों ने भी पानी देखा होगा।

करुणा और करुणा का समुद्र

किंतु भजन में हमने सुना कि परमेश्वर करुणा का समुद्र है। उन्होंने करुणा के समुद्र को देखा होगा, पर वह आँखों से नहीं, अक्ल से देखा होगा। किसी ने अपनी अक्ल से परमेश्वर को करुणा के समुद्र के रूप में देख लिया होगा। लेकिन सब लोग करुणा के समुद्र को नहीं, करुणा को देखते हैं। करुणा को किसने नहीं देखा? जिसने पानी नहीं देखा, उसने भी करुणा को देखा है। बच्चे का जन्म होते ही माता ने उसे अपने स्तन का दूध पिलाया। बच्चे ने तबतक पानी नहीं देखा, लेकिन करुणा चख ली। जब माता ने उसे स्तन का दूध पिलाया, उसके साथ-साथ उसे करुणा का भी ज्ञान हो गया। इसलिए जिसने करुणा को देखा नहीं, ऐसा दुनिया में कोई नहीं है।

जीवन में करुणा का दर्शन

कुछ लोगों ने करुणा के समुद्र का अपनी बुद्धि से दर्शन किया होगा, किंतु करुणा का दर्शन तो बालक ने भी किया है। बालक ने माता की करुणा देख ली, इसलिए तमिल में माता को 'कण्कण्ड देय्वम्' (प्रत्यक्ष भगवान्) कहते हैं। फिर भी उसको करुणा का समुद्र नहीं दीखता, हाँ, बच्चों को माता में करुणा की नदी काफी मिलती है। समुद्र बहुत बड़ी चीज है, लेकिन नदी भी कोई बहुत छोटी चीज नहीं। बच्चों को करुणा की नदी का दर्शन माँ में हो गया। उसने पहचान लिया कि वहाँ परमेश्वर का एक अंश है। क्योंकि माँ में परमेश्वर की करुणा दीख पड़ती है।

थोड़े दिनों के बाद बच्चों को पिता की करुणा का अनुभव होता है। वह पहचान लेता है कि यहाँ भी ईश्वर का कुछ रूप है। फिर थोड़े दिन बाद वह स्कूल में चला जाता है, तो वहाँ उसे गुरुजी की करुणा का दर्शन होता है। हाँ, हाथ में छड़ी लेनेवाला गुरुजी हो, तो वह दर्शन न हो, पर ज्ञान देनेवाला मिला

एक बार एक मनुष्य बहुत बीमार था। उसके पेट में खूब दर्द था। डाक्टरों ने खूब इलाज किये, परन्तु उसका कोई भी अच्छा परिणाम नहीं आया। वह बेचारा दुःख के मारे रोज चिल्लाता। आस-पास के लोग सुनते और उसे मदद करने की कोशिश करते, पर कुछ भी परिणाम न होता। एक दिन सूर्य का उदय हो रहा था, उतने में उस बीमार की आँखें बंद हो गयीं और उसका चिल्लाना भी रुक गया। इसने पूछा : 'अरे इसे क्या हो गया ?' लोगों ने कहा : 'वह मर गया।' उसे उस समय मृत्यु में भी करुणा का दर्शन हुआ। कितनी करुणामय मृत्यु है। बेचारा कितना चिल्लाता था, डॉक्टर-मित्र कुछ न कर सकते थे, रिश्तेदार भी जिसे दुःख से नहीं छुड़ा सकते थे, उसे करुणामय मृत्यु ने छुड़ाया।

सारांश, उसे करुणा का दर्शन माँ से हाते-होते हृदय में हुआ और उसने बाद में जहाँ-जहाँ देखा, वहीं करुणा का ही दर्शन हुआ। आखिर में करुणा का दर्शन मृत्यु में भी हुआ। वह इधर-उधर की सबकी सब करुणा इकट्ठी करने लगा तो एक दिन बहुत बड़ा भारी समुद्र करुणा का बन गया। उसी को तमिल में 'करुणैकडल' (करुणा का समुद्र) कहते हैं। वही परमेश्वर है। उसी करुणा का एक अंश माँ में है, एक अंश बाप में है, एक अंश गुरु में है, एक अंश मित्र में है, एक अंश भाई में है, एक अंश मनुष्य में है, एक अंश प्राणी में है, एक अंश पेड़ में है और एक बहुत बड़ा अंश मृत्यु में है—इस तरह उसको सर्वत्र करुणा का दर्शन हुआ। अब कहा जायगा कि उसने भगवान् का दर्शन कर लिया। उसने करुणा का समुद्र देख लिया, क्योंकि उसका खुद का जीवन केवल करुणा से भर गया। बोलने में बोला जाता है कि भगवान् करुणा का समुद्र है। पर वह किस तरह देखा जाता है, उसकी एक कला है। वह कला मैंने आप लोगों के सामने खोल दी।

भूदान में करुणा के समुद्र का दर्शन

साढ़े पाँच साल से हम भूदान के काम में घूम रहे हैं। हम कह सकते हैं कि हमें करुणा के समुद्र का दर्शन हुआ। कुल पाँच लाख लोगों ने ४० लाख

ईश्वर का रूप और चिह्न

हम आशा करते हैं कि इस गाँव में करुणा का दर्शन होगा। जब हृदय करुणा से भर जायगा, तभी ईश्वर का दर्शन होगा। कई लोग पत्थर की मूर्ति बनाते हैं और उसी को भगवान् समझते हैं। पर वह तो ध्यान के लिए एक चिह्न बना लिया, जैसे ईश्वर के ध्यान के लिए 'स्वस्तिक' या 'ओम्' बनाते हैं। कहते हैं कि 'ॐ' मूर्ति में 'उ' परमेश्वर का चेहरा और शेषांश सूंड है। वे करुणा, ज्ञान और प्रेम से भरे हैं तथा संकट में मदद करते हैं। इस तरह परमेश्वर का ध्यान-चिंतन करने के लिए एक चिन्ह बना दिया। फिर भी वास्तव में वह ईश्वर का सच्चा रूप नहीं। आपको आम का चित्र दिखाया जाय, तो क्या वह आम है? मान लीजिये, एक गोबर का आम बना दिया और उस पर रंग चढ़ा दिया तो क्या आप उसे खायेंगे और उससे आपकी तृप्ति होगी? स्पष्ट है कि वह आम नहीं, आम का रूप है। आम तो खाने पर मालूम होता है। इसी तरह पत्थर की मूर्ति तो ईश्वर का चिह्न है। उसे हमने ही बनाया है। परन्तु आम हमने नहीं बनाया, ईश्वर ने पैदा किया है। गोबर का आम और यह पत्थर का भगवान् हमने बनाया, वह ईश्वर का रूप नहीं, चिह्न है। जैसे सच्चा आम दूसरा होता है, वैसे ही सच्चा परमेश्वर करुणा है। परमेश्वर का करुणा और प्रेम ही रूप है।

यहाँ 'अन्बे शिवम्' (प्रेम ही ईश्वर है), ऐसा कहा है। शिव का यह एक चिह्न है कि उनके सिर पर गंगा है। याने दिमाग में ठंडक होनी चाहिए। ठंडक के बिना सिर में आग लग जायगी, तो करुणा के बदले क्रोध ही प्रकट होगा। इसलिए बिलकुल ठंडी गंगा शिवजी ने सिर पर रख ली है। और गले में साँप रख लिये हैं। यह कितनी करुणा है। वह काटनेवाला साँप नहीं रहा होगा, वह तो पुष्पों का हार ही बन गया होगा। उन्होंने उसे पहन लिया, तो करुणा का रूप सामने खड़ा करने के लिए एक चिह्न हो गया। पर इस चिह्न को ही ईश्वर समझो और करुणा को न पहचानो, तो क्या कहा जायगा? इसलिए वास्तव में परमेश्वर का रूप करुणा समझकर दिन-ब-दिन हम अपनी करुणा बढ़ाते चले जायँ, यही सच्ची साधना है।

तो छिपे तौर पर होता है। हमेशा भलाई का हमला बुराई पर होता चला आया है।

सज्जनों के कर्त्तव्य

लोग अगर यह विचार समझेंगे, तो वे कभी निराश न होंगे। लोग पूछेंगे कि अगर भलाई की चलती है और बुराई की ताकत नहीं है, तो दुनियाँ में तो बुराई की ही बहुत चलती दीखती है, इसका क्या कारण है ? वह बुराई लोगों में बाहर से आती है। उसके लिए परिस्थिति में परिवर्तन लाना पड़ेगा। यह सारा प्रयत्न भले लोगों को करना होगा। भले लोगों को तिहरा प्रयत्न करना होगा। पहले तो वे अपने चित्त का परीक्षण कर निज की भलाई बढ़ाये। उन्हें यह न लगे कि हम भले हैं। हममें क्या बुराई है ? हरएक में कुछ-न-कुछ अवगुण छिपे ही रहते हैं, उन्हें ढूँढ़ कर वहाँ से हटाना चाहिए। व्यक्तिगत आत्मशुद्धि का यह कार्य भले लोगों को सतत करना चाहिए। दूसरे, वे सब भले लोगों को इकट्ठा करें। आज भले लोग अकेले-अकेले काम करते हैं। अपना-अपना विचार सोचते और दूसरे भले सज्जन के साथ सहयोग नहीं करते। उनमें थोड़ा विचार-भेद भी होता है। और उसे महत्व देते हुए वे अलग-अलग काम करते हैं। इसलिए उनकी ताकत इकट्ठी नहीं होती। उनके बीच अनेक संप्रदाय बनते हैं।

सोचने की बात है कि भक्तों के अलग-अलग संप्रदाय बनते हैं और अभक्त सब इकट्ठा रहते हैं। उन सबका समूह है। ये भक्त अलग-अलग संप्रदाय में बँटे हुए हैं। इस्लाम धर्म नास्तिकता नहीं मानता। फिर भी ये सारे लोग इकट्ठा होकर नास्तिकता पर हमला नहीं करते, क्योंकि इनकी आपस में बनती नहीं। अल्लाहमियाँ का नाम लेनेवाला, विष्णु भगवान का नाम नहीं लेगा। विष्णु का नाम लेनेवाला शिव के भक्त से एकरूप न होगा। ईसाई के यहाँ अल्ला, विष्णु, शिव कोई नहीं चलता, उसका स्वर्ग में रहनेवाला अलग ही परमेश्वर है, जो सातवें आसमान में रहता है, वे उन्हीं की भक्ति करेंगे। ये सारे आस्तिक बँटे रहते हैं और कुल नास्तिक लोग एक हो जाते हैं। पुण्यवान्

औषध देने के पहले परहेज रखने की बात करते थे कि मिर्च-मसाला, शक्कर आदि न खाना होगा, बीड़ी-सिगरेट छोड़ना होगा, तभी औषध का गुण होगा, नहीं तो औषध का कुछ असर नहीं होगा। किंतु आज के डाक्टर के पास रोगी जायगा, तो वह पूछेगा कि क्या हुआ है। वह कहेगा कि छाती दुखती है। ठीक है, औषध देता हूँ, खाने-पीने में कोई परहेज नहीं, सब कुछ खाओ, जरा इतना करो कि ज्यादा मत खाना। यह है आधुनिक डाक्टर। उसे डर लगता है कि परहेज की बात करूँगा तो वह औषध लेने को न आयेगा। यह तो रोगी को भी अच्छा लगता है। फलतः डाक्टर, रोग और रोगी, तीनों की दोस्ती बन जाती है। वह रोग कायम रहेगा, रोगी कायम रहेगा और डाक्टर भी सदा का डाक्टर रहेगा—वह उसका 'फेमिली डाक्टर' बन जायगा। वह सदा औषध देगा और घर में कायम के लिए बीमारी रहेगी। पहले जैसे अपने घर में एक जगह भगवान् की मूर्ति रखते थे, वैसे ही घर में एक कोने में बराबर बोतल रहेगी। उसमें कभी लाल पानी रहेगा, तो कभी हरा। जब घरवाले लोग मर जायेंगे, तभी घर में से बोतल हटेगी।

सारांश, आज की समाज-रचना में फर्क करने की हिम्मत ही किसी में नहीं है। आज के समाज में जो दुःखी हैं उनके सामने दया दिखाते हैं, कोई भी माँगने आया, तो उन्हें बहुत दुःख होगा और दो मुट्ठी धान भी दे देंगे। लेकिन ऐसी कोई योजना न बनायेंगे कि उसे फिर से कभी माँगना ही न पड़े। वे क्यों भीख माँगते हैं, इसके बारे में कभी न सोचेंगे। परिस्थिति बदलने की हिम्मत और कल्पना ही वे नहीं कर सकते।

भूदान में तेहरा कार्य

भूदानयज्ञ में यह तेहरा काम हमें करना है। पहला, सर्वोदय विचार माननेवाले सज्जनों को अपने हृदय की शुद्धि करनी है। दूसरा, सब लोगों को मिलकर काम करना है। तीसरा, समाज की आज की रचना पर हमला करना है—समाज-रचना बदलनी है। आज एक भाई हमसे मिलने के लिए आये थे। कहने लगे कि

ही यह कहते हैं सो नहीं, उसके पहले भी 'ग्रो मोर फूड' चलता था। उत्पादन बढ़ाने से यह क्षयरोग न मिटेगा। उत्पादन बढ़ाओगे और क्षयरोग कायम रखोगे, तो रोगी दो दिन ज्यादा जियेगा। जल्दी मरता तो बेचारा दुःख से जल्दी छूटता। सारांश, जो समझते हैं कि भारत की मुख्य समस्या 'अन्नोत्पत्ति' है, वे भारत को समझे ही नहीं हैं। भारत की मुख्य समस्या तो ये अनंत भेद हैं, भारत को यह 'भेदक्षय' हुआ है।

प्रेम का दंड

भूदान में थोड़ी-थोड़ी ज़मीन मिले, तो शुरूआत में ठीक है, लेकिन यह भूदान का ढंग नहीं है। भूदान का ढंग तो यह है कि गाँव की समस्या हाथ में लेकर गाँव में कोई भूमिहीन न रहे। गाँव में जितने भूमिहीन हैं, उन सबको भूमि देने की जिम्मेवारी सबको उठानी चाहिए। जैसे पहले गाँव में कोई बदमाशी करता था और सरकार उसे ढूंढ़ न पाती थी, तो गाँव पर एक सामूहिक जुर्माना लगाती थी। वैसे ही आपके गाँव में भेदासुर बढ़ाने के अपराध में आपको २०० एकड़ जमीन प्रेम से दान देने का दंड है। गाँव में १२०० एकड़ जमीन है, तो उसका छठा हिस्सा २०० एकड़ जमीन वसूल होनी चाहिए। यह सरकार का दंड नहीं, प्रेम का और समझदारी का दंड है। करीब-करीब गाँव में से सब जमीनवालों को जमीन देनी होगी। सबको मिलकर सब भूमिहीनों को जमीन मिल जाय, उतनी जमीन देनी चाहिए। तभी भेदासुर का हनन होगा। फिर गाँववाले मिलजुल कर काम करेंगे और गाँव की समस्या के बारे में सब एक साथ बैठकर सोचेंगे। इस तरह आदत हो जायगी, तो 'ग्रामराज्य' और 'सर्वोदय' होगा। क्षयरोग मिट जायगा और व्यक्ति, समाज तथा देश को पुष्टि-लाभ होगा।

वेल्लैकोविल (कोयम्बतूर

३१-१०-'५६

सब लोगों का हृदय-परिवर्तन नहीं होता। जो हृदय-परिवर्तन की कीमिया ईश्वर को नहीं सधी, वह क्या मुझसे सधेगी? हम लोगों को मुक्ति दिलानेवाले नहीं हैं बल्कि भक्ति सिखानेवाले हैं। मुक्ति दिलानेवाला तो परमेश्वर है। हम भक्ति का प्रचार करते चले जायँ, तो उसका थोड़ा-सा परिणाम होगा। लेकिन उसका मुख्य परिणाम तो यह होना चाहिए कि उससे हमारे हृदय की शुद्धि हो, उसका परिवर्तन हो। इन दिनों हर कोई दूसरे के हृदय-परिवर्तन की बात करता है। वह समझता है कि अपने हृदय में ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसका परिवर्तन होना जरूरी है। और लोगों के हृदय में ऐसी चीजें भरी हैं, जिनका परिवर्तन होना जरूरी है। कितना अहंकार, कितना अज्ञान!

अंदर का प्रवाह सूखता नहीं

हमें ज्यादा जमीन मिलती है, तो खुशी नहीं होती और कम मिलती है, तो दुःख नहीं होता। हमारी बिहार-यात्रा में हमें औसत प्रतिदिन तीन हजार एकड़ जमीन और तीन साढ़े-तीन सौ दान-पत्र मिले। वकील की प्रैक्टिस बढ़ती है, तो उसकी फीस भी बढ़ती है। परन्तु यहाँ के लोगों ने हमें डिग्रेड कर दिया है। सेलम जिले में हमें ३३ दिनों में सिर्फ ४-४।। हजार एकड़ जमीन मिली। इतनी कम जमीन हमें आजतक कभी नहीं मिली। तेलंगाना में भूदान-यज्ञ के आरंभ में भी हमें हर रोज २०० एकड़ के हिसाब से जमीन मिली थी। उसके बाद तो काम बढ़ता ही चला गया। नदी जैसे आगे बढ़ती है, वैसे छोटी नहीं बनती है। लेकिन तमिलनाड में हमारी नदी सूखने लगी। फिर भी अंदर जो नदी बहती है, वह सूखी नहीं है। भक्ति का प्रवाह अखंड बह रहा है। चाहे कावेरी सूख जाय, लेकिन अंदर का झरना नहीं सूखेगा। जमीन कम मिले या ज्यादा, उससे हमारा क्या बिगड़ता है? मेरा तो तब बिगड़ेगा, जब अन्दर का भक्ति का झरना सूखना शुरू होगा। लेकिन वह नदी इतनी भरी है कि हम उसे रोक लेते हैं। नहीं तो चौबीस घंटे अश्रुधारा चलेगी, ऐसी मेरी हालत है। हमें इन सारे ईश्वरों का दर्शन हो रहा है। सच्चे और बुरे अर्थ में हमारी यह यात्रा चल रही है।

समाज-सुधारक की कसौटी हो

हम किसी गाँव में जाते हैं और छोटा-सा व्याख्यान देते हैं। लोगों पर उसका कोई असर नहीं हुआ, तो हमें ईश्वर का दर्शन होता है। हम समझते हैं कि लोग कुछ सत्व रखते हैं, पूरा विचार समझे बिना देते नहीं। कोई भी लोगों के पास जाकर माँगे और लोग देने लगें, तो हम तो डर जायेंगे, हम समझेंगे कि अब हिंदुस्तान टिकेगा नहीं, लोग ऐसे मूरख बन गये हैं कि कोई भी माँगता है, तो दे देते हैं। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी आदि सब आये, परंतु लोगों ने उनकी बातें मानीं नहीं। लोग पुरानी पद्धति एकदम छोड़ते नहीं और नयी अपनाते नहीं, इसीमें हम समाज का भला समझते हैं। जो भी समाज-सुधारक आयेंगे, उनकी तपस्या की कसौटी किये बिना, उनके विचार की कसौटी किये बिना उनके अनुकूल न होने में ही समाज का भला है।

प्रयत्न से फल ज्यादा

यह बीज बिलकुल छोटा-सा दीखता है, लेकिन यह वटवृक्ष का बीज है। जब यह छोटा बीज बोया जायेगा, तो उसमें से विशाल वटवृक्ष पैदा होगा। स्वराज्य के लिए कितने लोगों ने कोशिश की परंतु वे स्वराज्य को देख नहीं सके। हम एक ही नाम लेते हैं लोकमान्य तिलक का। उन्होंने जिंदगी भर स्वराज्य के लिए कोशिश की, लेकिन उन्हें उसका दर्शन न हो सका। तो क्या आप समझते हैं कि वे दुःख से मरे थे। मरने के पहले जबतक उन्हें सूझ थी, 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।' तब तक वे बोलते रहे। 'जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तब-तब भगवान् का अवतार होता है।' इसलिए वे लोग भी बड़े भाग्यवान हैं, जिन्हें फल देखने को नहीं मिलता, पर प्रयत्न करने को मिलता है। हमें तो लगता है कि हम जितना प्रयत्न कर रहे हैं, उससे ज्यादा फल मिल रहा है। इसलिए आप सब लोग अत्यन्त उत्साह से और सातत्य से लोगों के पास जाइये और प्रेम से यह अपना प्रेम-संदेश दीजिये, फिर आप देखेंगे कि उससे आपके हृदय को कितनी प्रसन्नता होती है और समाज को कितना समाधान होता है।

नेता की नहीं, ईश्वर की मदद

हमेशा यह शिकायत की जाती है कि हमारे कार्यकर्त्ताओं के पीछे कोई बड़ा मनुष्य नहीं है। यह सोचने की बात है कि बड़ा कौन है। इस दुनिया में जो सबसे छोटे होते हैं, वे ईश्वर के राज्य में सबसे बड़े होते हैं। अगर आपको किसी नेता की मदद मिलती, तो आप ईश्वर की मदद से वंचित रह जाते, ईश्वर की ज्योति आपके हृदय में प्रकट नहीं होती। अगर जमीन मिलती तो आपको यही लगता कि उस नेता की ताकत के कारण मिली और नहीं मिलती, तो लगता कि उसमें ताकत नहीं है। याने वह यश और अपयश, दोनों आप उस नेता पर डालते तो आपकी हृदय-शुद्धि का कोई सवाल ही नहीं रहेगा। इसलिए आज की हालत बहुत अच्छी है, उससे आपके अंतर में जो ज्योति है, वह बढ़ेगी, आपको आत्म-निरीक्षण का मौका मिलेगा और ईश्वर ने चाहा, तो आपकी ही ताकत बढ़ेगी और आपकी शक्ति से ही काम होगा। लेकिन फिर अहंकार मत रखो कि हमारी शक्ति से काम हुआ। आपको समझना चाहिए कि यह कार्य नया है, इसलिए नये मनुष्यों के लिए ही है। नया कार्य पुराने लोगों के लिए नहीं होता है। ईश्वर अगर नये कार्य पैदा करता है, तो उसके लिए नये मनुष्यों को भी पैदा करता है। पुराने नेता नये कार्य को पहचानें, यह आशा रखना व्यर्थ है। पुराने लोग आपके काम को अच्छा कहते हैं, आपको आशीर्वाद देते हैं, इससे ज्यादा क्या चाहिए ? समझना चाहिए कि भगवान् ने आपके लिए सब द्वार खोल दिये हैं, आप जाइये और बे-रोक-टोक काम कीजिये। आपके प्लैटफार्म पर बोलने के लिए कोई नहीं आता है, वह बिलकुल खाली है, आपके लिए ही खाली रखा है। बारिश में, ठंड में, धूप में घूमना पड़ता है, छोटे-छोटे गाँवों में जाना पड़ता है, लोगों को बार-बार समझाना पड़ता है। कौन जायेगा बारिश में और काम करेगा ? इससिए वह सारा कार्यक्रम हमारे लिए खाली रखा है। इसलिए परमेश्वर का नाम लेकर उत्साह के साथ काम करो।

भवानी (कोइम्बतूर)
२३-८-'५६.

जब ज्ञान, प्रेम और धर्म भी कैदी बने ! : ३८ :

आज रास्ते में एक हाईस्कूल में पहुँचे। वहाँ एक कमरे पर अच्छा-सा वचन लिखा था, जिसका आशय था 'धर्म, प्रेम और ज्ञान, तीनों एकत्र होने चाहिए।' बात बड़े पते की है। आजकल तीनों का बँटवारा हो गया है। विद्या विद्यालयों में कैद है, प्रेम घरों में, तो धर्म देवालयों की चहार-दीवारों में जकड़ा हुआ है। तीनों ताकतें आज कैदी बन गयीं।

ज्ञान विद्यापीठों में कैद

एक जमाना था, जब देश के परिव्राजक और भक्तजन गाँव-गाँव, घर-घर जाकर ज्ञान पहुँचाते थे, लेकिन उसके बदले वे कुछ भी न माँगते थे। पर आज वह विश्वविद्यालयों में बन्द है। आज का प्रोफेसर गाँव-गाँव जाकर ज्ञान नहीं पहुँचाता। लड़कों को ही हर साल दो-तीन हजार रुपये खर्च कर शहर जाना पड़ता है। तब उन्हें ज्ञान मिल पाता है। पर सब लोग शहरों में, विश्वविद्यालयों में जा नहीं सकते और बिना पैसा दिये तो जा नहीं सकते। उन्हें ज्ञान की जरूरत तो रहती है, पर उनके पास उसे मुफ्त पहुँचाने का हमारे पास कोई इन्तजाम नहीं। अगर कोई बन्दोबस्त होता है, तो वह प्राइमरी स्कूल का ही होता है। देहाती लोगों के लिए विश्वविद्यालय की तालीम की जरूरत नहीं मानी जाती।

वास्तव में विश्वविद्यालयीय शिक्षण की सबसे ज्यादा जरूरत देहातियों को है; क्योंकि वहाँ देहाती जीवन के प्रयोग चलते हैं, खेती होती है। जिसे आप 'कच्चा माल' कहते हैं, सारा देहात में पैदा होता है। कुल उद्योग देहात के लोग ही कर सकते हैं। उन सब कामों पर ज्ञान के प्रकाश की सख्त जरूरत है। लेकिन उस प्रकाश को वहाँ पहुँचाने की हमारे पास कोई तरकीब नहीं। जैसे सूर्य-किरणें घर-घर पहुँचती हैं, वैसे ज्ञान भी घर-घर पहुँचना चाहिए।

एक तरफ विद्या के पहाड़ हैं, तो दूसरी तरफ अज्ञान के गड्ढे। पहाड़ों

पर पानी बरसता और बहकर गड्ढों में चला जाता है। फसल के लिए पहाड़ काम नहीं आते। गड्ढों में पानी गिरता और वे भर जाते हैं, इसलिए फसल नहीं होती, सड़ जाती है। कालेज में जो ज्ञान सीखेगा, वह काम नहीं सीख सकता, इसलिए उसका ज्ञान बेकार है। जो खेतों में काम करेगा, उसे ज्ञान न मिलेगा, इसलिए उसका काम भी बेकार है। न तो इसके ज्ञान में कोई ताकत पैदा होती है और न उसके काम में भी। वह ताकत पैदा करने का यही उपाय है कि ज्ञान विद्यालयों में और पुस्तकों में कैद न रहे।

प्रेम घरों में कैद

दूसरी बात प्रेम की थी। आज प्रेम बिलकुल घनीभूत हो गया है। लड़का, पत्नी, माँ, बाप में ही सारा प्रेम खत्म हो जाता है, वह बहता झरना नहीं रहा। अपने लड़के की सुंदर नाक देख मुझे बड़ी खुशी होती है, पर पड़ोसी के लड़के की उससे बेहतर नाक मुझे खटकती है। इसीका नाम है, प्रेम की सड़न! उसका बहाव बंद हो गया। जहाँ पानी का बहाव बंद हो जाता हैं, वहाँ वह इकट्ठा होकर सड़ने लग जाता है। आत्मा का अखंड प्रवाह है। क्या वह मुझमें और मेरे लड़के में कैद हो गयी है? ये सब-के-सब आत्मराशि मेरे सामने खड़े हैं, ये सभी मेरे ही रूप मेरे सामने खड़े हैं। लेकिन मैं उसे काटता हूँ, उसके दो टुकड़े करता हूँ। मेरे अड़ोसी-पड़ोसी मुझसे भिन्न हैं और मेरे घर के सभी मेरे हैं। घर में प्रेम का कानून काम करेगा, पर गाँव में स्पर्धा का। जो जितना कमायेगा, उतना खायेगा, यह कानून गाँव के लिए है और जो सब कमायें, वह इकट्ठा कर बाँट खायेंगे, यह घर का कानून है। मान लीजिये, गाँव के लिए यह कानून ठीक है। एक में कम योग्यता थी, इसलिए उसने कम कमाया और कम खाया। दूसरे में अधिक योग्यता होने से ज्यादा कमाया और ज्यादा खाया। हम तो इसे भी अत्यंत अन्याय समझते हैं, पर घड़ी भर मान लेते हैं कि यह न्याय है। इसी तरह खूब ज्ञानी को ज्यादा पैसा देना और खेत में मजदूरी करनेवालों को बारह आना देना, हम न्याय नहीं समझते; पर कुछ देर के लिए मान लेते हैं कि यह भी न्याय है।

लेकिन आगे पूछते हैं कि उन दोनों के लड़कों में विद्वान् के लड़के को अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा, अच्छी तालीम मिले और अज्ञानी मजदूर के लड़के को कम खाना, कम कपड़ा, कम तालीम, यह कहाँ का न्याय है ? दोनों के लड़के समान हैं, और दोनों कमानेवाले नहीं। पहला ज्ञानी नहीं और दूसरा अज्ञानी नहीं। अच्छी तालीम मिली, तो दोनों विद्वान् बनेंगे। दोनों को अच्छा खाना मिले, तो दोनों मजबूत बनेंगे। फिर बाप में फर्क होने के कारण बच्चों पर क्यों अन्याय किया जा रहा है ? आज के समाज के पास इसका जवाब क्या है। क्या इस तरह घर के लिए सीमित प्रेम का और समाज के लिए स्पर्धा का कानून नहीं बना लिया गया ?

घर का न्याय समाज में क्यों नहीं ?

कुछ बड़े लोग, बड़ी-बड़ी अक्लवाले व्याख्यान सुनाते हैं कि पहले उत्पादन बढ़ाना चाहिए और फिर बँटवारा करें। एक अक्लवाले ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'बाबा गरीबी बाँट रहा है—'डिस्ट्रीब्युशन ऑफ पॉवर्टी' कर रहा है। पहले खूब उत्पादन बढ़ाना चाहिए और फिर बँटवारा। लेकिन बाबा तो पहले से ही बाँटने की बात करता है। हम उनसे पूछते हैं कि अगर आपके घर में मनुष्य पाँच और खाना चार के लिए पर्याप्त है, तो क्या पहले चार पेटभर खा लेंगे और पाँचवे को कह देंगे कि उत्पादन बढ़ाने पर तुम्हें मिलेगा या पहले जो कुछ होगा, सब बाँटकर खा लेंगे, और फिर सब मिलकर उत्पादन बढ़ायेंगे ? स्पष्ट है कि घर का यही न्याय होगा कि आज की हालत में जो कुछ भी हो, सब बाँटकर खायेंगे, थोड़ा हो तो कम खायेंगे, और फिर सब मिलकर ज्यादा खाना पाने की कोशिश करेंगे। हम पूछते हैं कि अगर घर में ऐसा है, तो समाज में क्यों नहीं ? घर का और समाज का अलग-अलग न्याय क्यों ? हरएक मनुष्य कहता है कि इस दुःखमय संसार में घर में प्रेम है, इसलिए सुख है। फिर जब घर की छोटी-सी प्रयोगशाला में प्रेम का प्रयोग छोटे पैमाने पर सफल हो गया, तो उसे बड़े पैमाने पर क्यों नहीं करते ? अगर घर में एक-दूसरे को प्रेम करने और एक-दूसरे के लिए त्याग करने में तकलीफ हुई हो, तब तो उसे समाज

में लागू न करना चाहिए। लेकिन जब घर का प्रेम-प्रयोग यशस्वी हुआ है, तब उसे समाज में बड़े पैमाने पर लागू करना ही चाहिए। सारांश, हमने आज प्रेम को जाना है, पर उसे घर में कैद कर रखा है। उसका व्यापक प्रयोग नहीं करते, उसे बहने नहीं देते।

धर्म मंदिरों में कैद

तीसरी बात धर्म की है। धर्म भी हिन्दुस्तान के लोग पहचानते नहीं, सो नहीं। किन्तु उन्होंने उसे मंदिर की चहारदीवारों में कैद कर रखा है। व्यवहार में, बाजार में धर्म की कोई जरूरत नहीं। बाजार में खुलकर झूठ चलेगा।

कुछ लोग इधर बाबा को भूदान में जमीन दान में देते हैं, तो उधर अपने काश्तकारों को बेदखल करते हैं। यह देख हमारे कम्युनिस्ट भाई कहते हैं : 'बाबा, क्यों ठगे जा रहे हो ? ये लोग तो तुम्हें साफ ठग रहे हैं।' मैं उनसे यही कहता हूँ कि वे मुझे नहीं ठगते, अपने आप को ठग रहे हैं। वे जानते नहीं कि इसमें ढोंग हो रहा है। सोचते हैं कि बाबा जैसा एक सत्पुरुष दान माँगता और धर्म की बात बोलता है, तो दान देना हमारा धर्म है, लेकिन उधर व्यवहार में न मालूम सरकार क्या करेगी; इसलिए जमीन कब्जे में ले लेना ही अच्छा है। एक ही शख्स दोनों चीजें करता है। मनुष्य के हृदय में दोनों चीजें है। तुलसीदास ने गाया है : **'कुमति सुमति सबके उर बसई।'** कौरव-पांडवों का कुरुक्षेत्र हर हृदय में है। वहाँ सतत राम-रावण युद्ध चलता है। इसलिए उनका यह ढोंग है, ऐसा भी हम नहीं कहते। फिर भी उस धर्मबुद्धि का संबंध अपने बाजार, व्यवहार और जीवन के साथ है, यह बात उनके खयाल में नहीं रही। उनकी वह धर्मभावना मंदिर में ही प्रकट होती है। हमने धर्म-भावना को पहचाना है, लेकिन उसे मंदिर तक ही सीमित माना है।

बाजार का अधर्म मंदिरों में

इन तीन परम मित्रों को, जिनकी मदद हमारी उन्नति के लिए अत्यंत जरूरी है, हमने घर, युनिवर्सिटी और देवालय में कैद कर रखा है! इन्हें शीघ्र से शीघ्र खोल दें और समाज में लायें। समाज में ज्ञान आये और

घर-घर पहुँचे। प्रेम घर से बाहर निकलकर सारे समाज में व्याप्त हो तथा धर्म मंदिरों में से बाहर निकलकर बाजार तक, सर्वत्र फैले। यहाँ के एक महापुरुष ने गाया है कि 'परमेश्वर इस भूमि के साथ आकाश में फैला है।' हम उसे आकाश में देखना चाहते हैं, पर जमीन पर लाना नहीं चाहते। वह अगर जमीन पर आयेगा, तो हमें लगता है, तकलीफ होगी, वह आकाश में रहे या बहुत हुआ तो वैकुंठ-कैलास में जाय। धर्म को मंदिरों में से बाजार तक आने न दें, तो भी दोनों के बीच का व्यवहार टल नहीं सकता। व्यवहार में धर्म को जाने नहीं दिया, तो व्यवहार की बदमाशी मंदिरों में पहुँच गयी। मंदिर का धर्म बाजार में आने नहीं दिया, तो बाजार का अधर्म मंदिरों में पहुँच ही गया। बाजार ही मंदिरों में पैठ गया। वास्तव में धर्म को ही बाजार में जाना था। लेकिन वह वहाँ नहीं जा सका, तो मंदिरों में से भी उठ गया; क्योंकि वह कैद नहीं रह सकता। फिर उसे ढोंग और अधर्म का रूप आ गया। बाजार में खुला अधर्म है, तो मंदिरों में ढँका हुआ है, आज यही हालत हो गई है।

प्रेम का रूपांतर विषयासक्ति में

प्रेम की भी यही हालत हुई। प्रेम को घर में सीमित कर रखा, तो उसका रूपांतर विषयासक्ति में हो गया। शुद्ध कावेरी जल एक घड़े में रख दें तो उसमें जंतु पैदा हो जायँगे। इसी तरह बाहर प्रेम को फैलाने के बदले घर में सीमित कर दें, तो उसका रूपान्तर कामवासना, विषयोपभोग के बिलकुल हीन स्वरूप में हो ही जायगा। अगर वह बहता रहता, तो उसकी सुन्दर खुशबू और पुष्टि हमें मिलती।

विद्या भी अविद्या बन गयी

विद्या का भी यही हाल हुआ। हमने विद्या को कॉलेज और युनिवर्सिटी में कैद रखा, तो उसका रूपांतर अविद्या में हो गया। कहा जाने लगा कि 'मैं ऑक्सफर्ड का एम. ए. हूँ, इसलिये मुझे मद्रास एम. ए. से ज्यादा तनख्वाह मिलनी चाहिए।' इस तरह विद्या को अभिमान का भी स्वरूप आ गया। ज्ञान के साथ नम्रता होती है। ज्ञानी सबकी सेवा के लिए उत्सुक रहता है।

किंतु आज का ज्ञानी तो अभिमानी बन गया। ज्यादा पढ़े-लिखे लड़के की शादी के बाजार में ज्यादा कीमत होती है। वह ज्यादा दहेज माँगता है, जैसे ज्यादा खिलाये-पिलाये बैल की कीमत बाजार में ज्यादा होती है। यह आज की विद्या का नग्न रूप है!

रामकृष्ण परमहंस बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे तो न थे। एक बार उनके मन में आया कि थोड़ी विद्या आ जाय, वे देवी के बड़े भक्त थे। रात में उन्हें स्वप्न आया, देवी ने दर्शन देकर उनकी इच्छा पूछी, तो उन्होंने विद्या की माँग की। देवी ने सामने पड़े कचरे के ढेर में से विद्या ले लेने को कहा। रामकृष्ण समझ गये और उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा : 'मुझे ऐसी विद्या नहीं चाहिए।'

आस्तिकों के ढोंग से नास्तिकता का विस्तार

इस तरह विद्या, प्रेम और धर्म को हमने कैद किया तो विद्या अविद्या बन गयी, प्रेम कामासक्ति और धर्म ढोंग बन गया। परिणामस्वरूप लोग कहने लगे कि 'ऐसे आस्तिक बनने से हम नास्तिक बनना ही ज्यादा पसंद करेंगे।' उनके खिलाफ आस्तिक कहते हैं : 'सारे नास्तिक बन गये!', पर नास्तिक कौन है, जरा देख तो ले! आइने में देखा कि नाक गंदी है, तो कहने लगे कि आइना ही गंदा है। नास्तिक वह नहीं है, तू है। तू भक्ति का और आस्तिकता का ढोंग करता है, इसीलिए नास्तिकता फैली है।

भूदान से प्रेम, ज्ञान और धर्म फैलेगा

भूदान में हम चाहते हैं कि विद्या सबको मिले। सबको जमीन मिलेगी, तो उन्हें विद्या की भी सहूलियत होगी। हम समझते हैं कि इस आंदोलन से प्रेम भी फैलेगा। प्रेम से आप जमीन देंगे, तो भूमिहीन और आपके बीच प्रेम की गाँठ बँध जायगी। हम अपेक्षा करते हैं कि भूदान-आंदोलन से धर्म भी व्यापक बनेगा। आप सभी अपने-अपने गाँव के दुःखी और भूखों की चिंता करना अपना कर्तव्य समझें, उन्हें मदद दें, धर्म सहज ही व्यापक हो जायगा।

तुक्कनायकन् पालेयम् (कोयम्बतूर)
१-९-'५६

धर्म-साहित्य का समाज पर असर नहीं

हिन्दुस्तान की सभी भाषाओं में धर्म की पुस्तकें हैं। मेरा खयाल है कि संस्कृत को छोड़ तमिल में शायद हिन्दुस्तान की सब भाषाओं से ज्यादे धर्म-ग्रंथ होंगे दूसरी भापओं में भी धर्म-साहित्य की कमी नहीं, उनमें भी काफी धर्मग्रंथ हैं। किन्तु इनका सब लोगों के जीवन पर उतना असर नहीं दीखता। जगह-जगह मन्दिर, मस्जिद और चर्च हैं, सब जगह प्रार्थनाएँ भी चलती हैं, आरती-भजन आदि होते हैं और धर्म-ग्रन्थ भी पढ़े जाते हैं, लेकिन इन सबका जीवन पर बहुत ज्यादा असर नहीं है। धर्मग्रंथ सत्य बोलने पर बहुत जोर देते हैं, लेकिन कहना पड़ता है कि केवल सत्य ही बोलने वाला मनुष्य इस दुनिया में दुर्लभ हो गया है। कोर्ट में झूठ की तालीम दी जाती है। बाजार में झूठ के सिवा नहीं चलता। राजनीति की चर्चा में बात-बात में झूठ होता ही है। साहित्य में लोग 'अतिशयोक्ति' और 'वक्रोक्ति' को 'अलंकार' ही समझते हैं। इस तरह बाजार, व्यापार, व्यवहार, कोर्ट, साहित्य और राजनीति आदि सब क्षेत्रों में असत्य की प्रतिष्ठा जारी है। हमारे साहित्य में दान की बात भी खूब चलती है, करुणा पर भी जोर दिया जाता है, लेकिन सारी समाज-व्यवस्था निष्ठुर बनायी गयी है। हमें पड़ोसी के दुःख का स्पर्श ही नहीं होता, बल्कि उसे दुःखी देखकर भी हम सुखी बनना चाहते हैं।

अब इन धर्मग्रंथों का हमारे जीवन पर असर क्यों नहीं? यह सोचिये। जो लोग झूठ बोलते हैं, धर्मग्रंथ भी पढ़ते हैं, क्या वे ढोंगी हैं? कुछ लोग ढोंगी हो सकते हैं परंतु सभी ढोंगी नहीं। वे धर्मग्रंथ पढ़ते हैं, तो श्रद्धा से पढ़ते हैं। वे व्यवहार में निष्ठुर बनते हैं, असत्य का भी उपयोग करते हैं तो वह भी एक आवश्यकता समझकर करते हैं। फिर यह कैसे हो रहा है? इसे हमने बहुत बारीकी से देखा है, उसका हमने बहुत चिंतन किया है।

धर्मग्रन्थ परलोक के लिए

कुछ लोगों ने अपने मन में यह मान लिया है कि इन धर्मग्रन्थों का उपयोग जरूर है, परन्तु वह परलोक प्राप्ति के लिए है, इस लोक में उनका विशेष उपयोग नहीं। कई पुस्तकों में इस तरह के वाक्य भी मिलते हैं। 'कुरल' में भी इस आशय का वाक्य मिलता है : 'जैसे परलोक के लिए भगवत्कृपा चाहिए। वैसे ही इहलोक के लिए अर्थ।' 'कुरल' में दूसरे प्रकार के वाक्य भी हैं, जिनमें यह बताया गया है कि 'इस लोक में भी प्रेम की जरूरत है और परलोक में भी।' अपने मन में लोगों ने इस तरह बँटवारा कर लिया है कि इस दुनिया के अर्थप्राप्ति के नियमों के मुताबिक काम कर अर्थ की प्राप्ति करेंगे। फिर कोई विशेष मौके पर थोड़ा दान और जप कर लेंगे, तो परलोक की सिद्धि के लिए उतना काफी होगा। वह रोज के काम की चीज नहीं, क्योंकि रोज के काम में तो इस दुनिया से सम्बन्ध आता है। फिर भी सत्य, प्रेम आदि गुणों की परलोक प्राप्ति के लिए जरूरत अवश्य है। सारांश इस तरह इहलोक और परलोक में विरोध और भेद मान लिया गया। उस हालत में लोग कोशिश करते हैं कि इहलोक भी सधे और थोड़ा परलोक भी सधे। ये लोग हमेशा निष्ठुर होते हैं, ऐसा भी नहीं। कभी-कभी थोड़ी दया भी कर लेते हैं, तो उनका परलोक सुरक्षित हो जाता है। और बाकी का व्यवहार चलता ही है। हम लोगों के बीच यह भी एक बड़ी भारी गलतफहमी है कि हमारे धर्मग्रंथ परलोक के काम के हैं, इहलोक के काम के नहीं हैं।

धर्म व्यक्ति के काम का है, समाज के नहीं

दूसरे कुछ लोग कहते है कि ये धर्मग्रंथ परलोक के ही काम के हैं, ऐसा नहीं; इहलोक के भी काम के हैं। किन्तु इहलोक में व्यक्ति के काम के हैं, समाज के काम के नहीं। अपनी व्यक्तिगत चित्तशुद्धि, व्यक्तिगत उन्नति के लिए उनका उपयोग है, परन्तु उनसे समाज-रक्षा नहीं हो सकती। आज सब धर्मों की यही अवस्था है। ईसाई धर्म में ईसा ने अहिंसा का अत्यधिक उपदेश दिया है। वे प्रेम और अहिंसा के लिए किसी प्रकार का अपवाद

कबूल नहीं करते। लेकिन उन्हींके अनुयायी आज शस्त्रास्त्र बढ़ा रहे हैं। गत दो महायुद्ध उन्हींके अनुयायियों के बीच आपस में हुए। वे चर्च में जाते और ईसा पर श्रद्धा भी रखते हैं। लेकिन साथ ही लड़ाइयों में हिंसा भी करते और समझते हैं कि समाज को यह करना ही पड़ता है, इसलिए ईसा प्रभु हमें क्षमा कर देंगे। वे समझते हैं कि समाज हमेशा ऐसा ही रहेगा। चाहे थोड़ा-बहुत फर्क होता रहे, परन्तु समाज में दुर्जन हमेशा रहेंगे और उन्हें दण्ड देना ही पड़ेगा। उनके लिए ईसा मसीह के धर्मग्रंथों का उपदेश काम आयेगा।

धर्मग्रंथ आदर्श समाज के काम के

तीसरा भी एक विचार है। वे कहते हैं कि अहिंसा, प्रेम, करुणा आदि की शिक्षा केवल व्यक्ति के काम की ही है और समाज के काम की नहीं, ऐसा नहीं। वह समाज के काम की भी है, परन्तु आज के समाज के लिए वह काम न देगी। जब हम दुनिया में ऐसी व्यवस्था कर लेंगे कि समाज से दुर्जनता सदा मिट या दबकर लोग शिक्षित हो जायँगे, तभी धार्मिक शिक्षा उसके काम आयेगी। आदर्श समाज में सत्य, प्रेम और करुणा टिक सकती है, परन्तु वह आदर्श समाज है नहीं। इसलिए आज की हालत में यह नियम काम देगा, इसमें अपवाद निकालने पड़ेंगे। आदर्श समाज होने के बाद ही वह पूरी तरह लागू हो सकेगा। वैसा आदर्श समाज बनाने के लिए दुर्जनों का दमन करना ही पड़ेगा।

तीनों भ्रमों का निरसन आवश्यक

इस तरह लोगों के तीन विचार हैं। यही कारण है कि करुणा की कीमत पहचानते हुए भी और सत्य पर श्रद्धा रखते हुए और उनकी कीमत पहचानते हुए भी लोगों को उनपर अमल करने में हिचक है। पहला पक्ष धर्म को परलोक-साधन मानता है, दूसरा उसे व्यक्ति तक सीमित रखता और तीसरा उसे समाज के लिए उपयोगी मानता हुआ भी भविष्य के समाज के लिए उपयोगी समझता है। हमें इन सभी भ्रमों का निरसन करना होगा। तभी जो मनुष्य के

हृदय मेंछुपे सत्यनिष्ठा, प्रेम आदि गुण, जिनका धर्म-ग्रंथों में बड़ा गौरव गान गाया गया है, काम में आयेंगे।

भूदान से दोनों लोकों में लाभ

तमिलनाड में भूदान का एक तमिल-गीत गाया जाता है, जिसे बहुत अच्छे कवि ने लिखा है। उसमें कहा गया है कि 'हमारे गरीब भाइयों को जमीन देना पुण्य में श्रेष्ठ पुण्य है।' लोग इसका अर्थ क्या समझते होंगे, मालूम नहीं। शायद यह समझते हों कि 'अगर हम भूदान करेंगे, तो स्वर्ग में हमारी जगह सुरक्षित होगी, इसलिए थोड़ा देना चाहिए। पर इहलोक में तकलीफ न हो, ऐसे हिसाब से दें। इससे बहुत बड़ा पुण्य होगा।' पर मैं ऐसा वादा नहीं करता कि भूदान करने से आपको मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा। बल्कि मैं यही समझाऊँगा कि भूदान इसी जिन्दगी को सुधारने के लिए है। हम कबूल करते हैं कि जैसे अच्छे काम का फल इस दुनिया में मिलता है, वैसे परलोक में भी मिलता है। हमारा परलोक पर विश्वास है, परन्तु साथ ही इहलोक पर भी। हम दोनों को एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं मानते। हम मानते हैं कि जिस सत्कार्य से इस जिन्दगी में सुधार होगा, आनंद मिलेगा, उसी से परलोक में भी लाभ होगा। भूमिमालिकों से हम भूमि माँगते हैं, तो वह केवल भूमिहीनों को सुख दिलाने के लिए नहीं, बल्कि भूमिमालिकों को भी सुख पहुँचाने के लिए माँगते हैं। उन्हें परलोक में ही नहीं, इस जिन्दगी में भी सुख मिलेगा। उसे श्रेय और प्रेम दोनो मिलेंगे, जो अपनी जमीन का एक हिस्सा भूमिहीनों को बाँट देंगे। माँ बच्चे के लिए त्याग करती है, तो यह समझकर नहीं कि पर-लोक में इसका फल मिलेगा। उससे इहलोक में ही उसके दिल को तसल्ली होती है, आनन्द होता है। अगर हम करुणा का आश्रय लें, तो हम और हमारा समाज दोनों सुखी होंगे। परलोक में तो सुखी होंगे ही; इस जिन्दगी में भी हमारा समाधान होगा। जिन गरीबों की मदद करेंगे, उनका समाधान तो होगा ही, साथ ही सारे समाज का भी समाधान होगा। इससे इहलोक, परलोक कुल-का-कुल सधता है।

परलोक इहलोक का विस्तार

ये सारे विभाग केवल कल्पना से अलग-अलग किये हुए हैं। वास्तव में वे अलग हैं ही नहीं। जब हम एक जिले से दूसरे जिले में प्रवेश करते हैं, तो वहाँ बड़ा तमाशा होता है। रास्ते पर वंदनवार लगाते हैं, चंद लोग खड़े रहते हैं और कहते हैं कि 'बाबा का एक जिले में से दूसरे जिले में प्रवेश हो रहा है।' अब वहाँ जमीन तो वही जारी रहती है। जहाँ जायँ, वहाँ वैसी ही जमीन है। लेकिन आपने एक जगह तय की, तो जिला वहाँ खतम न होगा। अगर आपने दस फुट आगे तय किया होता, तो जिला दस फुट और आगे बढ़ सकता। इस तरह व्यक्ति, समाज, इहलोक, परलोक ये सारे विभाग हम लोगों ने ही किये हैं। बच्चे हमारा ही विस्तार हैं, वे हम ही हैं। इसी तरह समाज भी हमारा अपना ही रूप है। जिसे हम परलोक कहते हैं, वह भी इहलोक का विस्तार मात्र है। वह हमारा आगे का, मरने के बाद का जीवन है। जैसे इस साल और अगले साल का हमारा जीवन एक ही जीवन है, हमारे बचपन का और बुढ़ापे का जीवन हमारा अपना ही जीवन है, वैसे ही मरने के बाद भी जो जीवन होगा, वह भी हमारा ही जीवन रहेगा। परलोक 'एक्स्टेन्शन सर्विस' है—वह इहलोक का विस्तारमात्र है।

भेद काल्पनिक

यहाँ जब हम मैट्रिक की परीक्षा पास कर लेंगे, तभी परलोक में कालेज में जा सकते हैं। वह इसके आगे की बात है। यह नहीं हो सकता कि मैट्रिक फेल कॉलेज के लायक माना जाय। मैट्रिक होने का कॉलेज के साथ विरोध नहीं। इस लोक में शांति प्राप्त करना और सुन्दर सामाजिक रचना करना ही परलोक-साधन है। इसलिए ये 'मैं', 'मेरा समाज', 'इहलोक', 'परलोक' ये सब भेद काल्पनिक समझ लें। सब मिलकर जीवन एक है, जो चीज व्यक्ति के काम में आती है, वह समाज के भी काम में। जो चीज इहलोक में काम आती है, वही परलोक में भी।

धर्म हमारा चतुर्विध सखा

जब हमें यह निश्चय हो जायगा कि धर्म हमारा व्यक्तिगत, सामाजिक, ऐहिक और पारलौकिक सखा है, तब आज की अवस्था न रहेगी। अभी तक समाज में अहिंसा, सत्य आदि सद्गुणों के विषय में इस प्रकार की निष्ठा नहीं बनी है। हमें यह श्रद्धा निर्माण करनी है। वह केवल व्याख्यान से न होगा। व्याख्यान देना होगा और आचरण से भी समझाना होगा।

भूदान से धर्म-स्थापना

भूदान इसी दिशा में छोटा-सा प्रयत्न है। उसमें कितने ही लोगों ने बहुत त्याग किया है। आज ही अखबार में नवबाबू (उड़ीसा के मुख्यमंत्री) का एक व्याख्यान पढ़ा। उन्होंने कहा है कि '१९२१ और १९३० में जितने उत्साह से हमने त्याग किया था, वह आज भी हममें मौजूद है। जब टाल्स्टाय ने आखिर के दिनों में घर छोड़कर श्रम करने का निश्चय किया, तो हम भी इतनी बड़ी उम्र में त्याग कर सकते हैं।' आप सब देखते हैं कि बाबा रोज दो-दो पड़ाव घूमता है, बहुत मेहनत उठाता है। लेकिन बाबा से भी दस-बारह साल बड़े गुजरात के रविशंकर महाराज दो-दो दफा घूम रहे हैं। इस तरह भूदान में अनेक लोगों ने अपने जीवन का सर्वस्व अर्पण किया है। वे रोजमर्रा कुछ-न-कुछ तपस्या कर ही रहे हैं। सच्चे अर्थ में धर्म की स्थापना हो, इसके लिए यह छोटा-सा प्रयत्न चल रहा है। अभी तक धर्म की पूरी स्थापना नहीं हुई। वह तभी होगी, जब बतायी हुई उपर्युक्त श्रद्धा लोगों में निर्माण हो। 'धर्म मेरा व्यक्तिगत सखा है, सारे समाज का सखा है, इस दुनिया के जीवन का सखा है और परलोक के लिए भी सखा है।' इस प्रकार का चतुर्विध निश्चय होने पर ही हर कोई धर्म पर अमल करेगा।

नाक्का नायकन् पालेयम्
३-९-'५६.

मंदिरों को जमीन देना अधम

मंदिरों के लिये हमारे मन में बहुत आदर है। मूर्ति में भी हमारी श्रद्धा है—और मूर्ति के बाहर भी। हम ईश्वर को सीमित नहीं समझते। वह मूर्तियों में और प्राणियों में भी है। प्राणियों में वह अधिक प्रकटरूप में है। चेतन में भगवान् का रूप अधिक प्रकट है और जड़ में कम। सत्पुरुष में भगवान् का रूप अत्यन्त प्रकट है। जिसमें भगवान् का रूप अधिक प्रकट हो, उसकी भक्ति होनी चाहिए। इसलिए सत्पुरुषों की सेवा सर्वोत्तम भक्ति है। नंबर दो की भक्ति है, प्राणियों की सेवा और नंबर तीन में जड़ वस्तुओं की आराधना आती है।

मंदिरों के जरिए शोषण

एक जमाना था, जब हिन्दुस्तान में जमीन काफी और जनसंख्या बहुत कम थी। लोगों के पास बहुत-से धंधे थे। शंकर, रामानुज जैसे धर्म-कार्य करने वालों ने मठ और मंदिर बनाये और उनके इर्द-गिर्द धर्मकार्य चलता था। लोगों को तालीम, दवा आदि का इन्तजाम मंदिरों के जरिये होता था। वहाँ धर्मशास्त्र पढ़े जाते थे। इसलिए लोगों ने मंदिरों को जमीन दी। लोगों के पास अच्छी जमीन थी, जिसकी फसल का एक हिस्सा वे मंदिरों को देते थे। किन्तु मंदिरों को जमीन देकर उन्होंने धर्म-कार्य चलाए रहने की योजना भी बना दी। उस जमाने में वह धर्म था। लेकिन आज हालत बदल गयी है। जमीन कम है और जनसंख्या बढ़ रही है, धंधे टूट गये हैं और मंदिरों के जरिए बहुत ज्यादा धर्म-प्रचार नहीं होता है। यह सब देखते हुए, मंदिरों के पास जमीन रहने का अर्थ क्या है? मंदिरवाला खुद तो उसकी काश्त नहीं करता, दूसरों से करवाता है, जिनके पास कोई धंधे नहीं और उनका सारा आधार जमीन हो। याने मंदिरवाले मुनाफा लेते हैं। हमने देखा है कि मंदिर के मालिक जितने निष्ठुर होते हैं, उतने शायद स्वतंत्र मालिक नहीं। मंदिरवाले नफा बराबर चूस लेते और कहते हैं कि यह हमारा धर्म-काय है, इसलिए तुम्हें इतना

देना ही पड़ेगा। इसकी उत्तम मिसाल जगन्नाथपुरी का जगन्नाथ का मंदिर है। मंदिर के आस-पास की हजारों एकड़ जमीन मंदिर की है। आस-पास कुल गरीब लोग रहते हैं, सब-के-सब मंदिर के नाम गालियाँ देते हैं। क्योंकि वे उस जमीन में मजदूर बनकर काश्त करते है, लेकिन पूरा खाना नहीं मिलता। इसलिए आजकी हालत में मंदिरों के हाथों में जमीन देने का अर्थ है, उन्हें शोषण का साधन देना।

धर्म-संस्थाओं के स्थायी आय-साधन न हों

हमारी राय में ऐसी पारमार्थिक संस्थाओं की स्थायी आय न होनी चाहिए, क्योंकि उससे लोग धर्मभ्रष्ट हो जाते हैं। एक राजा अच्छा निकला, तो उसका बेटा भी अच्छा निकलेगा, ऐसा नहीं। रामानुज ने मंदिर बनाया, तो उसका शिष्य भी अच्छा निकलेगा, इसका निश्चय नहीं। इसलिए वे जो धर्म-कार्य करते हैं, उसे अच्छा मानने पर ही लोग उन्हें मदद दें। अच्छा काम करते रहेंगे, तो लोगों की उनपर सदा श्रद्धा रहेगी। फिर भी उन्हें स्थायी आय का साधन देना उन्हें आलसी बनाना है। उससे लोगों का शोषण भी होता है। इसलिए आज की हालत में मंदिरों को इनाम के तौर पर जमीन देना गलत है। कुछ लोग स्कूल के लिए जमीन देते हैं। उसमें भी मकान बनाने के लिए जमीन देना ठीक है, पर जमीन की आमदनी पर स्कूल चले, यह गलत है। अगर शिक्षक और विद्यार्थी मिलकर उस जमीन की काश्त करें, तो स्कूल को जमीन देना भी उचित माना जायगा। तब तो खेती भी तालीम का एक हिस्सा बन जायगी। उससे विद्या बढ़ेगी और श्रमनिष्ठा भी। इसलिए हम उसे पसंद करते हैं। किंतु मजदूरों से काश्त करवाई जाय और उसके मुनाफे पर स्कूल चले, तो वह शोषण ही है।

मैं नास्तिक नहीं, पूरा आस्तिक

इसीलिए हमने कहा था कि इन दिनों मंदिरों के पास जमीन रहती है, तो उसमें आज हम धर्म नहीं, अधर्म देखते हैं। हमारा दावा है कि हमने बड़ी श्रद्धा से धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया है। जैसे कोई नास्तिक बोलता है, वैसे

हम नहीं बोल रहे हैं। हम पढ़ते तो हैं ऋग्वेद और तिरुवांचकम् पर चिदंबरम् के मंदिर को जमीन देने के लिए राजी नहीं। हम शिव के उपासक हैं, पर शिवमंदिर को जमीन देने के लिए राजी नहीं। अगर मंदिर का पुजारी कहे कि 'पूजा में मेरे सिर्फ दो घंटे जाते हैं, इसलिए मैं काश्त करूँगा', तो जैसे हम भूमिहीनों को जमीन देते हैं, वैसे उसे भी पाँच एकड़ देंगे। किंतु मंदिर को जमीन देने का यह अर्थ नहीं है। उसका अर्थ यही है कि मंदिर के लिए स्थायी आयु हो। फिर उससे वहाँ पूजा, ब्राह्मण-भोजन आदि कराया जाय। हम कहते हैं कि आपकी मंदिर में श्रद्धा है, तो उसे हमेशा कुछ दान देते रहें। वह अच्छा काम करेगा, तबतक देते रहेंगे और न करेगा, तो रोक देंगे। इससे मंदिरवाले जाग्रत रहेंगे। ईसाइयों के चर्च चलते हैं, उनके पास जमीन नहीं रहती। लोग उन्हें मदद देते हैं, पर तभी तक, जबतक कि वे अच्छा काम करते रहते हैं।

उत्पादन का साधन उत्पादक के हाथ में

जमीन उत्पादन का साधन है। देश की कुल ताकत जमीन पर निर्भर है। आज देश में जमीन थोड़ी है, इसलिए वह ऐसे लोगों को ही देनी चाहिए, जो खुद काश्त करें। मान लीजिये कि हम एक आश्रम खोलना चाहते हैं और आप उसे मदद देना। अगर आप कहें कि हम ५०० एकड़ जमीन देते हैं, तो हम कहेंगे : इतनी नहीं चाहिए। मकान बनाने के लिए आधा एकड़ काफी है। वहाँ हमें अध्ययन-अध्यापन करना है। आपकी उसमें श्रद्धा है, तो सतत मदद देते रहिए। आप हमें अनाज दे सकते हैं, आपके घर में गाय है, तो दूध दे सकते हैं। पर जमीन क्यों नहीं देते है? क्या हम आपकी ५०० एकड़ जमीन लेकर, मजदूरों को चूसकर आश्रम चलायें? फिर तो हमारा जमींदारों का-सा पापी जीवन बन जायगा। इसलिए आज की हालत में मंदिरों को जमीन देना मंदिरवालों को भ्रष्ट करना और भूमिहीनों का शोषण करना है।

गोबी चेट्टी पालेयम्

४-६-'५६

अभी आप लोगों ने यहाँ एक प्रतिज्ञापत्र सुना। उसमें ग्रामवालों ने गाँव की तरफ से एक संकल्प जाहिर किया है। उसमें यह था कि 'हमारे गाँव में बाहर से कोई कपड़ा न आयेगा। अपने गाँव में ही कते सूत का कपड़ा पहनेंगे। इसी तरह गाँव में दूसरे उद्योग भी खड़े किये जायेंगे। जमीन भी सबको मिलेगी। "जीवन की तालीम" भी गाँव में देंगे।' उसमें यह भी जाहिर किया गया है कि 'हम सभी गाँव में मिलजुलकर काम करेंगे, छूत-अछूत भेद न मानेंगे।' आखिर में यह भी कहा गया है कि 'हम सारे मिलजुलकर एक परिवार के जैसे रहेंगे।' याने इस काम में एक 'प्रेम-संकल्प' किया गया। इसी तरह एक 'संघर्ष-संकल्प' भी इसमें है। संकल्प के अंदर दोनों निहित हैं। जहाँ आप रामजी का नाम लेते हैं, वहाँ राक्षसों के खिलाफ खड़े होने का संकल्प उसीमें आ ही जाता है। जहाँ आप जाहिर करते हैं कि आप 'राजाराम' को मानते हैं, वहीं हम दूसरे राजा को न मानेंगे, यह स्पष्ट है।

इसमें 'संघर्ष' कैसे ?

आखिर इसमें संघर्ष क्या होगा ? हम चाहते हैं कि हमारे गाँव का इन्तजाम हम करेंगे, लेकिन दूसरे लोग कह रहे हैं कि तुम्हारे गाँव का इन्तजाम हम करेंगे। दुनिया में ऐसे भी लोग हैं, जो समझते हैं कि 'दुनिया का इन्तजाम करने की जिम्मेवारी हम ही पर है। आपके गाँव में तालीम कौन-सी भाषा में दी जायगी, कौन-सा कपड़ा आयेगा ? आपकी विरासत में किस प्रकार के हक होंगे ? यह सब हम तय करेंगे।' याने जीवन के जितने अंग हैं, सबमें हम आज्ञा देंगे और आपको उसी मुताबिक चलना होगा। जो पाठ्य ग्रन्थ हम निर्धारित करेंगे, वही यहाँ के कुल बच्चों को पढ़ना होगा। उसका अच्छी तरह अध्ययन करें, उसी की परीक्षा देनी होगी। इस पर यदि आप कहेंगे कि नहीं, हम तो अपनी मर्जी की किताब लेंगे और पढ़ेंगे, तो बस, संघर्ष आ गया। आप कहेंगे कि हम स्कूल चलायेंगे, तो वे कहेंगे : 'नहीं चला सकते।' फिर भी आप चलायेंगे,

तो वे कहेंगे : 'चलाओ भाई, लेकिन हम मदद न देंगे।' अगर आप चाहते हैं कि मदद मिले, तो उनकी बात मानिये। इसीलिए मैंने कहा कि इसमें संघर्ष आता है।

सारांश, तुम कहते हो, 'अपने गाँव का इन्तजाम हम करेंगे' और वे कहते हैं, 'तुम्हारे गाँव का इन्तजाम हम करेंगे', तो संघर्ष आ ही जाता है। किन्तु तुम अपने घर का इन्तजाम करते हो, तो दूसरा नहीं कहता कि 'मैं तुम्हारे घर का इन्तजाम करूँगा', इसलिए वहाँ संघर्ष नहीं आता। इसलिए घर में आपका 'प्रेम-संकल्प' होता है। किन्तु जहाँ गाँव की बात आती है, वहाँ प्रेम-संकल्प के साथ 'संघर्ष-संकल्प' भी आ जाता है। हम कहते हैं, 'तिरुवाचकम् पढ़ेंगे।' वे कहते हैं, 'नहीं दूसरा वाचकम् पढ़ो।' पर हम पढ़ न पा सकेंगे, इसलिए संघर्ष आ ही जाता है।

बारिश आ रही है और वह हमारी इस बात की सम्मति दे रही है। हम चाहते हैं कि आपका प्रेम और संघर्ष का संकल्प मजबूत बने। आपका गाँव एकरस बने और यहाँ 'ग्राम राज्य' निर्माण हो।

पुडुकडवुर
११–६–'५६.

द्विविध कार्य : मन को सुधारना और मन से ऊपर उठना : ४२ :

अहिंसा का कछुवा और हिंसा का खरगोश

हम अपने देश की समस्याएँ हाथ में लें और यह सिद्ध कर दिखायें कि उनका हल शांति, अहिंसा और प्रेम से हो सकता है। अहिंसा वही कछुआ है, जो आहिस्ता-आहिस्ता चल रहा है और हिंसा वह खरगोश है, जो जोरों के साथ आगे बढ़ रहा है। लोग कहते हैं : 'स्वेज का प्रश्न उठा है; शायद लड़ाई हो, तो आपकी अहिंसा क्या करेगी?' हम कहते हैं : 'अहिंसा हम सबकी है। परन्तु जब वह हमारे जीवन में प्रकट होगी, तभी उसका असर होगा। इसलिए

हमें इसका कोई डर नहीं कि दुनिया जोरों से हिंसा और महायुद्ध की ओर जा रही है। हमने बहुत बार कहा है कि महायुद्ध होनेवाला है, तो होने दो। जितने जोरों से हिंसा आयेगी, उतने ही जोर से दुनिया में अहिंसा की ताकत आयेगी। फिर वह खरगोश आँखें खोल कर देखेगा कि यह कछुआ मुकाम पर पहुँच गया। इसलिए अपना यह काम कितना भी धीरे-धीरे चलता दीखता हो, उसकी विशेष कीमत है। कोई पराक्रमी पुरुष सारे गाँव को आग लगा दे और ५ मिनट में गाँव खाक हो जाय तथा दूसरा २५ दिनों में गाँव बनाये, तो ५ मिनट में गाँव खतम करनेवाले के पराक्रम की कोई कीमत नहीं।

मनुष्य का मन बदलता है

इसलिए भूदान की तरफ देखने की आपकी दृष्टि ऐसी हो कि यह शांति और अहिंसा का कछुआ चल रहा है। जब लोगों का मन बदलेगा, तभी इसमें वेग आयेगा। लेकिन मन बदलने की बात आती है, तो लोगों की कमर ही टूटती है। कहते हैं कि 'मनुष्य का मन जैसा है, वैसा ही रहेगा, वह बदल नहीं सकता।' पर यह खयाल गलत है। मनुष्य का मन बदलता है और सतत् बदलता है। एक लाख साल पहले जो मनुष्य का मन था, वह आज नहीं रहा। विज्ञान के जमाने में मनुष्य-मन बड़ी तीव्र गति से बदल रहा है। हमने यह भी देखा कि बैलों या गदहों के मन में लाख साल में कोई बदल नहीं हुआ। क्या कभी बैलों और गधों का भी इतिहास लिखा गया? पुराने जमाने के और आज के बैलों की सभ्यता में कोई फर्क नहीं। मनुष्य की विशेषता इसी में है कि उसका मन बदलता आया है और आगे भी बदलेगा। हम एक और विशेष बात मानते हैं कि इसके आगे वही मनुष्य और वही समाज टिकेगा जो न केवल मन बदलेगा, वरन् मन से भी ऊपर उठेगा।

द्विविध कार्य

मन में फर्क किये बिना समाज ऊपर न ऊठेगा और मन से ऊपर उठे बगैर उसे दिशा मालूम न होगी। इसलिए हमें मन को सुधारना होगा और उससे ऊपर भी उठना होगा। अपना रद्दी घर सुधारना होगा और घर के

बाहर सोने का अभ्यास करना होगा या घर सुधारना होगा और बाहर भी देखना होगा। आखिर ऐसा क्यों ? बाहर आना है, विचारशुद्धि के लिए और घर सुधारना है, विचार पर अमल करने के लिए। बाहर आये बिना नक्षत्रों का दर्शन न होगा। आज का मानव-मन बिगड़ा हुआ है। इसलिए मनुष्य को इन दो बातों की शिक्षा मिलनी चाहिए। उसके बिना मनुष्य के सामने की आध्यात्मिक और सामाजिक समस्याएँ हल न होंगी।

अविनाशी (कोयम्बतूर)
१६-६-'५६

भूदान 'सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य' क्यों ? : ४३ :

अभी बच्चों ने उद्घोष किया कि 'भूमिदान सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।' आखिर क्यों ? किसी भूखे को हमने भोजन दिया, तो उसे एक बड़ा पुण्य मानते हैं। किंतु उसे आज खिलाया, तो आज की भूख मिट गयी, पर कल क्या करेगा ? लेकिन भूमिदान ऐसा दान नहीं है। वह कायम रहने का दान है। भूमि देना कायम रहने के लिए आजीविका का साधन देना है। इससे उसे बार-बार माँगना न पड़ेगा। यह ठीक है कि जमीन के साथ बीज, बैल-जोड़ी भी देनी पड़ेगी। लेकिन एक बार इतना कर लिया, तो मनुष्य अपने पाँव पर खड़ा हो सकता है। उसे फिर माँगने का मौका नहीं आता। इसलिए वह बड़ा और श्रेष्ठ दान माना जाता है।

लेनेवाला आलसी न बनेगा

दूसरी बात यह है कि अगर हम लोगों को मुफ्त खिलायेंगे, तो वे आलसी बनेंगे। इसमें किसी का भला नहीं। यह ठीक है कि आज खूब भूख लगी है और साधन भी कुछ नहीं है, तो एक दिन खिला दिया। किंतु ऐसी कायम रहने की योजना बना दें, उसे मालिक बना दें, तो भूदान ने मालकियत के लिए गुंजाइश ही नहीं रखी है। हमने किसी को ५ एकड़ जमीन दी, तो वह

मिट्टी तो खायेगा नहीं। बारिश पड़ेगी, फिर भी अगर उसमें वह बीज न बोये तो घास ही उगेगी। घास वह खा नहीं सकता। खाने लायक फसल तभी उगेगी, जब अपनी मिट्टी में वह अपना पसीना डालेगा। इसलिए इस दान से लेनेवाला आलसी नहीं बन सकता। उसकी उन्नति ही होती है। इसीलिए यह दान सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

जमीन का दुरुपयोग संभव नहीं

तीसरा बात यह है कि हम अगर किसी को दो पैसे दे देते हैं, तो वह उसका दुरुपयोग भी कर सकता है। पर वह जमीन का दुरुपयोग भी क्या करेगा? हाँ, जमीन में तम्बाकू बो सकता है। किंतु दान देते समय हम ही उसे कह देंगे कि इस जमीन में तम्बाकू न बोओ। इस तरह से जमीन का दुरुपयोग भी टलेगा। इसलिए भी यह सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

देने और लेनेवाले दीन-घमंडी नहीं बनते

जब कोई दाता किसी को दान देता है, तो उसके चित्त में यह अहंकार आ सकता है कि 'मैंने दान दिया।' इसके विपरीत लेनेवाले में दीनता आ सकती है। पर भूदान में गरीब का हक समझकर उसे जमीन दी जाती है। बाप अपने बेटे को एक हिस्सा जमीन दे, तो क्या उसे उससे घमंड होगा? बाप समझता है कि बेटे का वह अधिकार है, इसलिए उसे दातृत्व का अहंकार नहीं हो सकता। इसी तरह भूदान में गरीब का हक समझकर भूमि दी जाती है। जो खुद काश्त नहीं करते, उनका धर्म है कि वे भूमिहीनों को भूमि दें। जो पढ़ना नहीं जानता, उसे अपने पास पुस्तक रखने की कोई जरूरत नहीं। जो पुस्तक पढ़ना जानता है, उसे वह दे दी जाय। इस तरह भूदान में देनेवाला घमंडी नहीं बन सकता और न लेनेवाला दीन-हीन बनता है। इसलिए भी भूदान सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

समविभाजन के लिए

महाभारत की कहानी है। पांडव कहते थे हमारा जमीन पर अधिकार है।

कौरव यह बात न मानते थे। उन्होंने अपने हाथ में राज्य रख लिया। पांडवों ने कहा : 'हमारा हक है, पर हम उसे छोड़ने को राजी हैं, इसलिए कम-से-कम आधा राज्य दे दो।' लेकिन वह भी कौरवों ने नहीं माना। फिर युधिष्ठिर ने कहा : 'जाने दो राज्य। हम पाँच भाई हैं, तो पाँच गाँव ही दे दो।' इस पर कौरवों ने क्या कहा ? यही कि 'अगर 'दान' माँगोगे तो देंगे, हक समझकर माँगोगे तो नहीं मिलेगा। सुई के अग्र पर जितनी जमीन आ सकती है, उतनी जमीन पर भी हम तुम्हारा हक मानने को तैयार नहीं। भीख माँगो तो पाँच गाँव मिलेंगे।' भूदान में इस तरह हम भीख नहीं, हक माँगते हैं। हम 'दान' शब्द एक विशेष अर्थ में इस्तेमाल करते हैं ? '**दानं समविभाग :**' यह शंकराचार्य ने कहा है। दान याने सम-विभजन या अच्छी तरह बँटवारा करना। जो काश्त करना चाहते हों उनका हक समझकर उन्हें जमीन देनी चाहिए। इसलिए भी यह पुण्यों में सर्वश्रेष्ठ पुण्य है।

जमीन की मालकियत मिटाने का विचार

हिन्दुस्तान में गाँव-गाँव के धंधे टूट रहे हैं। लोगों को कुछ आधार जमीन का ही है, लेकिन जमीन की मालकियत हम रखते हैं, तो उत्पादन का साधन चंद लोगों के हाथ में आ जाता है। भूदान यज्ञ के द्वारा हम लोगों को बताना चाहते हैं कि जमीन की मालकियत मिटानी चाहिए। जमीन की मालकियत मिटाना पुण्यों में सर्वश्रेष्ठ पुण्य है।

भूदान से अशांति निवारण

एशिया भर जमीन की माँग है और जनसंख्या बढ़ रही है। चंद लोगों के हाथ में जमीन रहती है, तो बाकी लोग असंतुष्ट रहते हैं। असंतोष से हिंसा बढ़ती है। हिंसा से लड़ाई होती है और देश का कल्याण नहीं होता। भूदान से अशांति मिटती है। दुनिया एक खतरे से बचती है। इसलिए भी भी भूदान पुण्यों में सर्वश्रेष्ठ पुण्य है।

स्वराज्य गाँवों में

हिन्दुस्तान को स्वराज्य मिला, पर गाँवों को क्या लाभ हुआ ? लंदन

से दिल्ली में सत्ता आयी और कुछ मद्रास भी पहुँची, पर अभी एक गाँव में वह नहीं पहुँच पायी। दिल्ली में सूर्योदय होगा, तो क्या गाँवों में अंधेरा रहेगा? यह कौन कबूल करेगा? किन्तु आज तो गाँव-गाँव को बताना पड़ता है कि स्वराज्य आया है। सूर्य की किरणें ब्राह्मण, हरिजन, अमीर, गरीब, हिंदू, मुसलमान सबके घरों में प्रवेश करती हैं। शहरों में भी प्रवेश करती है और देहातों में भी। अगर भूमिहीनों में जमीम बँटेगी, तो स्वराज्य को किरणें सूर्य की किरणों के समान घर-घर में पहुँच जायँगी। हर मनुष्य महसूस करेगा कि स्वराज्य आया है, कोई बड़ा और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। इसलिए भी भूदान का काम सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

दुनिया को राह मिलेगी

आज दुनिया की हालत बिलकुल डाँवाडोल है। छोटे-छोटे मसलों पर राष्ट्रों के बीच बड़े-बड़े वाद-विवाद और लड़ाइयाँ हो सकती हैं। बड़े-बड़े शस्त्रास्त्र बनाये गये हैं, पर उनसे बड़े-बड़े सवाल हल होंगे, यह विश्वास नहीं रहा। उधर हाइड्रोजन बम है, इधर ऐटम बम है। फिर भी उससे कोई प्रश्न हल नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में अगर हम यह सिद्ध कर दें कि बड़े-बड़े मसले शांति से सिद्ध हो सकते हैं, तो दुनिया बच जायगी, इसमें कोई शक नहीं। हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी समस्या जमीन की है। अगर वह सुन्दर तरीके से हल हो, तो उससे दुनिया को अच्छी राह मिले। इसलिए भी यह पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

मेट्टूर पालेयम्
१९-९-'५६.

हर देश की अपनी-अपनी विशेषता होती है। हमारे देश की विशेषता है कि वह महापुरुषों के पीछे जाना चाहता है। यहाँ बड़े-बड़े राजा-महाराजा, सेनापति और सेठ-साहूकार हुए। लोग कभी-कभी उनसे भय करते और उनसे डरते भी रहे हैं। यहाँ उनकी सत्ताएँ भी चलीं। लेकिन देश ने अपना आचरण कभी भी उनके मुताबिक नहीं रखा। लोग उनके नाम तक याद न रख सके। लोगों के हृदय पर उनकी सत्ता न चल पायी। भारतीय लोक-हृदय पर एकमात्र महापुरुषों का ही असर हुआ। यहाँ के लोग नम्मालवार, माणिकवाच्वकम्, शंकर, रामानुज, बुद्ध, महावीर, चैतन्य, नानक या कबीर को याद करेंगे, लेकिन अकबर को भूल जायँगे। बुद्ध को याद करेंगे, लेकिन अशोक को भूल जायँगे। यद्यपि अशोक और अकबर राजा के नाते बड़े अच्छे राजा थे, फिर भी वे आदर्श पुरुष नहीं थे। हम उनके पीछे चलें, उनका अनुकरण करें, ऐसी कोई भावना लोगों में नहीं थी। गीता ने भी लिख रखा है : "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्त-त्तदेवेतरो जनः"—जैसे महापुरुष बरतता है, वैसे ही लोग बरतते हैं।

हिन्दुस्तान की बुद्धिमान जनता

इसका यह मतलब नहीं कि यहाँ के लोग अपना दिमाग चलाना ही नहीं चाहते है, बल्कि लोग अपना दिमाग चलाते और मूल्य को पहचानते हैं। हमारे समाज में गलत मूल्य नहीं चलते। गांधीजी आये और लोगों ने उन्हें माना, क्योंकि उन्होंने देखा कि गांधीजी का चरित्र महापुरुषों के चरित्र के समान है। उनकी सत्यनिष्ठा, करुणा, गरीबों के लिए प्रेम, त्याग, सादगी, फकीरी आदि सारी चीजें महापुरुष की चीजें थीं। गांधीजी में अनेक शक्तियाँ थीं, परंतु उनकी दूसरी-तीसरी शक्तियों के लिए लोग उनके पीछे नहीं चले, बल्कि उनके भक्तिज्ञान-वैराग्य का अंश उसके ही पीछे लोग गये थे। यह हिन्दुस्तान

में हर जगह दीख पड़ता है। केवल तमिलनाड और कर्नाटक में ही नहीं, काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक यह भावना दीखती है।

अवश्य ही भारत के लोगों का जीवन-स्तर नीचा है, परन्तु चिंतन का स्तर बहुत ही ऊँचा है। कोई गुस्सा करता है, तो लोगों की परीक्षा में बिलकुल फेल हो जाता है। कार्यकर्ता में अहंकार हो, तो लोग उस पर आपत्ति करते हैं। याने वे नाड़ी ठीक से पहचान लेते हैं। उत्तम गाड़ीवान बैल को तुरत जान लेता है। हिन्दुस्तान के लोग भी फौरन पहचान लेते हैं कि मनुष्य में कितना पानी है। किसी में अहंकार दीखते ही वे यह समझ जाते हैं कि यह अनुकरणीय नहीं, चाहे कितना ही विद्वान क्यों न हो। यहाँ सत्पुरुषों की एक कसौटी बनी है। हमारे एक मित्र कह रहे थे कि यूरोप के लोगों की सेवा करना आसान है। किन्तु यहाँ हमारी सेवा करने की इच्छा होती है, परन्तु लोग एक दम उसे नहीं लेते। मेरे यह पूछने पर कि ऐसा क्यों होता है?, लोगों को सेवा लेने में क्या कष्ट है?, तो वे बोले : "ये लोग दीखने में तो मूर्ख दीखते हैं परन्तु सेवक की कसौटी करते हैं। उसमें जरा-सा दोष दीखा, तो उसे फौरन फेल कर देते हैं।' मैंने उनसे कहा : 'हिन्दुस्तान के देहातियों की सेवा महापुरुषों ने की है। हिन्दुस्तान के महापुरुष युनिवर्सिटी बनाकर एक जगह नहीं बैठते थे, बल्कि गाँव-गाँव और घर-घर जाते और लोगों के पास जाकर ज्ञान देते थे। वे बिलकुल नम्रता से जाते और सारा हिन्दुस्तान घूमते थे।

सतत घूमने वाले नम्र ज्ञानी

लोग कहते हैं कि रेल, हवाई जहाज के इस ज़माने में भी बाबा हिन्दुस्तान भर पैदल घूम रहा है, इसलिए यह बड़ी बात दीखती है। किंतु घूमना कोई बड़ी बात नहीं। शंकर और रामानुज कितना घूमे थे? अभी हमने आप्परस्वामी का चरित्र पढ़ा। वह भला मनुष्य यहाँ से पटना गया और वहाँ एक जैन गुरु का शिष्य बनकर बरसों रहा। वह केवल ज्ञान की तलाश में घूमा। आखिर उनकी शैवधर्म में निष्ठा बढ़ी और फिर वे यहाँ वापिस लौटे। जिस जमाने में आमदरफ्त के कोई साधन न थे, उस समय वे कुल हिन्दुस्तान घूमे। आज यहाँ

पटना जाने के लिए दो दिन लगते हैं और हवाई जहाज से तो चंद घंटों में ही जा सकते हैं। लेकिन उस जमाने में यहाँ से पटना जाने के लिए एक साल लगता था। फिर जहाँ जाना है, वहाँ के लोग हमारी भाषा भी नहीं जानते, बीच में बड़ा भारी जंगल था, इसलिए जाना और भी खतरनाक था। फिर भी ज्ञान की तलाश में, भक्ति के प्रचार में घूमे।

हमने उनका 'देवारम्' पढ़ा। उसमें उसके स्थान के अनुसार भजन दिये हैं याने जिस-जिस स्थान में उन्होंने जो-जो भजन बनाये, वे उस-उस स्थान के नाम के नीचे दिये गये हैं। उनमें १२५ स्थानों के नामों का जिक्र आता है। इन दिनों ऐसे कितने कवि होंगे, जिन्होंने १२५ स्थानों में भजन बनाये होंगे? मतलब यही कि वे सदासर्वदा घूमते ही रहते थे। वे लोगों के पास नम्रता से जाते और ज्ञान पहुँचाते थे। क्या इसके लिए उन्हें पैसा मिलता था?

सत्पुरुष ही समाज-सुधारक

चूँकि हिन्दुस्तान के लोगों के चिंतन का स्तर ऊँचा है, वे सच्चे पुरुष की पहचान करते और उसके पीछे चलते हैं, इसलिए यहाँ जितने भी सामाजिक सुधार हुए, सभी सत्पुरुषों के जरिये हुए हैं। प्राचीनकाल से लेकर आज तक आचार-विचारों में जितना परिवर्तन हुआ, कुल-का-कुल सत्पुरुषों ने किया है। प्रायः हिन्दुस्तान के सभी लोग स्नान किये बिना दोपहर का भोजन नहीं करते, चाहे कितनी ही ठंड क्यों न हो। लोगो को यह किसने सिखाया? क्या कोई सरकारी कानून है कि स्नान न करोगे, तो सजा होगी? स्पष्ट है कि महा-पुरुषों ने ही उन्हें यह बात सिखायी। हम लोगों की सभी भावनाएँ श्रद्धा पर निर्भर हैं। महापुरुषों ने ही हमें जीवन और समाज की बातें सिखलायीं और हम उन्हीं पर अमल करते हैं। हममें जो सत्यनिष्ठा है, वह क्या किसी कानून के कारण है? 'सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्' यह हमें महापुरुषों ने ही सिखाया। उनकी वाणी का असर हम पर हुआ है। इसीलिए हिन्दुस्तान के समाज में परिवर्तन करना आसान है। सिर्फ सज्जनों को जरा हम लोगों के साथ घुल-मिल जाना चाहिए।

सज्जन समाज से अलग न रहें

'सज्जन' समाज का मक्खन है। वह समाज को विलोकर निकाला हुआ है। अगर उस मक्खन को छाछ से अलग रखा जायगा, तो छाछ फीकी पड़ जायगी। अगर मक्खन छाछ के साथ मिला हुआ रहा तो छाछ गाढ़ी बनेगी, उसमें पुष्टि आयेगी, समाज में भी पुष्टि तभी रहती है, जब समाज के महापुरुष समाज के साथ मिले-जुले रहते हैं। किंतु बीच के जमाने में लोगों के मन पर निवृत्ति का गलत असर हुआ। समाज की तकलीफों को देख सज्जन उससे अलग गये। किन्तु जहाँ सज्जन समाज से अलग होते हैं, वहाँ दोनों का अकल्याण होता है।

थोड़ा-सा दही भी दूध में डालने पर हंडे भर दूध का दही बना देता है। लेकिन उसे दूध से अलग रखा जाय, तो न दूध 'दूध' रहेगा और न दही 'दही' ही। दूध बिगड़ जायगा और दही खट्टा होता जायगा। सज्जनों के अलग हो जाने से समाज तो बिगड़ ही जाता है। सिवा इसके समाज से अलग रहने की वृत्ति के कारण सज्जन भी उत्तरोत्तर विरक्त बनता है—खट्टा बनता है। विरक्ति तभी शोभादायक होती है, वैराग्य की तभी कीमत होती है, जब वह अनुराग के साथ हो। भक्ति और प्रेम के साथ वैराग्य रहे, तो उसमें मिठास आती है। लोगों की हम सेवा करते हों, उनपर प्रेम करें, पर अपने भोग के लिए वैराग्य रखें, तो वह अच्छा है। किन्तु 'इसकी संगति नहीं चाहिए, वह दुर्जन है, इसलिए उससे अलग रहें,' ऐसा वैराग्य हो तो वह किस काम का?

वैराग्य का मिथ्या अर्थ

आपने सुना होगा कि बड़े-बड़े पुरुष गुस्सा करते थे। हिन्दुस्तान में कई पुरुषों की कहानियाँ हैं कि वे किसी को शाप दे देते तो वह खतम हो जाता था। क्या शाप देना महापुरुष का लक्षण है? उनका लक्षण प्रेम और करुणा होगा या शाप देना? हम कितने ऋषियों के किस्से सुनते हैं कि बेचारे क्रोध से भरे थे, काम से पीड़ित थे। जहाँ समाज से बिलकुल अलग रहकर वैराग्य-भावना आती है, वहाँ क्रोध आ ही जाता है। बड़े-बड़े ऋषि भी अप्सराओं को

देख मोहित हो गये। इसका मतलब यही है कि 'विषयासक्ति नहीं चाहिए—नहीं चाहिए', कहते-कहते वह सिर पर आ ही जाती है, क्योंकि वैराग्य का मिथ्या अर्थ माना गया, और समाज में सम्मिलित होने के बजाय समाज से अलग रहने की वृत्ति आयी। असंख्य लोगों में व्याप्त परमेश्वर की ज्योति को देखने से इनकार करा दिया गया।

सज्जनता को चूसने की वृत्ति हो

हरएक में कुछ गुण होते हैं और कुछ दोष भी। यहाँ मिट्टी, पत्थर और कई धातुओं के कण पड़े हैं, पर लोहचुंबक क्या करता है? अगर लोह के कण हों, तो उन्हींको चूस लेगा। इसी तरह सज्जन लोग हरएक में रहनेवाली सज्जनता को ही चूसते हैं। दुनिया में कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं कि उसमें गुण ही न हों, फिर चाहे उसमें कितने भी दुर्गुण क्यों न हों। इसी तरह कोई कितना भी सज्जन क्यों न हो, उसमें एक भी दोष नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता है। सर्वदोषरहित तो एक परमेश्वर ही हो सकता है और सर्वदोष-सम्पन्न 'शैतान' ही। हरएक मनुष्य में कोई-न-कोई गुण होता है और कोई-न-कोई दोष होता है।

क्या आपने बिना दीवाल या बिना दरवाजे का कोई घर देखा है? हरएक घर को दीवालें और दरवाजे, दोनों होते हैं। श्रीमान का घर हो तो ज्यादा दरवाजे होंगे। और गरीब के घर को भी कम-से-कम एक दरवाजा तो होगा ही। बिना दरवाजे का घर नहीं हो सकता। मनुष्य में गुण दरवाजे और दोष दीवालें हैं। अगर हम किसी घर में दीवाल के जरिये प्रवेश करना चाहें, तो सिर टकरायेगा और दरवाजे के जरिये प्रवेश करें, तो सीधा प्रवेश होगा। लोगों के पास आप उनके दोषों के जरिये जायँगे, तो टकरायेंगे और गुणों के जरिये जायँगे, तो सीधा अन्दर प्रवेश होगा। सारांश, दुनिया में घूमते हुए हर-एक मनुष्य के गुणों का संग्रह करते हुए चलने वाला ही सज्जन है। हरएक के दोष ही देखते चले जाने से तो अपने शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों में भी

दोष दीखेंगे। फिर हम क्या करेंगे? इसलिए समाज के साथ एकरूप होने में ही समाज का भी भला है और सज्जनों का भी भला है।

हमारे काम का मध्यबिन्दु सत्पुरुष

हम बहुत बार कहते हैं कि भूमिदान में हम भूमि इकट्ठा करने के लिए नहीं निकले हैं। हम तो 'सज्जन-संघ' बनाना चाहते हैं, सज्जनों को खींचना चाहते हैं। जो केवल करुणा से भरे, लोकसेवा में जीवन व्यतीत करने में ही खुशी माननेवाले तथा व्यक्तिगत अहंकार से रहित जितने सज्जन हम इकट्ठा करेंगे, उतना ही यह काम जल्दी होगा। कोई कहते हैं कि कांग्रेस या सरकार की मदद मिलेगी, तो काम जल्दी होगा। हम कहते हैं: 'जो हमें मदद दे सकें, सबकी मदद लेने के लिए हम राजी हैं। किंतु हमारा न सरकार पर विश्वास है, न कांग्रेस पर और न किसी दूसरी संस्था पर। हमारा विश्वास तो सत्पुरुषों के हृदय पर है। ऐसे सत्पुरुष कांग्रेस में हैं, सरकार में हैं और दूसरी संस्थाओं में भी। हमारा संबंध उन सत्पुरुषों से है, उन संस्थाओं से नहीं। हमारा ध्यान हमेशा व्यक्तियों की तरफ रहता है। हमें ऐसे जितने सज्जनों का सहवास मिलेगा, उतना ही यह काम बढ़ेगा।'

भूदानयज्ञ से हिन्दुस्तान की सज्जनता जाग उठी है। कितने ही लोगों ने इसमें अपना सर्वस्व दे दिया है। अभी आप बाबा को घूमते देखते हैं। परन्तु दूसरे प्रान्तों में ऐसे कई लोग सब प्रकार की व्यक्तिगत कामनाओं को छोड़कर घूम रहे हैं। फिर उनके पीछे दूसरे भी आते हैं। बड़ा काम सबकी मदद से होता है, किंतु इसका मध्यबिंदु है सत्पुरुष। हम ग्रामदान की बात करते हैं, परन्तु ग्रामदान तभी टिकेगा, जब उसके पीछे कोई सत्पुरुष हो। फिर गाँव की भी समस्याएँ उसके जरिये हल हो सकती हैं।

मेक पालेयम्
२०-६-५६

('फेलोशिफ ऑफ रीकन्सिलिएशन' के सदस्यों के साथ शंकासमाधान')
'फेलोशिप आफ रीकन्सिलिएशन' के सदस्यों ने कहा कि 'प्रभु ईसा के बताये हुए प्रेम के मार्ग के अनुसार 'रीकन्सीलिएशन' (समन्वय या समाधान) की कोशिश करना ही हमारा मकसद है ।'

रसूलों में कोई फर्क नहीं

इस पर बाबा ने कहा ः यह ठीक है कि ईसा की राह केवल ईसाइयों के लिए नहीं, बल्कि कुल दुनिया के लिये लागू है। बाबा का भी दावा है कि वह ईसा की राह पर चल रहा है। यद्यपि वह प्रार्थना करता है, गीता पढ़ता है, फिर भी उसका यही दावा है। बाबा ईसाइयों के बीच प्रार्थना करता है और जब दिल्ली के पास मुसलमानों के बीच काम करता था, तब उनकी प्रार्थना में भी शामिल हो जाता था। इसलिए जो सच्ची राह है, चाहे वह हिन्दुस्तान के ऋषियों द्वारा, ईसा द्वारा या मुहम्मद पैगम्बर द्वारा बतायी हो, वह एक ही है। कुरान में एक सुन्दर आयत आती है—'हम किसी भी रसूल में फर्क नहीं करते।' दुनिया में सिर्फ मुहम्मद ही रसूल नहीं हैं, दूसरे भी कई रसूल हो गये हैं। ईसा भी एक रसूल है और मूसा भी, और भी दूसरे रसूल हैं, जिनका नाम भी हम नहीं जानते। 'हम रसूलों में कोई फर्क नहीं करते,' यह इस्लाम का 'फेथ' है। हम समझते हैं कि हम हिन्दुओं का भी यही 'फेथ' है। वे कहते हैं कि दुनिया के सत्पुरुषों ने जो राह दिखाई है, वह एक ही है। जो भेद पैदा होते हैं, वे हमारी संकुचित वृत्ति के कारण ही। अगर आप हमसे पूछेंगे कि क्या आपका 'सरमन ऑन दी माउंट' पर विश्वास है ? तो हम कहेंगे कि जी हाँ, है। मुझे उस किताब में ऐसी कोई चीज नहीं मिली, जो हिंदू-धर्म के खिलाफ हो। इसलिए हिंदू होने के नाते मैं उस पर श्रद्धा रखता हूँ। आप ईसा का नाम लेते हैं, क्योंकि वे आपके गुरु हैं। कोई मुहम्मद का नाम लेते

हैं। मैं अपनी माँ का नाम लेता हूँ, आप अपनी माँ का नाम लेते हो, दोनों में फर्क नहीं है, दोनों का रास्ता एक ही है।

छोटी चीजों पर मतभेद

सभी सत्पुरुषों ने, जिन्होंने धर्म-संस्थापना की, दुनिया को एक ही रास्ता बताया है। फिर भी कहीं अगर भेद हों, तो वे परिस्थिति के कारण ही होते हैं। सवाल उठाया जाता है कि पश्चिम की तरफ मुँह किया जाय या पूरब की तरफ ? हिंदू सूर्य की ओर देखते हैं, इसलिए वे सुबह प्रार्थना करने के लिए बैठेंगे, तो पूरब की तरफ मुँह करेंगे और शाम को पश्चिम की तरफ। मुसलमान कहते हैं, जिधर काबा हो, उधर मुँह कर के बैठना चाहिए। चाहे सूर्य पीछे हो या सामने, पर 'काबा' सामने होना चाहिए। काबा उनका एक धर्मस्थान है, उसके स्मरण से उन्हें अच्छा लगता है, तो उससे मेरा क्या बिगड़ता है ? ये सब साधारण बातें है, ऊपरी फर्क हैं, उनसे धर्म का कोई संबंध नहीं। परमेश्वर में सत्य, प्रेम, करुणा, दया आदि गुण हैं, जितना प्रेम अपने पर करते हो, उतना ही दूसरों पर करो, आदि सब बातें ऐसी हैं, जो सभी सत्पुरुष बताते हैं। लेकिन हमारा इतने से संतोष नहीं होता। कोई कहते हैं कि घुटने टेक कर ही प्रार्थना करनी चाहिए, तो दूसरे कहते हैं, पद्मासन लगाकर ही प्रार्थना करे। हम कहते हैं कि आप जो चाहे सो करो, मुझे दोनों चीजें एक-सी मालूम होती हैं। अपनी यात्रा में हम पहले सुबह १२-१४ मील चलते थे, लेकिन आजकल दिन में दो बार चलते हैं। पहले हम सुबह की प्रार्थना भी चलते-चलते करते थे, जिससे समय बच जाय। सुबह कूच मार्च हो, तो प्रार्थना शुरू होती थी। कुछ लोग कहते हैं कि खड़े-खड़े या चलते-चलते प्रार्थना करना ठीक नहीं, प्रार्थना के लिए बैठना ही चाहिए। हम कबूल करते हैं कि बैठने से प्रार्थना अधिक शांति से हो सकती है, पर चलते-चलते प्रार्थना करें, तो भी उसमें कोई गलती है, ऐसा हम नहीं मानते। बीच में हमने चर्खा कातते-कातते प्रार्थना चलायी थी। कुछ लोगों को वह ठीक नहीं लगा। हमने उनसे पूछा : 'प्रार्थना के साथ वीणा चलेगी या नहीं ?'

उन्होंने कहा : 'हाँ चलेगी।' वे हिंदू थे, इसलिए प्रार्थना के साथ वीणा को स्वीकार कर सकते थे। फिर मैंने पूछा : 'वीणा चलेगी, तो सूतकताई क्यों नहीं?', इस तरह छोटी-छोटी चीजों में मतभेद होता है। उसे हम धर्म नहीं, रिवाजों का मतभेद मानते हैं। इसलिए धर्म की असली राह एक ही है। इसलिए हमें उसमें कोई फर्क नहीं मालूम होता। क्या यह बात आपको जँचती है?

एफ० ओ० आर० के भाइयों ने जवाब दिया कि 'जी हाँ, जँचती है।'

फिर एक भाई ने सवाल पूछा : 'आप कहते हैं कि सत्य, प्रेम, करुणा आदि परमेश्वर के गुण हैं। इस तरह गुणवाले सगुण भगवान् का अद्वैत के साथ कैसे मेल बैठ सकता है? अद्वैत ही हिंदूधर्म का प्रमुख विचार है न?'

हिंदू-धर्म और अद्वैत

विनोबाजी ने कहा : यह बहुत ही सूक्ष्म विषय है। परमेश्वर के गुणों और स्वरूपों का विश्लेषण करने में बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानियों में पंथ हो गये। वह इतना व्यापक है कि हर एक मनुष्य को उसके एक ही बाजू का दर्शन होता है। इसलिए कोई द्वैत मानते हैं, तो कोई अद्वैत मानते हैं। हिंदू धर्म का अद्वैत के साथ कोई संबंध नहीं। उनमें से कुछ लोग 'अद्वैत' को मानते हैं, वे भी हिंदू हैं और कुछ 'विशिष्ट द्वैत', वे भी हिंदू हैं। कुछ लोग 'द्वैताद्वैत' को मानते हैं, वे भी हिंदू हैं और कुछ लोग 'द्वैत' को, वे भी हिंदू हैं। कुछ लोग 'निर्गुण परमेश्वर' को मानते हैं और वे भी हिंदू हैं। हिंदू धर्म ऐसा है कि वह इन सब को निगल जाता है। किंतु जहाँ हम प्रार्थना के लिए परमेश्वर के सामने बैठते हैं, वहाँ वह सत्य, प्रेम, करुणा आदि गुणों से भरा है, ऐसा कहने में किसी भी अद्वैती के साथ कोई झगड़ा नहीं हो सकता। जहाँ तक प्रार्थना और विचार का ताल्लुक है, वह कहेगा कि परमेश्वर से हम बिलकुल अलग हैं, ऐसी बात नहीं।

मैं आपको एक मिसाल देता हूँ। अद्वैत के महान् आचार्य शंकराचार्य थे। उन्होंने एक जगह कहा है, 'प्रभो, यद्यपि अभेद है, भेद नहीं, तो भी तू मेरा स्वामी है, मैं तेरा स्वामी नहीं।' फिर उन्होंने मिसाल दी कि समुद्र की

669

तरंगें होती हैं, तरंगों का समुद्र नहीं। बल्कि तरंगें तो उसमें आती-जाती हैं, पर समुद्र कायम रहता है। तू समुद्रतुल्य है, मैं तो उसकी एक तरंग :

'सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥'

यह शंकराचार्य का अद्वैत। लेकिन यह मानना, न मानना 'फिलासिफिकल' (दार्शनिक) बात हो जाती है। हम नहीं समझते कि इससे कोई फर्क पड़ता है। हमें तो ऐसी आदत पड़ी है कि हम एक ही भोजन में दाल, भात, रोटी, दूध सब एक साथ खा लेते है। हम एक साथ द्वैत भी खाते हैं, अद्वैत भी। हमारी पचनेन्द्रिय इतनी मजबूत है कि दोनों हजम कर सकते हैं। जिसकी पचनेन्द्रिय मजबूत नहीं, वह एक ही चीज खाये। इसमें कोई विरोध नहीं हो सकता।

अद्वैती का किसी के साथ झगड़ा नहीं

आप हमें समझाना चाहते हों तो समझाइये, आपको समझाने का हक है। रामानुज शंकर को समझाता है और शंकर रामानुज को। इस तरह की चर्चाएँ तो चलेंगी ही। उसमें विचारभेद भी रहेगा, क्योंकि वहाँ अनुभव का सवाल आता है। अगर किसी को अनुभव हुआ कि मैं ईश्वर के साथ एकरूप हूँ, तो कौन उसे क्या कहेगा? और किसीको अनुभव आये कि 'ईश्वर में और मुझमें जरा अंतर है', तो उसे भी कौन क्या कह सकता है? मैं आपको एक मिसाल देता हूँ। इस्लाम में परमेश्वर को स्वामी और अपने को भक्त माना जाता है। किंतु उनमें भी 'सूफी' ऐसे निकले, जो कहते थे कि 'अनलहक'—'मैं ही वह हूँ'। परिणाम यह हुआ कि 'मन्सूर' नाम के एक महापुरुष पर मुसलमानों ने पत्थर फेंके, सिर्फ इसीलिए कि वह कहता था कि 'मैं और वह एक है।' वे उसे पत्थर मारते गये और वह यही बोलता गया। आखिर बोलते-बोलते वह मर गया।'

अब आप क्या कहना चाहते हैं? यह तो अंदर के अनुभव की बात है। इसे हम खुला रखना चाहते हैं, इसे बंद करना गलत है। हम अपने लिए एक

बात माने और आपके लिए दूसरी। हम यह न कहें कि यही सही है और वह गलत। बल्कि यही कहें कि यह भी सही है और वह भी सही। मैं 'भी' माननेवाला हूँ, जहाँ तक ईश्वर के स्वरूप और अपने जीवन का संबंध है, वहाँ 'ही' मानता हूँ। सत्य-प्रेम आदि के बारे में शंकर और रामानुज में कोई भेद नहीं। जान का 'गास्पेल' और मैथिव का 'गास्पेल', दोनों बिलकुल एकरूप हैं, यह कहना मुश्किल है। मैंने कई ईसाइयों के साथ इस बारे में चर्चा की है। उनसे मैंने पूछा कि क्या जो 'पोजीशन' 'जान' की है, वही 'मैथिव' की है या दोनों में कुछ भेद है ? वे कहते हैं कि हाँ, कुछ भेद है। फिर भी वह ऐसा भेद नहीं कि विरोध आ जाय ! इसी तरह द्वैत और अद्वैत में विरोध नहीं है। एक महान् अद्वैती ने कहा है : 'स्वसिद्धान्त व्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चिता दृढम्। परस्परं विरुद्ध्यन्ते तैरयम् न विरुद्ध्यते।'

अर्थात् 'एक द्वैती का दूसरे द्वैती के साथ विरोध हो सकता है, पर मैं अद्वैती हूँ, इसलिए मेरा आपके साथ कोई विरोध नहीं।' इसी का नाम है अद्वैत। जहाँ द्वैत आता है, वहाँ झगड़ा आ सकता है, पर अद्वैत में कोई झगड़ा नहीं रहता। आपको झगड़ा करने का हक है, क्योंकि आप द्वैती हैं। पर मुझे झगड़ा करने का हक नहीं, क्योंकि मैं अद्वैती हूँ। आप काबा की तरफ मुँह कर प्रार्थना करना चाहें, तो करें, अरबी में प्रार्थना करना चाहें, तो अरबी में करें, 'हिब्रू' में करना चाहें, तो हिब्रू में करें, इतवार के दिन प्रार्थना करना चाहें, तो इतवार के दिन करें और प्रार्थना न करना चाहें, तो न भी करें—इसी का नाम है अद्वैत। इसलिए इसका किसी के साथ झगड़ा ही नहीं हो सकता। आप कह सकते हैं कि ऐसा अद्वैती बेकाम है। वह बेकाम हो सकता है, पर उसका आपके साथ झगड़ा नहीं हो सकता।

इस पर एक भाई ने कहा : 'देअर इज ए डिफरन्स बिट्वीन् नो क्वारल्स बीइंग रिकन्साइल्ड। व्हेन यू आर रिकन्साइल्ड, यू आर वन्।' (झगड़े का समाधान न कराने और स्वयं समाहित हो जाने में अन्तर तो है ही। कारण, समाहित स्वयं आप ही होते हैं।)

समन्वय का तरीका

विनोबाजी ने कहा : इसके लिए उपाय हो सकता है। आपको काशी जाना है और हमें काश्मीर, तो इसमें कोई झगड़ा नहीं हो सकता। काशी तक हम दोनों साथ जायँगे। आगे मैं काश्मीर जाऊँगा और आपको इन्दौर जाना हो, तो आप उधर जायँगे। आगे की बात अनुभव की है। मैं आपको समझा सकता हूँ कि इंदौर जाना अच्छा नहीं है, हमारे साथ काश्मीर ही चलिये। आप भी मुझे समझा सकते हैं कि काश्मीर में बहुत ठंड होती है, इसलिए इंदौर ही चलिये। अगर मुझे आपकी बात जँची, तो वहाँ से मैं इंदौर चलूँगा। यह तो अनुभव की लेन-देन है। विस्तृत क्षेत्र (हायर स्फिअर) में फर्क पड़ सकता है, परंतु प्रेम, भक्ति आदि में कोई फर्क नहीं। मैंने आपके सामने एक 'कान्क्रीट' चीज रखी है। 'मैथिव' और 'जान' में फर्क है न ?, इसका उत्तर कोई ईसाई नहीं दे सकता। उनमें से एक का 'स्टैण्ड' बिलकुल नैतिक (मॉरल) है और दूसरे का भिन्न है। तो आप मानेंगे न, कि दोनों में इतना फर्क है ? मैं कहता हूँ कि अगर फर्क न हो, तो लिखा ही किसलिए ? लेकिन आप 'जान' और 'मैथिव' में रिकन्साइल (समन्वय) कर सकते हैं।

एक भाई ने कहा : 'वी वाण्ट टु नो दी मेथड आफ रिकंसिलिएशन' (हम समाधान कराने की पद्धति जानना चाहते हैं)।

विनोबाजी ने कहा : जहाँ तक नैतिक सवाल और जन-सेवा, प्रेम, करुणा आदि बातें हैं, वहाँ तक हम एक हैं। आखिर 'हिन्दुइज्म' क्या है ? एक ओर वह अद्वैत को ग्रहण करता है तो दूसरी ओर नास्तिकों को। कपिल महामुनि हिंदू थे, पर वे ईश्वर को नहीं मानते। शंकराचार्य अद्वैती थे, वे ईश्वर और जीव को एक मानते थे। रामानुज की पोजीशन शंकराचार्य की पोजीशन से कुछ भिन्न थी, परंतु दोनों हिंदू थे। लेकिन कपिल महामुनि की पोजीशन तो बिलकुल ही भिन्न थी। वे कहते थे, 'ईश्वर है ही नहीं। जो कुछ है, मैं ही हूँ।' इस तरह तीन 'पोजीन्स' थीं, फिर भी तीनों का हिंदूधर्म में समन्वय हुआ। तब क्या हिंदू और ईसाई समन्वित नहीं हो सकते ?

एक भाई ने कहा : 'रिकंसिलिएशन' का यह 'मेथड' (पद्धति) हमारे काम की है। किंतु समाज में, गाँव में कई समस्याएँ हैं। काम करते समय उन सब की ओर ध्यान देना पड़ता है। वहाँ 'रिकंसाइल' कैसे किया जाय ?

बुराई के साथ समझौता नहीं

विनोबाजी ने कहा : उसमें 'रिकंसिलिएशन' का सवाल ही नहीं, क्योंकि इस मामले में कोई भेद ही नहीं है। यह सवाल तो वहाँ उठता है, जहाँ हिंदू, ईसाई, मुसलमान, आस्तिक, नास्तिक, द्वैत, अद्वैत आदि दार्शनिक पोजिशन्स आती हैं। लेकिन आप झाड़ू लगाना चाहें या गरीबों को धंधे देना चाहें, तो वहाँ 'रिकंसिलिएशन' का सवाल ही नहीं आता। वहाँ तो सेवा ही करनी है, इसलिए वहाँ कोई भेद नहीं। जहाँ आपने 'रिकन्साइल' शब्द इस्तेमाल किया, वहाँ मैं यही समझता हूँ कि आप हिंदू, ईसाई मुसलमान आदि में 'रिकन्साइल' करना चाहते हैं।

एक भाई ने कहा : 'देअर आर डिफरेण्ट सोशयल बैक-ग्राउंड्स इन विलेजेस। देअर आर हरिजन्स, नान-हरिजन्स, डिफरेन्ट कास्ट्स एटसेट्रा सो हाऊ टु रिकंसाइल (गाँवों में विभिन्न सामाजिक पृष्ठ-भूमियाँ हुआ करती हैं। वहाँ हरिजन, गैर-हरिजन और सवर्ण आदि हुआ करते हैं। उनमें समन्वय कैसे हो ?)।

विनोबाजी ने कहा : इसमें 'रिकंसाइल' करना नहीं। इस भेद को तो तोड़ना ही है। अच्छाई और बुराई का समन्वय संभव नहीं। एक प्रकार की अच्छाई का दूसरे प्रकार की अच्छाई से समन्वय हो सकता है। (गुड ऐण्ड इविल कैन्नाट बि रिकंसाइल्ड। वन् काइन्ड आफ गुड ऐण्ड एनदर काइन्ड आफ गुड कैन बि रिकंसाइल्ड)। जातिभेद बुराई है, इसलिए उसे तोड़ना ही है। हरिजनों में कुछ भलाई है और ब्राह्मणों में कुछ भलाई है, यह सवाल नहीं। हमें तो दोनों की भलाई लेनी है। फिर भी एक को अछूत और दूसरे को छूत मानना, यह भेद गलत है, बुराई है। उसके साथ कोई समझौता नहीं हो सकता।

इसपर एक भाई ने कहा : हम दोनों कम्युनिटीज् (समुदायों) की सेवा करना चाहते हैं, उनकी मदद करना चाहते हैं।

पाप से नफरत, पापी से नहीं

विनोबाजी ने कहा : बापू ने यह बहुत अच्छी तरह समझाया है कि हमें मनुष्यों का नहीं, उनके गलत कामों का विरोध करना है। मनुष्यों से तो प्रेम ही करना है। कोई कितना ही दुर्जन या पापी हो, फिर भी उस से प्रेम ही करना है। क्योंकि हम भी अंदर से पाजी हैं। इसलिए हम किसी से नफरत नहीं, सबसे प्रेम करेंगे। लेकिन जो पापी काम है, उसका विरोध करेंगे।

सर्वोदय के लिए अहिंसा

आपने 'रिकंसाइल' शब्द गलत इस्तेमाल किया है। आप कहना चाहते हैं कि समाज में स्वार्थ के लिए संघर्ष होते हैं, तो उस हालत में हम सबका भला कैसे करें ? याने सर्वोदय कैसे हो ? आज समाज में स्पर्धा, परस्पर-विरोध चलता है, हरएक एक दूसरे को तोड़ना चाहता है, हम एक को आनंद पहुँचाते हैं, तो दूसरे को तकलीफ होती है। ऐसे परस्पर विरोधी स्वार्थों की हालत में हम कैसे काम करें, ताकि सर्वोदय बन सके, यही आपका सवाल है न ? तो फिर इसके लिए अहिंसा को लाना होगा, प्रेम से काम करना होगा। यह ऐसा सवाल है, जिसका उत्तर कठिन नहीं। वह उत्तर आप भी जानते हैं और हम भी। वह है, जो हमारा विरोध करता है, हम उससे प्रेम करें।

एक भाई ने कहा : 'पीपल् डू नाट फील दैट इट इज प्रैक्टिकेबल' (लोग इसे व्यावहारिक नहीं मानते)।

दुर्जनों के सामने अहिंसा अधिक कारगर

विनोबाजी ने कहा : प्रेम को द्वेष के क्षेत्र में ही काम करने में आनंद आता है। सामने घना अँधेरा हो, तो दीपक को खुशी होती है, क्योंकि घने अँधेरे में वह अधिक चमकता है। एक जापानी भाई ने हमसे सवाल पूछा था कि 'गांधीजी की अहिंसा अंग्रेजों के सामने चली, क्योंकि अंग्रेज कुछ भलाई भी

जानते थे। किंतु क्या हिटलर के खिलाफ अहिंसा चलेगी ?' मैंने जवाब दिया : 'अगर हममें सचमुच अहिंसा है, तो हिटलर के सामने वह ज्यादा चलेगी। क्योंकि वह घना अंधकार है, इसलिए वहाँ दीपक ज्यादा चमकेगा क्योंकि पूर्ण विरोध हो जाता है। इसलिए सामने अगर हिटलर हो, तो अहिंसा और प्रेम के लिए वहाँ कार्य आसान है। परंतु सामने अगर सज्जन है और उसमें कुछ दोष है, तो वह कठिन मामला हो जाता है।

इस पर एक भाई ने कहा : 'हरएक में कुछ-न-कुछ भलाई होती ही है। फिर आप किसी को 'सिविल' कैसे कहते हैं ?

विनोबाजी ने कहा : आपने अब दार्शनिक पोजीशन ली। लेकिन मैं तुलनात्मक बात कर रहा हूँ कि एक मनुष्य में जितने गुण होते हैं, उतने दूसरे में नहीं। एक में ज्यादा द्वेष होता है, तो दूसरे में कम। जो ज्यादा द्वेषी, ज्यादा पापी, ज्यादा जुल्म करनेवाला है, उसके खिलाफ काम करने में अहिंसा को ज्यादा आनंद आयेगा। अंग्रेजों का मुकाबला करने में अहिंसा को ज्यादा समय याने पचीस साल लगे, लेकिन हिटलर का मुकाबला करने के लिए तो पाँच ही साल लगेंगे। उस जापानी भाई को लगा कि यहाँ अहिंसा इसीलिए सफल हुई कि अंग्रेजों में कुछ भलाई थी। मैंने कहा कि उनमें भलाई थी, इसीलिए पचीस साल लगे। उनमें भी कुछ भलाई थी और हममें भी थी, इसलिए ज्यादा समय लगा। किंतु सामने ऐसा दुश्मन हो, जिसमें दोष ज्यादा हो और गुण कम, तब तो हम उसे बहुत जल्दी जीत लेंगे।

पेरियनायकम् पालेयम्
२१-९-'५६

एक बार किसी ने रामकृष्ण परमहंस को पूछाः 'गीता का सार क्या है ?' उन्होंने बड़े मजे से समझाया और कहाः 'गीता-गीता-गीता इस तरह जप किया करो।' 'गीता-गीता' जोर से बोलना शुरू करोगे, तो वह 'तागी-तागी होगा' (बंगाली में तागी का अर्थ त्यागी होता है।) फिर आपको गीता का सार मिल गया" उनका समझाने का एक तरीका था। जैसे बच्चों को समझाते हैं, वैसे समझाते थे। वेदान्त समझाते थे, तो वह सहज विनोद से, सादे शब्दों में।

त्याग ही गीता का तात्पर्य

त्याग ही गीता का तात्पर्य है। उसे कोई 'अनासक्ति' का नाम देते हैं, तो कोई 'फलत्याग' का। गीता में 'मोक्ष-संन्यास योग' बतलाया है, याने ऐसी मनःस्थिति, जिसमें मोक्ष की भी जरूरत नहीं। मोक्ष का भी त्याग गीता समझाती है। यहाँ त्याग की हद हो गयी। यहाँ मुक्ति की कैंची मुक्ति पर ही चलायी गयी है और इसके लिए 'मोक्ष-संन्यास' 'यह शब्द लिया। शब्द कुछ भी लें, तात्पर्य यही है कि गीता त्याग सिखाती है और कहने में संकोच होता है, परंतु भारतीय सस्कृति का यही मूल है। संकोच इसलिए कि इस तरह का दावा करने लायक हमारा आचरण नहीं है।

भारत का वैभव त्यागप्रधान संस्कृति

फिर भी वस्तु-स्थिति यह है कि यहाँ के लोगों को त्याग का संदेश सुनने में जितना प्रिय लगता है, उतना और कोई संदेश नहीं, जब कि त्याग करना बहुत लोगों को मुश्किल जाता है। बाबा रोज गाँव-गाँव घूमता और हजारों श्रोता अत्यंत शान्ति से उसका संदेश सुनते हैं। उसकी ऐसी कोई भी सभा नहीं होती जिसमें बच्चे, बूढ़े, बहनें सब शान्ति से न सुनते हों और सबके दिल को समाधान न हो। यह समाधान भी उन लोगों को होता है, जिनके जीवन में भोग ही प्रधान है, उन्हें बाबा का त्याग का ही संदेश अच्छा लगता है,

भोग का नहीं। यह हिन्दुस्तान के हृदय की स्थिति है। हम समझते हैं कि हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी ताकत और दौलत यही है। इस भूमि में बड़े-बड़े पहाड़-उत्तम नदियाँ, सब प्रकार का सृष्टिवैभव मौजूद है। इस दृष्टि से कह सकते हैं कि भारतभूमि बड़ी भाग्यवान है। किंतु हिन्दुस्तान का मुख्य वैभव यह नहीं है, बल्कि भारतीय संस्कृति है, जो त्याग सिखाती है।

यहाँ के शिक्षकों ने आज हमसे कहा कि ब्रह्मचर्य के बारे में समझाइये। ऐसी बात जानने की इच्छा रखनेवाले भी बड़े भाग्यशाली होते हैं। भगवान् शंकर ने लिखा है कि मनुष्य के लिए अत्यन्त भाग्य की वस्तुएँ तीन हैं : मनुष्यत्वं ममुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः'। याने मानवजन्म, सज्जनों की संगति और मुक्ति की इच्छा। इस तरह ब्रह्मचर्य का संदेश सुनने की इच्छा रखनेवाले भी बड़े भाग्यशाली हैं।

ब्रह्मचर्य अभावरूप नहीं

ब्रह्मचर्य अभावरूप नहीं, भावरूप वस्तु है, फिर भी लोगों ने उसे अभावात्माक ही समझ लिया है। वास्तव में ब्रह्मचर्य में बहुत कुछ करने की बात आती है, छोड़ने की नहीं। ब्रह्मचर्य में सामने जो चीज है, वही एक चीज है; बाकी तो सब नाचीज है। उसके लिए जो 'चर्या' है, वही ब्रह्मचर्या है। उसमें सब बातों में मनुष्य जीवन का विकास ही होता है।

ब्रह्मचर्य के लिए अध्ययन आवश्यक

ब्रह्मचर्य के लिए सबसे बड़ी बात यह है कि हम वेदादि आध्यात्मिक साहित्य का अध्ययन करें। ब्रह्मचर्य एक परिपूर्ण साधना है। इसलिए उसकी बुनियाद में आध्यात्मिक साहित्य का अध्ययन अत्यावश्यक है।

आजकल यह खयाल हो गया है कि बी० ए०, एम० ए० पास करने के बाद अध्ययन समाप्त हो जाता है। गृहस्थाश्रम में अध्ययन की बिलकुल जरूरत नहीं। किन्तु उपनिषद् में गृहस्थाश्रम का वर्णन आता है। उसमें कहा गया है कि गृहस्थाश्रम एक बिलकुल बुनियादी चीज है। कुल जनता का आधार

इसी पर है। इसीलिए यज्ञ, अध्ययन और दान तीनों चीजों की उसमें जरूरत है। याने गृहस्थाश्रम में यज्ञ और दान तो है ही। और तीनों के बीच अध्ययन का काफी महत्व है, और वह अत्यावश्यक है। उपनिषद ने इस पर और जोर दिया। कहा है 'शुचौ देशे स्वाध्यायम् अधीयानः।' अर्थात् अपने घर में एक पवित्र जगह बनाये और वहाँ बैठकर स्वाध्याय करे। सारांश, अध्ययन गृहस्थाश्रम में रखा गया है।

मनुष्य को जीवन के लिए अनेक साधन बनाये गये हैं : तप, दान, अतिथि-सेवा आदि। किंतु हर साधन के साथ अध्ययन-अध्यापन जोड़ा गया है। बार-बार कहा है, ऋतम् होना चाहिए और साथ में स्वाध्याय भी। सत्य होना चाहिए और साथ में स्वाध्याय भी। और इन्द्रियों का दमन होना चाहिए और साथ में स्वाध्याय भी। बार-बार एक-एक साधन का नाम लेकर उसके साथ स्वाध्याय जोड़ दिया गया है। 'ऋतञ्च स्वाध्याय प्रवचनेच, सत्यंच स्वाध्याय प्रवचनेच'। इस तरह अध्ययन-अध्यापन को इतना महत्व दिया गया है। ब्रह्मचर्य में भी इसका महत्व है। ज्ञानप्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता मानी गयी है : 'सत्येन लभ्यस् तपसा ह्येष आत्मा, सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।' अर्थात् सम्यक् ज्ञान के लिए ब्रह्मचर्य चाहिए, इस तरह ब्रह्मचर्य में अध्ययन को महत्व दिया गया है।

इसके बाद इद्रिय, बुद्धि और मन का विकास करने की बात है। किसी विशिष्ट इंद्रिय का निग्रह करना, इतना ही स्थूल अर्थ नहीं है। वाणी और बुद्धि का उत्तम उपयोग होना, कान से अच्छी चीजें सुनना, खूब ज्ञान-श्रवण करना, यह सब चीजें ब्रह्मचर्य में आ जाती हैं। तुलसीदासजी ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है :

> जिनके श्रवण समुद्र समाना, कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
>
> भरहिं निरन्तर होहि न पूरे ।,

समुद्र में असंख्य नदियाँ जाती हैं, फिर भी वह भरता नहीं, इसी तरह अनन्त हरिकथा, हरिचर्चा सुनते-सुनते भी हमारे कान भर जायँ। इसके सिवा सतत ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इस तरह ब्रह्मचर्य की बड़ी व्यापक और भावात्मक कल्पना है।

त्याग याने बीज बोना

यही बात त्याग पर लागू होती है। त्याग करना याने 'फेंक देना', इतना ही अर्थ नहीं। त्याग करने का अर्थ है बोना, बीज अगर ऐसे ही फेंक देंगे तो फसल न उगेगी या कम उगेगी। किंतु ठीक से बोया जाय, तो फसल अच्छी तरह उगेगी। इसलिए त्याग का मतलब है बीज बोना। उसमें से खूब पैदावार होगी। जन-समाज के लिए जो त्याग किया जाता है, वह बोना ही है। इसललिए त्याग की व्याख्या भी भावरूप है।

त्याग के साथ क्रोध नहीं हो सकता

हम लोगों से कहते हैं कि अपनी जमीन, संपत्ति और बुद्धि का छठा हिस्सा समाज को दीजिये। यह त्याग की बात है। हम यही चाहते हैं कि हिन्दुस्तान में खूब प्रेम बढ़े, फसल बढ़े, लक्ष्मी बढ़े, शांति बढ़े। अगर हम प्रेम से गरीबों को एक हिस्सा देते हैं, तो समाज एकरस बनता है, ताकत बढ़ती है, काम करनेवालों को प्रेम मिलता है, प्रेम के साथ मसला हल होता है, शान्ति की स्थापना होती है। यह सारा त्याग से होता है। इसलिए गीता ने त्याग की कसौटी बतायी है। त्याग में से शान्ति होगी। किसी ने बहुत त्याग किया, कोई-कोई अत्यन्त त्यागी होने के साथ ही बहुत क्रोधी भी दीखते हैं। वह बात-बात में चिढ़ता है और दूसरों की सीधी-सी बात भी सुनना नहीं चाहता। अधिक त्यागी होने के कारण उसके क्रुद्ध होने पर डर लगता है कि कहीं किसी को शाप न दे दे। इस तरह त्याग के साथ क्रोध आने का कारण यही है कि वह त्याग 'निगेटिव' होता है। ऐसे लोग 'यह छोड़ो, वह छोड़ो' कह कर चीजें त्यागते हैं, जिससे उन्हें त्याग का अहंकार हो जाता है और गुस्सा भी आता है। इस तरह जहाँ त्याग के साथ क्रोध आता है, वह त्याग ही नहीं है। त्याग से तो शांति उत्पन्न होनी चाहिए। त्याग जबरदस्ती से नहीं हो सकता।

क्रान्ति का भावात्मक कार्य

इन दिनों क्रांन्ति की बात चलती है। कहते हैं, लोगों के दिमागों में

परिवर्तन लाने में देर लगेगी। इसलिए दिमाग बदलने के बजाय हिंसा से सिर काट कर जल्दी काम करा लेना चाहिए। किंतु श्रीमानों के सिर काटना, इसका नाम क्रान्ति नहीं है। सिर काटने से क्रान्ति नहीं होती, क्योंकि उसके दिमाग में बिलकुल फर्क नहीं पड़ता। एक सुखी को दुःखी और दुःखी को सुखी बनाने पर कौन-सा फर्क हुआ? समाज में कोई दुःखी और कोई सुखी तो तब भी रहा ही। क्या यह क्रान्ति है? क्रान्ति होती है विचार-परिवर्तन से। इसलिए प्रेम से समझाना पड़ेगा। वह भावात्मक काम होगा। उसमें से धर्म होगा।

लोग कहते हैं, यह काम कानून से जल्दी होगा। पर वे एक सीधी-सी बात नहीं समझते कि सरकार जमीन छीन लेगी तो गाँव-गाँव में लिटिगेशन (मुकदमा) चलेगा, झगड़े चलेंगे, गाँव-गाँव में असंतोष रहेगा। उससे क्या होगा? भूदान के तरीके से देरी लगेगी, यह कहनेवालों से मैं पूछता हूँ कि घर बनाने में देरी लगती है और जलाने में पाँच मिनट। यदि जल्दी करना है, तो क्या घर में आग लगाओगे? इसलिए स्पष्ट है कि जो काम अभावात्मक है, उससे काम न बनेगा।

ब्रह्मचर्य और त्याग जैसे अभावात्मक नहीं, वैसे ही अहिंसा भी अभावात्मक नहीं। मन के अन्दर खूब हिंसा चले और हाथ बाँध रखें, तो क्या वह अहिंसा है? यू० एन० ओ० में क्या होता है? क्या वहाँ अहिंसा है? टेबुल पर आमने-सामने बैठते हैं, तलवार के बदले में परस्पर अविश्वास लेकर बैठते हैं। अविश्वास तलवार का काम करता है। अहिंसा में तलवार हाथ में न लेना, इतना ही नहीं। हृदय में प्रेम भी भरा होना चाहिए। हरएक के हृदय में ज्योति होती है, यह ध्यान में रखना होगा। यह भावात्मक विचार है।

भौतिक के साथ आध्यात्मिक उन्नति भी जरूरी

भूदान-यज्ञ बड़ा ही विधायक कार्य है। लोग कहेंगे कि यह पंचवर्षीय योजना—जैसा ही कार्य है। दोनों में कोई फर्क नहीं, दोनों निर्माण-कार्य हैं, फिर भी फर्क है। वह योजना भौतिक विकास के बारे में सोचती है, परन्तु भौतिक

के साथ आध्यात्मिक विकास भी होना चाहिए। केवल फसल बढ़े, इतना ही उद्देश्य नहीं, प्रेम भी बढ़ना चाहिए। प्रेम के साथ-साथ फसल बढ़नी चाहिए। विष्णु के साथ-साथ लक्ष्मी बढ़े, तभी लाभ होता है। शिव के साथ ही शक्ति बढ़ने पर वह तारक होती है। शिव से अलग होने पर तो वह मारक होगी। केवल पंचवर्षीय योजना से भौतिक लाभ खूब होगा, वह तारक नहीं होगा। इसलिए भौतिक और नैतिक उन्नति दोनों साथ-साथ होनी चाहिए। अकेली चीज मारक साबित होगी, तारक नहीं। हम भूदान-यज्ञ में आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ उसके अनुकूल भौतिक विकास भी चाहते हैं।

पेरियनायकन् पालेयम्
२१-९-'५६

पूर्णनीति की स्थापना लक्ष्य : ४७ :

जिस कार्य को हम फैलाना चाहते हैं, वह धर्मकार्य है। हमें नये मूल्य स्थापित करने हैं और पुराने गलत मूल्यों को बदलना है। पुराने मूल्य सारे-के-सारे गलत हैं, ऐसा हम नहीं कहते। उनमें कुछ अच्छे भी हैं और कुछ गलत भी। लेकिन अभी तक पूर्णनीति की कल्पना प्रस्थापित नहीं हुई। आज-तक लोगों ने अधूरी नीति चलायी है। हम चाहते हैं कि सब लोग सत्य की महिमा समझें, पुराने लोग भी ऐसा ही कहते आये हैं। लेकिन सत्य की महिमा अभी तक इसलिए स्थापित न हो पायी कि उसके साथ निर्भयता भी चाहिए, और उसका अभी तक हमने निर्माण नहीं किया।

दंड के भय से असत्य

अगर आप सत्य की महिमा स्थापित करना चाहते हैं, तो अपराधों के लिए दंड का भय न होना चाहिए। मान लीजिये कि किसी लड़के ने कोई गलत काम किया और वह समझ गया है कि उसने गलत काम किया। फिर

भी उसे वह छिपाता है। कभी प्रकट भी करता है, तो उन मूर्ख साथियों के ही सामने, जिनसे कोई लाभ नहीं। फिर भी माता-पिता से वह उसे छिपाता ही है, जिनके दिल में बच्चों के लिए सिवा करुणा के और कुछ नहीं होता। वह उनसे इसलिए छिपाता है कि उसे दंड का भय रहता है। शायद माता जरा कम दंड दे, इसलिए संभव है वह कभी माता के सामने अपना दिल खोल दे।

सत्य के लिए निर्भयता जरूरी

आप सत्य की महिमा स्थापित करना चाहते और सब सद्गुणों में श्रेष्ठ गुण सत्य को मानते हैं। सब दुर्गुणों में बदतर दुर्गुण असत्य को बतलाते हैं और छोटे-छोटे दुर्गुणों के लिए दंड देते हैं। परिणाम यह होता है कि मनुष्य असत्य करता है और छोटे-छोटे दोष छिपाता है। इससे अपराध बढ़े हैं। जो लोग सत्य की महिमा मानते और उसके साथ दंड भी देते हैं, वे सत्य का ही खंडन करते हैं। सत्य की महिमा तभी स्थापित होगी, जब किसी को अपराधों के लिए दंड का भय न रहेगा। तब तक सत्य पर जोर दें, तो वह अर्ध-नीति ही रहती है, पूर्ण-नीति नहीं। इसलिए सत्य के साथ निर्भयता को महत्व देना होगा। सब प्रकार के अपराधों को दंड का भय न रहे। आप कहेंगे कि इससे अपराध बढ़ेंगे, तो हम कहते हैं कि फिर सत्य को इतना महत्व ही क्यों देते हैं?

अपराध रोग ही है

दंड न हो, तो मनुष्य अपने अपराधों को प्रकट करेगा, जैसे कि आज वह अपने रोगों को प्रकट करता है। अगर उसे विश्वास हो जाय कि अपराधों को प्रकट करने से लोगों की सहानुभूति और अपराधों के मार्जन के लिए मदद मिलती है, तब तो वह प्रकट करेगा। जिसे हम अपराध कहते हैं, वे भी रोग ही हैं। रोगों को हम छिपाते नहीं। बाबा के पेट में 'अलसर' है, लेकिन बाबा उसे छिपाता नहीं, प्रकट करता है। किन्तु अगर लोग कल यह मानने लगें कि बाबा के पेट में अलसर है, यह कितना अनीतिमान् मनुष्य है, तो फिर

बाबा की उसे छिपाने की इच्छा हो जायगी। हमने ऐसे कई कुष्ठरोगी देखे, जो अपने रोग को छिपाते हैं। यह एक भयानक रोग है। थोड़ा-सा होते ही प्रकट करने पर उपचार हो सकता है। लेकिन कुष्ठरोगी के लिए बाकी लोगों के मन में घृणा पैदा होती है। परिणाम यह होता है कि रोगी उसे छिपाता है। आखिर जब रोग बहुत ज्यादा बढ़ जाता है, तब प्रकट होता है, तो उस वक्त डॉक्टर कहते हैं कि अब यह मिट नहीं सकता। यद्यपि कुष्ठरोगी को काफी तकलीफ होती रहती है, फिर भी वह प्रकट नहीं करता। अगर वह जल्द प्रकट करे, तो उसे लाभ हो। लेकिन जहाँ आपने किसी खास रोग के लिए घृणा करना शुरु किया, वहीं रोगी में छिपाने की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है।

एकांगी नीति की मिसालें

सत्य को हम मानते हैं, तो उसके साथ अपराधों के लिए दंड न होना चाहिए, उनकी दुरुस्ती ही होनी चाहिए। फिर समाज में कोई व्यक्ति अपराध करेगा, तो सज्जनों के सामने प्रकट करेगा। फिर सत्य की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। निर्भयता और अदंड को महत्त्व दिये बिना, सत्य को महत्त्व देते हैं, तो वह एकांगी नीति होती है। वैसे ही हमने चोरी को गुनाह माना है; परन्तु उसके बाप को, जिसने चोरों को पैदा किया है, गुनाह नहीं मानते। चोरी तब होती है, जब मनुष्य 'संग्रह' करता है। अगर चोरी गुनाह है, तो संग्रह भी गुनाह है। लेकिन हम संग्रह करनेवाले को प्रतिष्ठित मानते हैं, उसे गद्दी और तकिये पर बिठाते हैं और चोर को जेल भेजते हैं। याने चोर का स्थान जेल में और सेठ-साहूकार का गद्दी पर। यह बात शास्त्रों के विरुद्ध है। शास्त्रों ने कहा है कि अगर आप 'अस्तेय' चाहते हैं, तो उसके साथ 'अपरिग्रह' भी चाहिए। दोनों साथ-साथ चाहिए। लेकिन आज के समाज में सिर्फ चोरी को ही गुनाह माना है, 'संग्रह' और 'परिग्रह' को नहीं, बल्कि उसे इज्जत दी है। यह बिलकुल एकांगी नीति है।

पत्नी को पति के लिए खूब निष्ठा होनी चाहिए, यह निर्विकार बात है।

लेकिन पति को भी पत्नी के लिए उतनी ही निष्ठा होनी चाहिए, यह क्यों नहीं कहते ? पत्नी को अगर पतिव्रता होना चाहिए तो पति को भी पत्नीव्रत होना चाहिए। आज पत्नी एक साथ दो शादियाँ नहीं कर सकती, परन्तु पति कर सकता है। किसी पुरुष से व्यभिचार हुआ तो उतना गुनाह नहीं माना जाता, पर वही किसी स्त्री से हुआ, तो गुनाह मानते हैं, यह क्यों ? उपनिषदों में तो उल्टा लिखा है। उसमें एक अपने राज्य में क्या-क्या अच्छाई है, उसका वर्णन करते हुए कहता है कि : "न स्वैरी, स्वैरिणी कुतः" मेरे राज्य में व्यभिचारी पुरुष ही नहीं, तो फिर व्यभिचारी स्त्री कहाँ से होगी ? उसका तात्पर्य यही है कि जहां पुरुष दुराचारी होते हैं, वहाँ भी स्त्रियाँ सदाचारिणी होती हैं, क्योंकि अक्सर वे ज्यादा धर्मनिष्ठ होती हैं। इसलिए जहाँ दुराचारी पुरुष ही नहीं, वहाँ दुराचारी स्त्री कहाँ से होगी ? याने वह दुराचार की ज्यादा-से-ज्यादा जिम्मेवारी पुरुषों पर डालती है। किन्तु आज के समाज ने वह जिम्मेवारी स्त्रियों पर डाली है। जिम्मेवारी समान होनी चाहिए न ?

स्त्रियों के गले में 'ताली' (मंगलसूत्र) डाली जाती है, इसलिए कि उनके पति है। लेकिन पति की कोई स्त्री है, तो उसके गले में कोई 'ताली' की जरूरत नहीं, याने वह 'बेताल' है। इस तरह की एकांगी नीति कभी प्रतिष्ठित नहीं हो सकती, पूर्णनीति ही होनी चाहिए। अगर आप चाहते हैं कि स्त्रियाँ 'सतीत्व' रखें, तो पुरुषों को 'सत्व' रखना चाहिए। दोनों पर समान जोर होना चाहिए। किसी का पति मर जाय और वह विधवा हो जाय, तो उसे व्रतनिष्ठ रहना चाहिए, यह बहुत अच्छी बात है। लेकिन किसी की स्त्री मर जाय, तो उसे भी व्रतनिष्ठ रहना चाहिए। वह क्यों दूसरी स्त्री कर पाये ? यहाँ मैं कोई विनोद नहीं कर रहा हूँ, बल्कि यही बता रहा हूँ कि अपने समाज की इन न्यूनताओं को दुरुस्त किये बिना समाज आगे न बढ़ेगा।

समझ-बूझकर त्याग करने से ही क्रांति

अभी तक समाज में जो मूल्य थे, वे सब-के-सब खराब थे, ऐसी बात नहीं। लेकिन वे एकांगी थे और हमें पूर्ण मूल्य स्थापित करने हैं। इसके लिए विचारवान् कार्यकर्ताओं की जरूरत है, जो इस कार्यक्रम को अपना कार्यक्रम

समझकर हाथ में लेंगे। अभी तक तमिलनाड में लोग बाबा पर कृपा करके थोड़ा दान देते हैं, सभा आदि का इन्तजाम कर देते हैं। किंतु मैं कहता हूँ कि कृपा करके बाबा पर 'कृपा' मत कीजियेगा, आप अपने पर ही कृपा कीजिये। अगर इस धर्मविचार में आपको अंदर से स्फूर्ति मिलती हो, तो भी काम कीजिये। तमिलनाड में एक-एक मनुष्य की शक्ल देख रहा हूँ। चेहरे पर क्या तेज है, पानी है या चेहरा फीका है, यह देखता हूँ। अभी तक बहुत थोड़े चेहरे दीख रहे हैं, जिनमें क्रांति है। बहुत से वे ही पुराने जमाने के दीख रहे हैं। वही पुराना जीवन और वही संग्रह कायम है। बाबा आया है, तो उसे पाँच एकड़ देकर उसपर उपकार मत करो। बाबा को जमीन लेकर क्या करना है? वह आपके हाथ में क्रांति का झंडा देना चाहता है।

एक श्रीमान् ईसा मसीह के पास जाकर कहने लगा कि 'मुझे उपदेश दीजिये।' ईसा बोले : 'सब पर प्रेम किया करो, चोरी मत करो, पड़ोसियों को मदद दिया करो।' वह कहने लगा : 'ये सब बातें मैं करता ही हूँ। मुझे कुछ विशेष उपदेश दीजिये।' फिर ईसा ने कहा : 'अपनी संपत्ति गरीबों में बाँटकर मेरे पीछे आ जाइये।'...बस, उसपर वह कुछ न कर सका। सारांश, क्रांति तभी होती है, जब जिनके पास जो चीज है, उसे वे समझ-बूझकर परित्याग करें। कानून से त्याग कराने पर क्रांति नहीं होती। कितने ही चोरों को जेल में १५-२० साल की सजा भुगतनी पड़ती है और ब्रह्मचर्य लेना पड़ता है, तो क्या उनमें शुकदेव की योग्यता आयेगी? जबर्दस्ती जो काम होता है, उससे क्रांति नहीं होती।

अंतर्निरीक्षण कीजिये

इसलिए हम चाहते हैं कि श्रीमान्, विद्वान् लोग यह समझकर कि अपनी संपत्ति, जमीन और बुद्धि का गरीबों और समाज के लिए उपयोग करना अपना धर्म है, आगे आयें और इस काम को उठायें। बिहार में कुछ काम हुआ है। यहाँ के लोग कहते हैं कि 'हमारे यहाँ की जमीन बहुत कीमती है।' मानो बिहार में जमीन मुफ्त ही मिलती थी। ये लोग कहते हैं कि 'हमारे यहाँ कावेरी का पानी

है', तो क्या बिहार में पानी नहीं है ? यहाँ कावेरी है, तो वहाँ गंगा है, गंडक है। बिहार में तो पाँच हजार रुपये एकड़वाली जमीन है। लेकिन हरएक को लगता है कि हमारे यहाँ मामला मुश्किल है, बिहार में जमीन का कोई खास मूल्य न होगा। आपको अपने लड़के-लड़कियाँ प्यारी हैं, तो क्या बिहार के लोगों को उनके अपने लड़के प्यारे नहीं ? दोनों में क्या फर्क हो सकता है ? जो आसक्ति यहाँ है, वही आसक्ति वहाँ है। लेकिन वहाँ कुछ समझदार, मालदार, संपत्तिवान् लोग आगे आये, उन्होंने अपना लाखों का दान दिया और इस काम का झंडा उठा लिया।

हमने सोचा कि बिहार में यह काम कैसे हुआ ? तो उसका एक ही उत्तर मिला कि 'वहाँ भगवान् बुद्ध और महावीर की प्रतिभाएँ काम कर रही हैं। फिर हम सोचते रहे कि क्या तमिलनाड में कोई सत्पुरुष नहीं हुए ? तो हमने यहाँ का साहित्य देखा। यहाँ का साहित्य दो हजार साल से चला आ रहा है। 'कुरल' से लेकर आधुनिक कवियों तक कितने ही आलवार (संत) यहाँ हुए हैं। यहीं शैव-सिद्धान्त की खोज हुई, रामानुज जैसे आचार्य हुए। तो, यहाँ क्या कुछ कम पुण्य है ? क्या गंगा ही पुण्य कर सकती है, कावेरी नहीं ? हम देख रहे हैं, यहाँ हमारी तपस्या कुछ कम पड़ रही है। यह हमारे और आपके लिए भी सोचने की बात है। इसलिए कि एक शख्स, जो अपनी भाषा भी नहीं जानता, यहाँ आये और आपके गाँव के गरीबों के लिए घूमे और आप ऐसे ही बैठे रहें, तो क्या शोभा देगा ? आजतक कई लोग फंड वगैरह लेने आये और लेकर चले गये। लेकिन हम यहाँ की जमीन गुजरात में नहीं बाँटनेवाले हैं। इसलिए आपको जरा अंतर्निरीक्षण करना चाहिए।

वेलाकिनारु (कोयम्बतूर)
२३-९-५६.

'भारतीयार' के एक गीत में कवि परमेश्वर का उपकार मानते हुए कहता है कि 'तूने हमारे लिए कोटि-कोटि सुख पैदा किए हैं।' इस प्रकार ईश्वर के उपकार का वर्णन धर्मग्रंथों में बहुत आता है। ईश्वर ने क्या-क्या सुख पैदा किये, उनकी सूची भी धर्मग्रंथों में मिलती है। वस्तुस्थिति ऐसी है कि ईश्वर ने सिर्फ मनुष्यों के लिए ही सुख पैदा नहीं किये, बल्कि प्राणीमात्र के लिए किये हैं।

हम आनंद से परिवेष्ठित हैं

वास्तव में देखा जाय, तो जिसे हम 'आनंद' कहते हैं, वह हमारा निजरूप हैं। हमारा स्वरूप ही आनंद है। इसलिए कोई प्राणी ऐसा नहीं हो सकता कि बिना आनंद के एक क्षण भी जीवित रह सके। आनंद का भान हमेशा नहीं होता, परंतु उसका अनुभव तो प्रति क्षण होता है। अभी हम सब लोग यहाँ खुली हवा में बैठे हैं, तो हमें कितना आनंद हो रहा है। लेकिन जरा नाक बंद करके देखिये, तो एकदम घबड़ा जायँगे। यह हवा हमें सतत मिल रही है, उसके आनंद का हमें अनुभव हो रहा है, पर यह भान नहीं होता कि हमें इस वक्त बहुत आनंद हो रहा है। लेकिन अगर हमें बिना हवा की कोठरी में बंद किया जाय, तो मालूम हो जायगा कि बाहर हवा का कितना आनंद था। जिसके फेफड़े कमजोर हुए हों, जिसे क्षयरोग हुआ हो और साँस लेना मुश्किल हो गया हो, उसे मालूम होगा कि जब बीमारी नहीं हुई, तब मुझे सांस लेने का कितना आनंद था। बीमार आदमी सुबह उठकर अपने आनंद का वर्णन करता है कि कल रात को उसे अच्छी नींद आयी। दूसरे लोगों को तो उसका कोई आनंद महसूस नहीं होता, क्योंकि उनके लिए वह हमेशा की चीज है। लेकिन बीमार को कई दिनों से अच्छी नींद नहीं आ रही थी और फिर आयी, तब उसे भान हुआ कि कितनी अच्छी नींद आयी।

इस तरह हम आनन्द से बिल्कुल परिवेष्ठित हैं, हमारे आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, अन्दर-बाहर, सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द है, लेकिन हमें आनन्द का प्रतिक्षण भान नहीं होता। यही समझिये कि जिन क्षणों दुःख नहीं, उन सभी क्षणों में आनन्द-ही-आनन्द है, कहीं दुःख का अनुभव हुआ, तो कभी उतना ही याद रह जाता है। किन्तु आनन्द चौबीसों घण्टे चलता है, लेकिन हम उसे याद नहीं करते और उसका हमें भान ही नहीं होता।

आनन्द की प्राप्ति नहीं, शुद्धि करनी है

आनन्द हमारा स्वरूप ही है, मनुष्य का ही नहीं, बल्कि गोबर में पड़े जंतु को भी आनन्द प्राप्त है, क्योंकि उसका स्वरूप ही वह है। इसलिए आनन्द की प्राप्ति में कोई विशेषता नहीं, उसकी शुद्धि में ही विशेषता है। किसी को बीड़ी पीने में आनन्द आता है, किसी को दूध पीने में, किसी को फलाहार करने में, किसी को भूखे को खिलाने में, तो किसी को एकादशी के दिन फाका करने में आनन्द आता है। इस तरह बीड़ी पीने से लेकर फाका करने और दूसरे को खिलाने तक आनन्द के कई प्रकार हैं। फिर भी उसका स्वरूप एक ही है। उससे एकाग्रता होती है। आप ने देखा होगा कि बीड़ी पीनेवाले कितने एकाग्र घूमते हैं। एक शख्स बाबा के स्वागत में आया और बीड़ी पीते हुए आया। अक्सर लोग ऐसा नहीं करते, क्योंकि कुछ शर्म आती है, पर उस दिन जब हमने उस भाई को देखा, तो बड़ी खुशी हुई। इसलिए कि यह शख्स अपने आनन्द में शर्म को भी भूल गया, वह आनन्द में इतना एकाग्र हो गया कि सब कुछ भूल गया। सारांश, आनन्द चाहे बीड़ी पीने से पैदा हुआ हो या सद्ग्रन्थ पढ़ने से, उसका स्वरूप एक ही है। मनुष्य के जीवन में जितनी शुद्धि होगी, उतना ही आनन्द शुद्ध होगा। इसलिए मनुष्य का ध्येय आनन्द की शुद्धि, न कि आनन्द की प्राप्ति है।

आनन्द-प्राप्ति के प्रयत्न में दुःख

कुछ बड़े-बड़े वेदान्ती भी कहते हैं कि आनन्द हरएक को चाहिए, इसलिए आनन्द की प्राप्ति एक बड़ा ध्येय है। लेकिन वे विचार को समझे नहीं। वास्तव

में आनन्द की प्राप्ति के लिए किसी को कुछ भी श्रम नहीं करना पड़ता है। बल्कि अगर कोई आनन्द के लिए कोशिश करता रहेगा, तो दुःख ही पायेगा। एक भाई कहते थे कि 'हमें नींद नहीं आती'। मैंने पूछा कि 'फिर क्या करते हो', तो वे बोले : 'नींद के लिए खूब प्रयत्न करता हूँ, तो भी नहीं आती।' मैंने कहा : 'प्रयत्न करते हो, इसीलिए नींद नहीं आती। प्रयत्न ही नींद के खिलाफ है। इसलिए प्रयत्न छोड़ दोगे, तो नींद आयेगी।' इसी तरह मनुष्य आनंद के लिए जितनी कोशिश करता है, उतना दुःख ही पाता है। हम देख रहे हैं कि सभी लोग इसी कोशिश में लगे हैं कि आनंद प्राप्त करें। लेकिन परिणाम यह होता है कि बहुतों को हम रोते हुए पाते हैं। 'मेरे जीवन में केवल आनंद ही आनंद है, परिशुद्ध आनंद है,' ऐसा कहनेवाला मनुष्य दुर्लभ ही है। इस तरह आनंद की प्राप्ति के लिए प्रयत्नकर दुःख प्राप्त करने के बजाय लोग यह समझें कि आनंद तो अपने बाप का हक है, वह अपने पास है ही, उसे शुद्ध करना चाहिए। हमारा स्वच्छ श्वासोच्छ्वास चल रहा है, यह पहला आनंद है। इसलिए आनंद चौबीसों घंटा चल रहा है, किंतु हमें उसे शुद्ध करना है। कुल समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र इसी की चिंता में हैं कि आनंद को शुद्ध किया जाय, लोगों को स्वच्छ रीति से आनंद मिले।

शुद्ध आनन्द खुद को काटता नहीं

शुद्ध आनन्द का यह लक्षण यह है कि वह स्वयं को नहीं काटेगा। जो आनंद खुद को ही काटेगा, वह शुद्ध आनंद नहीं है। बीड़ी पीनेवाला बड़े आनंद से उसे पीता है, पर थोड़े ही दिनों में फेफड़े खराब हो जाते हैं। आजकल तो डॉक्टर यहाँ तक कहते हैं कि उससे 'कैन्सर' होता है। याने वह बीड़ी पीने का आनंद आनंद को ही काटता है। इसीलिए मैं यह सीधी-सादी व्याख्या करता हूँ कि 'जो आनंद, आनंद को ही काटता है, वह शुद्ध आनंद नहीं।' हम ऐसा बहुत-सा आनन्द प्राप्त करते हैं, जो आनन्द को ही काटता है। रात को जागने, सिनेमा देखने या उपन्यास पढ़ने से आँखें बिगड़ जाती हैं, तो पढ़ने-देखने का आनंद नष्ट हो जाता है। इस तरह यही कहना होगा कि मूल आनंद के

लिए घातक आनंद हमने भोगा। शराब पीने से दिमाग खराब हो जाता है, पैसा खत्म होता है, आस-पास के लोगों के साथ झगड़ा होता है, पत्नी से बनती नहीं, बच्चे प्यार नहीं करते। इस तरह शराब पीने के आनंद ने आनंद पर ही प्रहार कर दिया। इसलिए फिर 'संयम' का सवाल आता है। तरकारी में भी नमक डालने की एक मात्रा होती है। उतना ही डालने पर स्वाद आता है। यह नहीं कि जितना ज्यादा नमक डालेंगे, उतनी ही वह अच्छी लगेगी। उसकी एक निश्चित मात्रा रहने पर ही आनन्द टिकता है। एक भाई को मीठा खाने का शौक था। उन्होंने पत्नी से कहा कि मूँगफली के लड्डू बना दो। पत्नी ने अच्छी तरह लड्डू बनाये, पर वे बोले: 'यह फीका मालूम होता है, गुड़ कम है।' दूसरे दिन उनकी पत्नी ने ऐसा सुंदर लड्डू बनाया कि वे खुश ही हो जायँ। किन्तु उन्होंने कहा: 'आज कुछ थोड़ा-सा ठीक है।' पत्नी ने कहा, 'थोड़ा-सा ही ठीक है? आज तो मैंने इसमें मूँगफली डाली ही नहीं है, सिर्फ गुड़ का ही लड्डू बनाया है। अब इससे ज्यादा मीठा मैं नहीं बना सकती।' याने वह ऐसा मूर्ख था कि पहचान न सकता था कि लड्डू में गुड़-ही-गुड़ है। मीठा खाते-खाते उसकी रुचि इतनी बिगड़ गई थी कि मीठे ने ही मीठे को मारा। इसलिए जब हम आनन्द की मात्रा रखते हैं, तब वह आनन्द अपने को काटता नहीं है।

संयम आनन्द का प्राण

एक गरीब भाई ने लॉटरी में एक रुपया भेजा। उसे जब मालूम हुआ कि हजार रुपये का इनाम मिला है, तो इतना आनन्द हुआ कि शॉक (धक्के) से वह मर गया। उस आनन्द ने आनन्द को ही काट दिया। अतएव आनन्द की शुद्धि के लिए आनन्द को एक मात्रा में रखना पड़ता है। कुछ लोग समझते हैं कि जितना उत्पादन बढ़ेगा, उतना ही आनन्द भी बढ़ेगा, लेकिन आज अमेरिका में तो उत्पादन खूब होता है, फिर भी वहाँ आनन्द बढ़ा नहीं। वहाँ आत्महत्याएँ खूब होती हैं, लोग डरे हुए हैं और सदासर्वदा लड़ाई की तैयारी करते रहते हैं याने केवल आनन्द बढ़ाते चले जाने से टिक नहीं सकता। आनन्द की सीमा

से ज्यादा आनन्द भोगने की कोशिश करना आनन्द को ही काटना है। यही कारण है कि आनन्दशुद्धि के लिए शास्त्रकार हमेशा संयम सिखाते हैं। चीज मीठी लगे, तो भी ज्यादा न खानी चाहिए, क्योंकि उससे पेट बिगड़ेगा, हम बीमार पड़ेंगे और आनन्द कटेगा। लोग समझते हैं कि संयम करने के लिए कहा, तो दुःख की बात हो गयी। किन्तु संयम में आनन्द न समझना निरी मूर्खता है। संयम आनन्द का प्राण है। इसलिए समाज में ऐसी रचना करनी चाहिए कि संयम की मात्रा और युक्ति समाज को सिखायी जाय। जो समाज संयम सीखेगा, वह आनंद पायेगा। वह समाज अपने आनंद को स्वयं न काटेगा। इस तरह जब संयम के साथ आनंद होता है, तभी आनंद की शुद्धि होती है। आनंद की प्राप्ति के लिए कुछ करना नहीं है, जो कुछ करना है, आनंद की शुद्धि के लिए ही करना है।

आनंद में दूसरों को सहयोगी बनायें

आनंद की शुद्धि के लिए दूसरी बात, आनंद में सबको सहभागी बनाना है। मुझे यहाँ सुंदर हवा मिल रही है, तो आनंद होता है। किंतु आपको हवा न मिले और मैं आपको छटपटाते हुए देखता हूँ, तो मुझे सुंदर हवा प्राप्त होने का आनंद नहीं मिल सकता। मैं खाने के लिए बैठा हूँ, थाली में सुंदर खाना परोसा है; पर सामने कोई भूखा रोता हुआ आये, जिसे तीन दिनों से खाना न मिला हो, तो वह सुंदर मिष्टान्न मीठा नहीं लग सकता। इसलिए शुद्धि आनंद तभी मिलता है, जब हम अपने आनंद में दूसरों को शरीक करें। हम दूसरों को शरीक किये बिना अकेले ही भोगेंगे, तो वह आनंद अपने को ही काटता है।

त्याग के कारण माँ के जीवन में आनंद

हमें आनंद-शुद्धि करनी होगी और उसके लिए दो काम करने होंगे : (१) आनंद में, भोग में संयम रखना और (२) आनंद सबको बाँटकर भोगना। माँ पहले बच्चों को खिलाती है और फिर खुद खाती है, इसलिए उसे जो आनंद मिलता है, वह शुद्ध आनन्द है। अगर कल कोई ऐसी अम्मा निकले, जो

अपने बच्चों से कहे कि 'पहले मैं खाऊँगी और बाद में तुम्हें खिलाऊँगी; क्योंकि मैं ही कमजोर हो जाऊँगी, तो तुम्हारी सेवा कौन करेगा ?' तो उसे क्या कहा जायगा ? लेकिन यही बात हम लोग करते हैं, जो 'देशसेवक' कहलाते हैं। लोगों से हम कहते हैं कि हम सेवकों को अच्छा खाना न मिलेगा, तो आपकी सेवा कौन करेगा ? देशसेवकों की यह युक्ति आज माँ सीखेगी, तो कौन कवि उस पर काव्य लिखेगा ? आज माँ के जीवन में इसीलिए शुद्ध आनंद है कि वह बच्चों के लिए त्याग करती है।

सारांश, आनंद-शुद्धि के दो बड़े सिद्धांत है कि (१) दूसरों को बाँटकर भोगो और (२) जो भोगना है, संयम से भोगो। दूसरों को बाँटने के बाद भी अगर हम हद से ज्यादा भोगते हैं, तो वह भी न चलेगा। उसका भी परिणाम दुःख में होगा। इसलिए बाँटकर भोगना है, तो वह भी संयम से भोगना चाहिए। इन दोनों बातों के बिना आनंद-शुद्धि न होगी। अगर लोग आनन्द प्राप्ति में ही लगेंगे, जो करना चाहिए उसे न करेंगे और जो करने की जरूरत नहीं, वह करेंगे, तो आनंद नहीं, दुःख की ही प्राप्ति होगी।

मधुकरै (कोयम्बतूर)
२९-९-'५६.

गांधीजी का स्मरण

दुनिया की सेवा के लिए भगवान् महापुरुषों को भेजता है। यह उसका धंधा ही है। 'जब कभी जरूरत होगी, महापुरुषों को भेजा करूँगा', यह उसने गीता में कहा है। उसने तय किया है कि 'दुनिया में धर्मग्लानि होने पर महापुरुष आकर लोगों के चित्त को रास्ते पर ले आयेंगे।' यह हम देखते भी हैं। आखिर इस तरह का धंधा परमेश्वर को क्यों करना पड़ता है? इसका उत्तर अभी किसी को नहीं मिला। वह ऐसा इंतजाम क्यों नहीं करता कि बार-बार महापुरुषों को भेजना न पड़े और यह तकलीफ न हो? इसलिए वह ऐसी कायम रखने की व्यवस्था कर दे, जिससे लोग हमेशा रास्ते पर रहें। वह ऐसा नहीं करता और क्यों नहीं करता? यह उसकी मर्जी की बात है। इसलिए यह कोशिश वैज्ञानिकों ने की है। वैज्ञानिक कोशिश करते हैं कि कोई एक यंत्र ऐसा मिले या तैयार कर सकें, जो एक बार शुरू करें, तो सदा के लिए चले। किंतु वह प्रयत्न अभी सधा नहीं। छोटी-छोटी घड़ियाँ चौबीसों घंटे चलती हैं, उन्हें बीच में चाबी देने की जरूरत नहीं पड़ती है, चौबीस घंटे के बाद फिर से चाबी देनी पड़ती है। कुछ घड़ियाँ ऐसी भी हैं, जिन्हें हफ्ते में एक दिन चाबी देनी पड़ती है। लेकिन ऐसी घड़ी, जो कि एकबार चाबी देने पर रोजेकयामत तक चले, अभी तक नहीं बनी। जैसे वैज्ञानिकों को यह नहीं सधा, वैसे ही ईश्वर को भी वह नहीं सधा, यही दीखता है। अथवा उसे ऐसा करने में मजा आता होगा। जैसे समुद्र में एक लहर उठती है, फिर नीचे जाती है, दूसरी उठती है, फिर नीचे जाती है, इसी तरह चैतन्य का भी खेल चलता है। 'ऊपर उठना फिर नीचे जाना, फिर ऊपर उठना और नीचे जाना', चैतन्य का स्वभाव ही है। लेकिन ऊपर जाते और नीचे आते हुए भी आखिर वह ऊपर ही जा रहा है। जिन्हें इतिहास का अनुभव है, वे कहते हैं कि इस तरह दुनिया का विकास होता जा रहा है।

संतपुरुष और युगपुरुष

महापुरुषों के दो प्रकार होते हैं : एक, ऐसे महापुरुष, जो हमेशा के लिए कुछ-न-कुछ हिदायतें देते और लोगों को अच्छे मार्ग पर रखने की कोशिश करते हैं। ऐसे महापुरुष 'संतपुरुषों' के नाम से पहचाने जाते हैं। वे लोगों को कुछ उपदेश देते हैं। कुछ लोग उनका उपदेश पूरी तरह से अमल में लाते हैं, तो कुछ लोग उनकी चंद बातें ही मानते हैं। जो मानते हैं, वे उनका लाभ उठाते हैं और जो नहीं मानते, वे लाभ नहीं उठा पाते। किन्तु संतपुरुषों का किसी पर बोझ नहीं है। वे यही सोचते हैं कि हमारी आज्ञा न चलनी चाहिए। उन्हें यह अच्छा नहीं लगता कि उनकी सत्ता किसी पर चले। ऐसे संतों को परमेश्वर भेजा करता है। तभी दुनिया का यंत्र चलता है। इन साधु पुरुषों के जरिये उस यंत्र में कुछ-न-कुछ 'लुब्रीकैन्ट' (स्नेहन) डाला जाता है और बिना घर्षण के वह चलता है। इनके सिवा वह कुछ ऐसे भी महापुरुष भेजता है, जो दूसरे प्रकार के होते हैं। वे एक सामान्य नीति का उपदेश देते हैं पर उससे जिस जमाने की जो आवश्यकता होती है, उसकी पूर्ति होती है। जब लोगों की आवश्यकता और साधु का उपदेश, दोनों का मेल होता है, याने जब आवश्यकता की पूर्ति होती है, तब वह पुरुष 'युगपुरुष' हो जाता है। महात्मा गांधीजी ऐसे ही युगपुरुष थे।

अंग्रेजों का भयानक प्रयोग

अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को अपने हाथ में लेने के बाद एक बड़ा भारी पराक्रम किया। इसके पहले किसी ने भी ऐसा प्रयोग करने की हिम्मत न की थी। जिनपर सत्ता चलायी गयी, और जिन्होंने सत्ता चलायी, दोनों के लिए वह भयानक प्रयोग रहा। उन्होंने सारे-के-सारे देश को निश्शस्त्र बना दिया। किसी भी बादशाह ने ऐसा प्रयोग नहीं किया, जो दोनों के लिए खतरनाक हो। जो सत्ता चलाना चाहते हैं, उनपर रक्षा की जिम्मेवारी आती है। अगर बाहर से हमला हुआ, तो लोग प्रतिकार करने के लिए तैयार नहीं, भयभीत थे। अतः उनके लिए वह प्रयोग खतरनाक था। जिनपर वह प्रयोग किया गया, उनके लिए भी

तो वह खतरनाक था ही, क्योंकि वे निःशस्त्र होने से खुद का बचाव भी नहीं कर सकते थे। लेकिन ऐसा खतरनाक प्रयोग उन्होंने किया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तान के लोगों में सिर उठाने की ताकत न रही, वे निरंतर भयभीत रहे। प्रजा को अभयदान देना, राजा का कर्तव्य है। हमारी राज्य-व्यवस्था में अभयदान को बड़ा महत्व दिया गया है। किंतु अंग्रेजों के इस भयंकर प्रयोग से हिन्दुस्तान की कमर ही टूट गयी।

गांधीजी का असहयोग का मार्ग

अब सिर उठाने की आवश्यकता निर्माण हुई। उसके लिए कोई निःशस्त्र शक्ति चाहिए थी। हिन्दुस्तान में ऐसी आवश्यकता निर्माण न होती, तो उसे सदा के लिए सिर नीचे रखना पड़ता, गुलाम रहना पड़ता। ऐसे मौके पर महात्मा गांधी आये। वे कहने लगे : 'आत्मा में ताकत है, शस्त्र की जरूरत नहीं। सरकार को हमने ही सिर पर उठाया है; अगर चाहेंगे, तो फिर से नीचे पटक सकते हैं। प्रजा के सहयोग के बिना कोई भी सरकार सत्ता नहीं चला सकती। इसलिए हम सब एक हो जायँ, तो एक माँग करेंगे और अगर वह पूरी न हुई, तो सत्ता के साथ सहयोग न करेंगे।' यह संतपुरुष की शक्ति थी। वे कहते थे : 'हमें असहयोग के लिए जितना सहना पड़ेगा, उतना हम सहेंगे। यह शक्ति संतपुरुष में ही हो सकती है।

गांधीजी ने जीवन बदल दिया

जहाँ लोगों की आवश्यकता महापुरुष के सदुपदेश से पूरी होती है, वहाँ वे संतपुरुष 'युगपुरुष' होते हैं। यह घटना महात्मा गांधी के बारे में अक्षरशः घटी। हिंदुस्तान की परम ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए किसी एक शक्ति का निर्माण आवश्यक था। मैं बहुत कहता हूँ कि महात्मा गांधी न होते, तो दूसरा कोई महापुरुष खड़ा होता, क्योंकि ईश्वर की योजना में यह नहीं हो सकता कि इतना बड़ा देश सदा के लिए गुलाम रहे। इसलिए इस शक्ति का आविष्कार होना लाजिमी था। इसीलिए भगवान् ने गीता में कहा है : 'तू निमित्तमात्र हो।' वैसे ही भगवान् ने महात्मा गांधी

को निर्माण किया, उसका परिणाम यह हुआ कि मिट्टी में से मनुष्य निर्माण हुए और मनुष्य से देवता-निर्माण। वह पुरुष अकेला नहीं था, उसने सबको प्रकाश दिया और छोटे-छोटे बच्चे भी हिम्मत के साथ स्वराज्य का मंत्र बोलने लगे। ऐसा युगपुरुष जब आता है, तो हमारे जीवन के लिए बहुत लाभदायक होता है। उससे जीवन का विकास होता है।

बहुतों को आश्चर्य होता है कि गांधीजी ने जीवन की कितनी शाखाओं में विविध हिदायतें दी हैं। समाज-शास्त्र के बारे में उन्होंने काफी कहा है। राजनीति के बारे में उन्हें कुछ कहना है ही। तालीम के बारे में वे कुछ कहते ही हैं। ग्राम-उद्योग टूटने नहीं चाहिए, यह भी उनका कहना है। राष्ट्रीय एकता और भाषा की एकता के बारे में भी वे बोलते थे। छूत-अछूत भेद मिटने की बात उन्हें कहनी थी। इस तरह अनेकविध हिदायतें, जीवन की विविध शाखाओं में उन्होंने दी हैं। दुनिया के तरह-तरह के ग्रंथ वे पढ़ते होंगे और उसमें से यह विचार निकले होंगे, ऐसी बात नहीं है। यह विद्या पुस्तकों में नहीं होती। यह शक्ति उसके पास होती है, जो आत्मा का स्वरूप पहचानता है। उसे यह विचार सहज ही सूझता है।

मार्गदर्शक और सेवक

शंकराचार्य महान् पुरुष हो गये। रामकृष्ण परमहंस भी महान् थे। उन्होंने जीवन की सब तरह की बातें लोगों को सिखायीं और उनके जीवन में परिवर्तन ला दिया। वे सूर्यनारायण के समान दूर रहकर प्रकाश देते थे। शंकराचार्य ऐसे ही ऊँचे आकाश में दीखते हैं। रामकृष्ण भी एक तेजस्वी तारे के समान आकाश में रहकर प्रकाश देते हैं। हमें सूर्य की किरणों से आरोग्य मिलता है, लेकिन शरीर के किसी हिस्से में सूजन आने पर उसे सेकना हो, तो उनसे लाभ न होगा, उसके लिए अग्नि ही चाहिए, जो पास आकर, दास बनकर, आपकी सेवा करे। सूर्यनारायण तो आपका गुरु बनता है, दास नहीं। वह प्रकाश देगा और उसमें आपको अपनी बुद्धि से काम करना होगा। वह आपका मार्गदर्शक बनता है, सेवक नहीं। किन्तु अग्नि आप का सेवक बनती है, आपके

पास आती है, यहाँ तक कि मनुष्य अग्नि को पैदा भी कर सकता है, पहले काष्ठ घिस कर अग्नि पैदा किया जाता था, अब दियासलाई रखी जाती है और तेल डालकर आग लगाते हैं, जब आप चाहें, तब आपके पास वह आ सकती है, आप उसे अपनी छाती पर, जेब में, हमेशा रख सकते हैं। अग्नि आपकी मित्र है, फिर भी मार्गदर्शक होती है और मार्गर्शक होते हुए भी आपकी सेवक है यह एक बोलने की भाषा है। वैसे सूर्य भी सेवा करता है, पर दूर रह कर।

फिर भी अग्नि में जो शक्ति है, वह नहीं होती, अगर सूर्यनारायण न होता। इसी तरह गांधीजी जैसे युगपुरुष नहीं हो सकते, अगर शंकराचार्य जैसे महापुरुष न होते। वे दूर और उदास रहकर दुनिया की जो सेवा करते हैं, उसकी कीमत कम नहीं, बहुत ज्यादा है। मैं सत्पुरुषों की तुलना नहीं कर रहा हूँ। कौन ऊँचा है और कौन नीचा? यह नहीं कहता, सत्पुरुषों के प्रकार बता रहा हूँ। दोनों के अपने-अपने ढंग होते हैं।

श्रीकृष्ण अनोखे महापुरुष

लेकिन महात्मा गांधी से किसी को कोई डर मालूम नहीं होता था। बच्चों को वे अपने जैसे ही बच्चे लगते थे, इसलिए वे उनके साथ खेलते थे। बहनें भी समझती थीं कि ये अपनी एक बहन हैं। इसलिए जैसे बहनें बहनों के साथ बातें करती हैं, वैसे ही खुलकर उनके साथ बातें करतीं। राजनीतिज्ञों को लगता था कि वे भी एक राजनीतिज्ञ हैं, इसलिए उनके साथ चर्चा करते समय वादविवाद करते थे, ये थे मूर्ख और वह था ज्ञानी। फिर भी वे उनके साथ झगड़ा करते थे। गांधीजी उनकी बात कभी-कभी कबूल भी करते थे। शास्त्र में कहा है कि मूर्ख के साथ ऐसा बर्ताव करना चाहिए कि वह उसकी मर्जी के खिलाफ नहीं हो। वे इन मूर्खों के काम करते थे। इसलिए लोगों को ऐसा भी भास होता था कि वे हमारे बीच के ही एक हैं। उनकी अक्ल और उनका अनुभव दूसरे लोगों में नहीं था, फिर भी लोग उनके साथ बातें, चर्चाएँ और वाद भी कर सकते थे। उनकी बात माननी ही है, ऐसा नहीं था। उनपर गुस्सा भी करते और रूठ भी जाते थे। इस तरह यह एक बिलकुल अपना ही कुटुम्बी मनुष्य है, ऐसा भास लोगों को होता।

ऐसा ही एक पुरुष पाँच हजार साल पहले यहाँ हो गया। उसका नाम था 'श्रीकृष्ण'। उसमें सूर्यनारायण की भी योग्यता थी और अग्निनारायण की भी। अर्जुन उससे कह रहा है : 'अरे, लड़ाई का मौका है, सारथी की जरूरत है।' कृष्ण ने कहा : 'हाँ, मैं तैयार हूँ, तुम्हारा सारथी बनूंगा।' घोड़ों की सेवा के लिए भी वे तैयार थे। याने अर्जुन को यह मालूम भी नहीं होता था कि यह अलग मनुष्य है। यह शक्ति शायद महात्मा गांधी में भी नहीं थी। महात्मा गांधी से हमारी यह कहने की हिम्मत न होती थी कि 'बापू यहाँ गंदा हो गया है, जरा झाड़ू लगाइये।' इतना अंतर तो रह ही जाता था।' यद्यपि गांधीजी ने भंगी का काम किया और झाड़ू भी लगाया है। लेकिन यह भान रहता ही था कि झाड़ू हमें लगाना है, उसके लिए उन्हें न कहना चाहिए। पर श्रीकृष्ण के लिए यह भी भान भूल गया। इसीलिए श्रीकृष्ण के समान श्रीकृष्ण ही हो गये। सारे हिन्दुस्तान में उसे 'गोपाल-गोपाल' ही कहते हैं। याने आप-आप नहीं, तू-तू कहते हैं। लगता है, मानो अपना दोस्त ही हो। इसलिए उसके साथ झगड़े भी करते थे, आपस में लड़ाइयाँ भी चलती थीं और उसे ऐसे काम देते थे, जो मामूली नौकर को दिया जाता था। यह नम्रता की परिसीमा हो गयी, जहाँ महापुरुष के महापुरुषत्व का ख्याल किसीको नहीं रहता। आखिर में जब अर्जुन ने भगवान् का विश्वरूप देखा, तो घबड़ा गया। तभी उसे यह भान हुआ कि जिसके साथ वह बोल रहा है, कितना महान् है। जिसे अग्नि समझा था, वह अग्नि नहीं, सूर्यनारायण रहा। हमने इसका अपराध किया, अपना सखा कहा। फिर भी वह कहता है : 'तू इतना महान् है, तो भी मैं तुझे सखा मानता हूँ। वह 'तू ही' कहता है, 'आप-आप' नहीं। गीता में हम उसे यह कहते पाते हैं कि 'मैं गुनहगार हूँ, मुझे माफ कर' "एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्।' सिर्फ एक ही बार वह "को भवान्" आप कौन हैं, कहता है और एक बार क्षमा मांग लेने के बाद वह 'तू-तू' ही कहता है। यह महत्ता भगवान् कृष्ण में थी।

'भारतीयार' ने 'कंडन्' पर एक काव्य लिखा है। वह कभी माँ बनकर सेवा

करता है। वह कभी बेटा, कभी भाई, कभी बाप, कभी सखा, कभी सखी, तो कभी गुरु, तो कभी शिष्य बनता और कभी दुश्मन भी हो जाता है।

कृष्ण के जैसे गांधी जी

भारत का यह बड़ा भाग्य है कि इस देश में ऐसे महापुरुष हो गये। उसी भगवान् श्रीकृष्ण की कोटि के महात्मा गांधी थे। याने उनके लिए कभी किसी को संकोच न मालूम होता था। परिणाम यह हुआ कि जीवन के हरएक विषय में लोग उनसे पूछते थे। जब कभी आश्रमवासी का पेट दुखता तो वह बापू से जाकर कहता। मैं मित्रों से कहता : 'अरे, तुम कैसे लोग हो, मामूली पेट दुखता है, तो उसके लिए भी बापू से पूछते हो।' लेकिन वे सुनते न थे, छोटी-छोटी बातों के लिए उनके पास पहुँचते थे और वे भी सारा काम छोड़कर एक-दो मिनट उनके लिए देते। अभी उनके लंबे-लंबे पत्र छप रहे हैं, उनमें भी आप देखेंगे कि ये ही बातें लिखी हैं : 'फलाना औषध लिया या नहीं, बीमारी कौन-सी है?' इस तरह वे दूसरों के जीवन के लिए सोचते थे। यह उनका गुण नहीं, लोगों का गुण था, क्योंकि लोग भी तरह-तरह के सवाल उनसे पूछते थे। इसलिए बापू को झख मारकर विचार करना पड़ता था। क्या हम शंकराचार्य से यह पूछते कि हमारा पेट दुख रहा है, हम क्या करें? लेकिन बापू की यह विशेषता थी।

गांधीजी की हिदायतों का चिंतन करें

ऐसा एक महापुरुष भारत में हो गया, यह हमारा भाग्य है। उन्हें गये अब आठ साल हो रहे हैं। उनको हम सब कभी भूल नहीं सकते। उन्होंने हमें सब कुछ दिया। किसी एक बड़ी बात का वे आग्रह रखते थे और वह यह है कि 'हरएक को अपनी बुद्धि से काम करना चाहिए, दूसरे की बात प्रमाण मानकर नहीं।' आज बापू हमारे बीच नहीं, उनके उपदेश ही हमारे पास हैं। हमारा कर्तव्य है कि जो प्रकाश हमें उन्होंने दिया, उसमें, लेकिन अपने पाँवों, हम चलें। आज हिन्दुस्तान के सामने यह समस्या है कि

उस 'राष्ट्र-पिता' ने हमें जो सब प्रकार के जीवन विषयक विचार और हिदा-यतें दी हैं, क्या उनका हम वैसा उपयोग करते हैं ? यह प्रश्न हमेशा हमारे सामने उपस्थित रहेगा। इसका उत्तर हमें देना होगा। हम उनका स्मरण करते हैं, तो अपने पर ही उपकार करते हैं। उनके स्मरण से हमारा काम बनेगा, यही हमें सोचना चाहिए। हम कहना चाहते हैं कि हिन्दुस्तान के सामने आज ऐसे मसले नहीं, जिनका उत्तर महात्मा गांधी ने कहीं न दिया हो। आगे ऐसे प्रश्न आ सकते हैं लेकिन अभी तक नहीं आये। इसलिए हमें उनसे मिली हिदायतों का चिंतन करना चाहिए।

गांधीजी का कालदर्शन : नयी तालीम

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद क्या-क्या मुश्किलें आयेंगी, इसका चिंतन वे दस साल पहले करते थे। स्वराज्य के दस साल पहले उन्होंने 'नयी-तालीम' देश को दी और कहा कि 'हिन्दुस्तान को यह मेरी सबसे आखिरी और सबसे श्रेष्ठ देन है।' स्वराज्य प्राप्त हुए सात-आठ साल हुए, तब ध्यान में आ रहा है कि देश को शायद नयीतालीम का उपयोग हो। अब यह इसलिए सूझा कि कॉलेज और हाईस्कूल के लड़के अविनयी बन गये हैं। जब हमें यह दर्शन हुआ कि वे बात नहीं मानते, अनुशासित नहीं, उच्छृङ्खल बन गये और देश के काम के लायक नहीं रहे, तब नयी तालीम सूझ रही है।

अंधे को तब दर्शन होता है, जब सामने खंभा हो और वह उससे टकराये। आँखवालों को तब दर्शन होता है, जब वह दूर से ही खंभा देखे। हम ऐसे अंधे हैं कि एक आँखवाले ने हमें बताया कि भाई यहाँ खंभा है, तो भी हम भूल गये, और टकराये। १५ अगस्त का दिन था, पहला ही स्वातन्त्र दिवस था। एक संस्था में हमारा व्याख्यान हो रहा था, हमने कहा था कि नंगे राज्य में पुराना झण्डा एक क्षण के लिए भी न चलेगा। अगर नये राज्य में पुराना झंडा रहे, तो मतलब यही होगा कि पुराना ही राज्य चल रहा है। जैसे नये राज्य में पुराना झंडा नहीं चल सकता, वैसे ही नये राज्य में पुरानी तालीम भी नहीं चल सकती है। लेकिन हम लोगों ने वह चलायी। हमें अब भान हो रहा है कि उससे कोई लाभ नहीं।

युगानुकूल सूत्रयज्ञ

दूसरी मिसाल मैं देता हूँ। गांधीजी ने कई बार कहा था कि 'देश की उन्नति के लिए खादी और ग्रामोद्योग अत्यन्त जरूरी हैं, इसलिए हरएक को कातना चाहिए।' जैसे इंगलैंड के हरएक बच्चे को तैरना आना चाहिए, क्योंकि वह देश समुद्र-परिवेष्टित देश है। इसी तरह जिस देश में जमीन का रकबा कम और जनसंख्या ज्यादा है, वहाँ हर बच्चे को कातना सिखाना चाहिए। यह देश का 'डिफेन्स' (संरक्षण) है। भगवान् करे, विश्वयुद्ध न हो और हिन्दुस्तान उससे बचे। लेकिन अगर विश्वयुद्ध हो जाय और मान लीजिये, एक बम बम्बई की मिल पर, दूसरा अहमदाबाद की मिल पर और तीसरा इस नगरी पर गिरे, तो सारे-के-सारे मजदूर गाँवों में भाग जायेंगे। वे गाँव-गाँव से वहाँ पेट भरने के लिए ही आये हैं, मरने के लिये नहीं। तब पता चलेगा कि हिन्दुस्तान की हालत क्या होगी? लोगों को नंगे रहने की नौबत आयेगी। इसलिए पहला काम और सबसे बड़ा काम सरकार को यही करना होगा कि बड़े-बड़े शहरों के रक्षण के लिए शस्त्रशक्ति (आर्मामेण्ट) खड़ी करनी होगी। और उसके लिए इतना खर्च करना पड़ेगा कि गरीबों की कोई सेवा ही न हो सकेगी। इसलिए इसमें हम कोई लाभ नहीं देखते। इसके बदले अगर हर बच्चे को आप कातना सिखायें, तो देश बच जायगा।

इसे एक यज्ञ समझकर करना चाहिए। प्राचीन काल में जंगल जलाना यज्ञ माना जाता था। पर आज जंगल बढ़ाना है, इसलिए पेड़ लगाना यज्ञ होगा। इसी दृष्टि से हम कहते हैं कि आपको टोकन के तौर पर कुछ समिधा काटनी चाहिए। पहले विद्यार्थी गुरु के घर समिधा काटकर ले जाता और कहता कि मैं आपकी सेवा में आया हूँ। याने जंगल काटना भी एक सेवा मानी जाती थी। इस तरह जमाने-जमाने की माँग के अनुसार यज्ञ बदलता है। महात्मा-गांधी ने कहा था कि हमारे देश की रक्षा के लिए हरएक को कातना आना चाहिए। और देश के सामने मिसाल रखने के लिए रोज बिना भूले वे कातते थे। और भगवान् की कृपा से आखिरी दिन भी काता। अगर भगवान् चाहता,

तो उनका वह व्रत तोड़ सकता था और शाम को पाँच-साढ़े-पाँच के बदले, दो-तीन बजे ही उठा लेता, लेकिन ईश्वर भक्त का बाना नहीं टूटने देता। इसलिए उस दिन भी उनका कातना हुआ। यह उनकी मिसाल हमें बलवान् बना सकती है।

भूदान-यज्ञ गांधीजी की राह पर!

मैंने कहा कि ऐसी समस्या खड़ी हो सकती है जहाँ उनका उपदेश काम न भी दे, पर आज तक ऐसा नहीं हुआ। इतना ही नहीं, जमीन के बारे में अपने खयाल उन्होंने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में 'फिशर' के साथ हुई चर्चा में बताये हैं। 'स्वराज्य के बाद जमीन का क्या होगा?' यह सवाल उनसे पूछा गया तो उन्होंने कहा था: 'जमीन बाँटी जायगी, नहीं तो लोग कब्जा कर लेंगे।' उन्होंने जो हिदायतें दीं, उनका बहुत सौम्य उपयोग कर हमने काम शुरू किया है। इसलिए बाबा को इसका अत्यंत समाधान है कि वह अपना कर्तव्य कर रहा है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि जमीन पर सबका समान अधिकार होना चाहिए। इसमें कोई शंका नहीं कि हर देहात में कर्म और ज्ञान का संगम करनेवाली तालीम देनी चाहिए। नहीं तो कुछ लोग केवल हाथ से काम करनेवाले और कुछ लोग केवल दिमाग से काम करनेवाले, ऐसे दो विभाग हो जायँगे। अगर परमेश्वर की यही इच्छा होती, तो उसने कुछ लोगों को हाथ ही हाथ दिये होते, और कुछ लोगों को सिर ही सिर—कुछ 'राहु' और कुछ 'केतु' ही निर्मित होते। लेकिन हर शख्स को उसने दिमाग दिया और हाथ भी। इसलिए ज्ञान और कर्म का योग होना ही चाहिए। इसके बिना जीवन न जमेगा। ज्ञान और कर्म की तालीम के बिना देश का उद्धार नहीं हो सकता। अशांतिमय साधनों के प्रति देश में प्रीति रही, तो नुकसान होगा। हमें अपने देश की कोई भी समस्या हल करनी हो, तो शांति और प्रेम के सिवा कभी दूसरा रास्ता न लेना चाहिए। तभी देश की प्रगति और उत्थान होगा। इसमें कोई शक नहीं कि सिर्फ पुरुषों का विकास हो और स्त्रियों का न होगा तो देश लंगड़ा रहेगा। हिन्दुस्थान में छूत-अछूत भेद रहे, तो हिन्दुस्तान के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। हर मनुष्य

को भारतीयता के नाते काम करना सीखना होगा। हम सबको अपने जीवन की योजना सत्य और अहिंसा पर ही बनानी होगी। यही सब महात्मा गांधी ने हमें उपदेश दिया था।

कोयम्बतूर
२-१०-'५६

औजार किसानों के हाथ रहें : ५० :

हम कबूल करते हैं कि औजारों में सुधार होना चाहिए, अच्छे औजार घर में आयें, तो अच्छा ही है। आज हम चक्की पीसते हैं, तो घंटे भर में दो पौंड आटा पीसा जाता है, जिससे ज्यादा मेहनत होती है। कल अगर ऐसी चक्की बनायी जाय, जिससे एक घंटे में चार पौंड आटा पीसा जा सके तो मेहनत कम होगी। हम उसे पसंद करेंगे। औजार दुरुस्त होते जायँ और मनुष्य को श्रम कम पड़े, यह हम भी चाहते हैं। लेकिन हमारे हाथ का औजार ही छीन लिया जाय, वह दूसरे के हाथ में दिया जाय और फिर हमें चीजें खरीदनी पड़ें, तो उसे क्या कहा जाय ?

साधनविहीनता खतरनाक !

अगर कोई कहे कि 'तेरे हाथ में तलवार है, वह ठीक नहीं है। इन दिनों तलवार काम नहीं करती, अब तो पिस्तौल होनी चाहिए', तो मैं कबूल करूँगा कि तलवार से पिस्तौल बेहतर है। किंतु वह हमारे हाथ से तलवार ले ले और हमें पिस्तौल न दे, उसे अपने ही हाथ में रखे, तो क्या वह ठीक होगा ? हम मानते हैं कि तलवार से पिस्तौल बेहतर है, पर क्या हमारे हाथ की तलवार के बदले तुम्हारे हाथ का पिस्तौल बेहतर है ? इसी तरह हमारे हाथ में आज जो चरखा है, उसके बदले दूसरा अच्छा चरखा हमारे हाथ में आता हो, तो ठीक है। परंतु हमारे हाथ का चरखा छीना जाय और दूसरे के हाथ में दूसरा अच्छा औजार आये, तो उससे क्या फायदा होगा ?

से ठंडी अग्नि प्रकट करनी होगी, जो किसी को भी न जलायेगी, सबको पावन करेगी। सबके दोषों को जलायेगी। ऐसी नैतिक-धार्मिक अग्नि निर्माण करनी है। उसमें गरीबों के दोष भस्म हो जायँगे। फिर श्रीमानों के भी दोष भस्म होंगे।

गरीब समझते हैं कि जो कुछ दोष हैं, सारे श्रीमानों में ही हैं। वे चूसनेवाले हैं, पीसनेवाले हैं, सतानेवाले हैं, निर्दय हैं, स्वार्थी हैं। श्रीमान् समझते हैं कि सारे दोष गरीबों में हैं। वे पूरा काम नहीं करते, अप्रामाणिक हैं, व्यसनों में पड़े हैं, आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, बुद्धिहीन हैं। इस तरह ये उन्हें हीन समझते हैं और वे इन्हें। दोनों में एक-दूसरे के लिए हीनभाव रखने में स्पर्धा चल रही है। जहाँ समाज में आदर ही खतम हुआ, वहाँ ताकत कैसे पैदा होगी? सबसे पहली बात यह है कि मनुष्य को अपने लिए आदर होना चाहिए। अपनी शक्ति का भान होना चाहिए।

श्रीमानों के पास हृदय और बुद्धि में एक जरूर है

भूदान-यज्ञ में पाँच लाख लोगों ने दान दिया है, जिनमें साढ़े-चार लाख गरीब हैं। जब साढ़े-चार लाख गरीबों ने दान दिया, तब पचास हजार श्रीमानों को देना ही पड़ा, क्योंकि एक ताकत पैदा हुई। श्रीमान् दो प्रकार के होते हैं। एक होते हैं हृदयवाले, उनके हृदय पर फौरन असर होता है। दूसरे वे जो हृदयवाले नहीं होते, पर बुद्धिवाले होते हैं। जब वे देखेंगे कि गरीबों में इतनी नैतिक ताकत पैदा हुई है कि उसके सामने हम टिक नहीं सकते हैं, तो वे, भी इसमें शामिल हो जाते हैं। श्रीमानों में कुछ लोग हृदयहीन दीख पड़ेंगे, परन्तु यह न कहें कि वे हृदयहीन हैं, बल्कि यही समझें कि वे बुद्धिमान् हैं। जिनके हृदय है, वे फौरन आपके साथ हो जायँगे। आप यहाँ भी देख रहे हैं कि दस-बीस श्रीमान् भूदान में लगे हैं, क्योंकि उन्हें हृदय है। जिनके पास हृदय नहीं, उनके पास बुद्धि होगी। हमारा काम ऐसा होना चाहिए कि जिन्हें हृदय है, उनके हृदय पर और जिन्हें बुद्धि है, उनकी बुद्धि पर असर हो। अंग्रेज एकदम भारत छोड़कर चले गये, तो क्या आप समझते हैं कि वे एकदम हृदयवान् बन गये? ऐसी बात नहीं। किंतु वे बुद्धिमान् थे। उन्होंने

समझ लिया कि हम यहाँ टिक नहीं सकते, टिकने की कोशिश करेंगे, तो मार खायेंगे, हार खायेंगे, वे बुद्धिमानी से चले गये, तो उनके लिए यहाँ आदर भी रहा। हिन्दुस्तान में राजा-महाराजा खतम हुए। उन्होंने कोई झगड़ा नहीं किया और राज्य छोड़ दिया। उसके लिए उन्हें संपत्ति भी मिली और जरा 'राजप्रमुख' भी बनाया गया। अब वह 'राजप्रमुख' पद भी खतम हो रहा है। पर उन्होंने झगड़ा नहीं किया, क्योंकि उनमें में कुछ-थोड़े हृदयवाले थे, वे हृदय से समझ गये और बुद्धिवाले बुद्धि से समझ गये कि इसके आगे हम टिक नहीं सकते। सारा प्रवाह राज्य के विरुद्ध है, इतना वे समझ गये। जिनके हाथ में सत्ता और सम्पत्ति होती है, वे या तो हृदयवान् होते हैं या बुद्धिमान्। जिसे हृदय और बुद्धि भी न हो, ऐसा कोई उनमें होता ही नहीं। क्योंकि दोनों में से एक भी न हो, तो उनके पास सत्ता या संपत्ति आयेगी ही नहीं। इसीलिए मैं किसी भी श्रीमान् को हृदयहीन नहीं कहता। मैं कहता हूँ कि वह हृदयहीन दीख पड़ेगा, पर होगा वह बुद्धिमान।

गरीब हृदय-शुद्धि का कार्य उठायें

भूदान और सम्पत्तिदान में से नैतिक ताकत पैदा होगी, तो हृदयवाले श्रीमान् साथ हो जायँगे और बाकी श्रीमान् भी आहिस्ता-आहिस्ता पीछे आयेंगे। कुछ लोग पूछते हैं कि 'आप सब श्रीमानों का हृदय-परिवर्तन कैसे करेंगे ?' कुछ लोग ऐसे होते हैं कि उन्हें हृदय ही नहीं होता, तो फिर आप उनका हृदय परिवर्तन कैसे करेंगे ? मैं उन्हें जवाब देता हूँ कि जिन्हें हृदय नहीं, परन्तु उन्हें बुद्धि तो है ही, इसलिए हम उनकी बुद्धि का परिवर्तन करेंगे। बाबा का भूदान-कार्य हृदयवान् और बुद्धिमान् कार्य है। यह प्रेम का कार्य है, इसलिए इसमें हृदयवाले आयेंगे। यह ऐसा कार्य है कि इसके बिना श्रीमान् बच ही नहीं सकते। वे समझ गये हैं कि 'जमाना बाबा के साथ है, अगर हम काल के साथ अनुकूल होंगे, तो बचेंगे, नहीं तो हरगिज नहीं बच सकते।' इसलिए बाबा को पूरा विश्वास है कि श्रीमानों की चिंता करने का कोई कारण नहीं। चिंता करनी है, तो गरीबों की करनी है। उनमें त्याग और प्रेम

पैदा हो, उनकी हृदय-शुद्धि हो, वे एक-दूसरे की मदद कर बलवान् बनें, श्रीमानों के सामने दीन न बनें, बल्कि छाती खोलकर खड़े रहें और उनके दुर्गुणों को खतम करें। अगर यह शुद्धि-कार्य गरीबों में हो, तो उनकी ताकत बनेगी।

मजदूरों का दान वटबीज

यहाँ के मजदूर हमें संपत्तिदान देंगे, तो वे करोड़ों का ढेर न लगायेंगे, थोड़ा-थोड़ा ही देंगे। लेकिन यह जो थोड़ा है, यह वटबीज है। वट का बीज बोया जाता है, तो उसमें से प्रचंड वृक्ष पैदा होता है। आप मजदूर लोग जो थोड़ा-सा धन देंगे उसे बाबा बोयेगा। उसका उपयोग भूमिहीनों और गरीबों के लिए किया जायगा। फिर बाबा आपकी ताकत लेकर श्रीमानों के पास पहुँचेगा और उनसे पूछेगा : 'देखो, गरीबों ने इतना दिया है, तो आप भी दीजिये। उसने रुपये में दो पैसा दिया है, तो क्या आप भी उतना ही देंगे?' फिर श्रीमान् समझ जायँगे और प्रेम से दान देने के लिए सामने आयेंगे। प्रेम से न आयेंगे तो लज्जा से आयेंगे।

एक अमेरिकन भाई ने हमसे पूछा : 'बाबा क्या आपको सभी लोग प्रेम से दान देते हैं? कोई लज्जा से नहीं देता?' हमने जवाब दिया कि 'लज्जा से देते हैं तो ज्ञानपूर्वक देते हैं। छोटा बच्चा नंगा रहता है, उसे लज्जा नहीं मालूम होती। क्योंकि उसे ज्ञान नहीं रहता है। अगर ज्ञान होता, तो लज्जा मालूम होती। इसलिए कहना पड़ता है कि जो लज्जा से दान देता है, उसे ज्ञान हुआ है कि देना धर्म है। इसलिए जो लोग मुझे प्रेम से देते हैं, उनका दान मुझे अत्यंत मंजूर है और जो लज्जा से देते हैं, उनका भी दान मुझे अत्यंत मंजूर है, क्योंकि एक ने हृदय से दिया है, तो दूसरे ने बुद्धि से। शास्त्रों में भी लिखा है कि "श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया अदेयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्।" श्रद्धा से दो, अश्रद्धा से मत दो, लज्जा से दो, भय से दो। यह शास्त्र की आज्ञा है। 'हम अगर नहीं देते, तो हमारा भला न होगा', इसे भय कहते हैं। यह भी ज्ञान है। हम नहीं देते, तो लोग हमसे घृणा करेंगे, इसे 'लज्जा' कहते हैं और

यह भी एक ज्ञान है। जो लज्जा, भय या प्रेम से देते हैं, वे ज्ञान से ही देते हैं। इसलिए मुझे प्रथम चिन्ता आप गरीबों की ही करनी है।

यहाँ एक भी मजदूर, एक भी गरीब बिना दान दिये न रहे। आपको अगर आधा पेट खाना मिले, तो एक ही कौर दें, तो यह तपस्या हो जायगी। तपस्या से ही ताकत पैदा होती है।

सिंगनल्लुर
३-१०-'५६.

आत्मज्ञान की गहराई और विज्ञान का विस्तार : ५२ :

हमारे सामने विविध प्रकार के जीवन का दर्शन होता है। एक दर्शन है, प्राणी-पशु-पक्षी के जीवन का। दूसरा है, पामर मनुष्य के जीवन का। तीसरा है, ज्ञानियों के जीवन का। ये तीन प्रकार के जीवन स्पष्ट हैं। इनमें भी और अनेक प्रकार हो जाते हैं।

ऊपर के काँच के कारण विविध दर्शन

इतने सारे विविध प्रकारों में चैतन्य का प्रकाश हो रहा है। काँच स्वच्छ हो, तो प्रकाश स्वच्छ है और अस्वच्छ हो तो प्रकाश भी धुंधला-सा होता है। काँच टूटा-फूटा हो तो तीसरे प्रकार का प्रकाश होगा। जब मैं काँच कहता हूँ तो मेरा मतलब है दीपक का काँच। आइना भी हो, तो स्वच्छ आइने का दर्शन अलग होगा और अस्वच्छ आइने का दर्शन अलग, टूटा-फूटा आइना हो तो और विचित्र दर्शन होगा। ऐसे ही दीपक का काँच स्वच्छ हो, तो अंदर का प्रकाश स्वच्छ दीखेगा। अगर वह अस्वच्छ हो, तो अंदर का प्रकाश स्वच्छ होते हुए भी अस्वच्छ दीखेगा। वैसे ही टूटा-फूटा आइना हो, तो विकृत दर्शन होगा। ऐसे भी काँच होते हैं जिनमें चेहरा बिलकुल विचित्र दीखता है, जिसे अंग्रेजी में 'लाफिंग ग्लास' कहते हैं। उसमें लंबा चेहरा हो, तो चौड़ा दीखेगा और चौड़ा हो, तो लंबा। फिर ऐसे भी काँच होते हैं, जिनमें से देखते हैं, तो सृष्टि लाल, नीली, पीली दीखती है।

देह बुद्धि की दो गाँठें

यह जो सारा विविध दर्शन होता है वह ऊपर के काँच का नमूना है, पर अन्दर का रूप एक ही है। यह बात सीखने लायक है। हमें जितने मानव दीखते हैं, सबमें विविध प्रकार के रूप पाये जाते हैं। कोई किसी को ठगता, लूटता है, तो कोई दूसरे को तकलीफ देकर जीवन बिताता है। कुछ ऐसे भी होते हैं, जो दूसरे लोगों का भला करने में ही जीवन बिताते हैं। ऐसे तीन प्रकार के लोग स्पष्ट दीखते हैं। जानवरों में तो हम देखते हैं, कि वे अपने शरीर तक ही सीमित रहते हैं। वे शरीर की तकलीफ से भयभीत होते हैं। पत्थर उठाते ही भाग जाते और हरा घास आदि दिखाते ही आपके पास आ जाते हैं। यह केवल देह का ही आकर्षण है। वे अपनी देह को ही अपना रूप समझते और दूसरों को अपने से भिन्न मानते हैं। यह जानवर का जीवन है। देह ही सब कुछ है, ऐसा वे समझते हैं और उसमें भी अपनी ही सब कुछ है, ऐसा समझते हैं। ये दो बातें हैं : पहली यह कि देह के अंदर की चीज नहीं पहचानते, देह को पहचानते हैं और दूसरी अपनी ही देह को मानते हैं। गाँठ पक्की कब होती है? जब दुहरी होती है। सारांश, पशु के जीवन में देहबुद्धि की दुहरी गाँठ बनी है, पहली गाँठ 'मैं देह हूँ' और दूसरी 'मैं यह देह हूँ।'

पशु की एक गाँठ थोड़ी खुलती है

ये दोनों गाँठें जब खुलती हैं, तभी हृदयग्रंथि खुलती है। लेकिन पशुजीवन में इनमें से एक गाँठ जरा सी खुलती है, 'मैं देहरूप हूँ' यह गाँठ नहीं खुलती, कारण वे देह को ही पहचानते हैं। किंतु 'यही मैं देह हूँ' यह गाँठ जरा खुलती है। गाय अपने बछड़े को अपना रूप मानती है। कुतिया भी इसी तरह मानती है। इसलिए कुछ थोड़ा-सा प्रेम दिखाती है। यही एक गाँठ खुलती है, लेकिन वह गाँठ भी पूरी तरह नहीं खुलती, क्योंकि दुनिया में जितनी देह हैं, उतनी सभी मेरे रूप हैं, ऐसा तो वह नहीं मानती।

गहराई बढ़ाने की प्रक्रिया

एक देश भक्त है, वह समझता है कि इस देश में जितने रहते हैं, सभी

मेरे रूप हैं। किंतु दूसरे देश की देहों को वह अपना रूप नहीं मानता, अपने से अलग मानता है। इसलिए वह देह को व्यापक समझता है, पर बहुत ज्यादा व्यापक नहीं। देशभक्त मानता है कि मेरे देश में खूब उत्पादन बढ़े। इस तरह उसकी पहली गाँठ खुली, पर वह पूरी तरह नहीं, क्योंकि वह यह नहीं जानता है कि दूसरे देश के लोग भी मेरे रूप हैं। अगर वह मानता कि कुल दुनिया मेरा रूप है, तो यह गाँठ खुल जाती। फिर भी एक गाँठ रह जाती, क्योंकि दुनिया याने दुनिया का बाह्य रूप वह समझता है, अन्दर के रूप का तो उसे खयाल है ही नहीं। कोई कुआँ पाँच फुट गहरा है। उसे हम दस फुट गहरा करते हैं, फिर ५० फुट और उसके बाद १०० फुट गहरा करते हैं, तभी अन्दर का झरना शुरू होता है। इस तरह गहरा-गहरा खोदते जाना चाहिए। 'मैं देह नहीं, मैं इंद्रियरूप हूँ', तो पाँच फुट गहरा हो गया। 'मैं इंद्रिय रूप नहीं, मनरूप हूँ', यह दस फुट गहरा हो गया। 'मैं मनरूप नहीं, बुद्धिरूप हूँ', यह ५० फुट गहरा हो गया। 'मैं बुद्धिरूप नहीं, आनंदस्वरूप आत्मा हूँ', यह सौ फुट गहरा हो गया। अब झरना भी बहने लगा। यही ज्ञान की प्रक्रिया है।

चौड़ाई बढ़ाने की प्रक्रिया

एक गड्ढा ५ फुट गहरा है। उसमें अन्दर से झरने का पानी नहीं आता, बाहर से बारिश का पानी भर जाता है। एक शख्स ने सोचा, इतना पानी नाकाफी है। उसने १५ फुट गड्ढे को चौड़ा किया। इस तरह करते-करते आखिर उस मनुष्य ने १०० फुट चौड़ा किया। अब उसमें बारिश का पानी इतना ज्यादा भरने लगा कि अन्दर से झरना बहने की कोई आवश्यकता नहीं रही। व्यापक बनने का यह एक प्रकार है। जो लोग घर का उत्पादन बढ़ाने की बात करते हैं, वहाँ गड्ढा ५ फुट चौड़ा होता है। जो गाँव का उत्पादन बढ़ाने की बात करते हैं, वे उस गड्ढे को ५० फुट चौड़ा करते हैं। जो तमिलनाड का उत्पादन बढ़ाने की बात करता है, वह १०० फुट गड्ढे को चौड़ा करता है और जो सारे भारत का उत्पादन बढ़ाने की बात करता है, सभी को खाना-पीना अच्छा मिले, यह सोचता है, उसने हजार फुट गड्ढे को चौड़ा किया। फिर भी

यह नाकाफी है। सारी दुनिया में खूब उत्पादन बढ़े, यह जिसने सोचा, उसने लाख-लाख फुट चौड़ा किया। सारांश, देशभक्तों की गहराई ५ फुट है और लंबाई-चौड़ाई जरा कम-वेशी होगी।

गहराई और विस्तार

हम समझना चाहते हैं कि आत्मा का विकास दो तरफ से होता है—(१) हमें इतना गहरा खोदना चाहिए कि अंदर से पानी का झरना बहना शुरू हो, और (२) इतना लम्बा-चौड़ा खोदना चाहिए कि सारी दुनिया का रूप मिले। एक को कहते हैं आत्मज्ञान की गहराई और दूसरे को विज्ञान का विस्तार। जिस देश में आत्मज्ञान की गहराई और विज्ञान का विस्तार है, वहाँ सब प्रकार की समृद्धि होगी। दुनिया में दो प्रकार के लोगों का दर्शन होता है : कुछ लोग देशभक्त बनते हैं, चौड़ाई बढ़ाते हैं, गहराई नहीं। तो कुछ लोग आत्मनिष्ठा बढ़ाते हैं, गहराई बढ़ाते हैं, पर चौड़ाई नहीं। किन्तु किसी एक से दुनिया का काम न चलेगा। गहराई और विस्तार दोनों ही चाहिए।

योजना-आयोग चौड़ाई बढ़ाने का कार्य-क्रम

योजना-आयोग का कार्य लम्बाई-चौड़ाई बढ़ानेवाला है। वहाँ सोचा जाता है कि लोग जो चाहते हों, उसे 'सप्लाई' करना चाहिए। लोग अन्न चाहें, तो अन्न देना चाहिए। कपड़ा चाहें, तो हर मनुष्य को ४० गज मिल का सस्ता कपड़ा सप्लाई करना चाहिए। लोग सिगरेट-बीड़ी चाहें, तो अपने देश में बीड़ी-सिगरेट के कारखाने खोले जायँ। उत्तम बीड़ी-सिगरेट बनाने में देश स्वावलंबी बने। लोगों के बचाव के लिए सेना चाहिए, इसलिए सेना बढ़ाई जाय। कारखाने, मिलों आदि में काम करके थके-माँदे लोगों को सिनेमा चाहिए, तो उसकी व्यवस्था की जाय। मतलब यह कि ये गहरा नहीं खोदते। इसमें लंबा सोचा जाता है। इसपर भी कुछ लोग कहते हैं कि इतना लंबा भी नहीं चाहिए। अपना तमिलनाड का छोटा-सा राज्य अच्छा चलेगा।

आत्मज्ञान और विज्ञान के समन्वय से क्रांति

हमारे देश में प्राचीनकाल से एक सभ्यता चली आयी है। पश्चिमी लोगों

को लंबा-चौड़ा बनाने की आदत हो गयी है। किन्तु बाबा कहता है कि गहराई पूरी होनी चाहिए। विज्ञान का विस्तार भी जितना हो सके, उतना करे, पर गहराई में जरा भी कमी न हो। उसके बिना स्वच्छ पानी न मिलेगा। क्योंकि यह अपनी भारतीय संस्कृति की बात है। इसलिए गहराई सधेगी भी। फिर उसके साथ चौड़ाई जितनी चाहिए, उतनी बढ़े। फिलहाल देश तक, फिर बाद में विश्व तक फैलाना है। इसे 'आत्मज्ञान और विज्ञान का संयोग' कहते हैं और यही क्रान्ति है। जब तक आत्मज्ञान और विज्ञान का समन्वय न होगा, तबतक क्रान्ति न होगी।

आपने पंचवर्षीय योजना बनायी। कल दसवर्षीय योजना भी बनेगी। आप उत्पादन बढ़ाने की बात करते हैं। चीन, रूस और अमेरिका में भी यही काम चल रहा है। वे आगे-आगे जा रहे हैं। आप उनके पीछे-पीछे जाकर उनका अनुकरण करेंगे, तो जिस दुःख में आज वे पड़े हैं, उसीमें आप भी फँसेंगे।

गहराई, चौड़ाई, दोनों चाहिए

रूस, अमेरिका, चीन तीनों देश निर्भय नहीं बने हैं। वहाँ खाना, पीना आदि अच्छी तरह मिलता होगा और मिलता भी है। किंतु गधे को अच्छी तरह खिलाया-पिलाया जाय, तो भी इसका यह अर्थ नहीं कि उन्हें अकल भी आती है। हिन्दुस्तान में खाना पीना ठीक नहीं मिलता, इसलिए हमें इन देशों का आकर्षण होता है। इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दुस्तान का खाना-पीना कमजोर है, उसे बढ़ाना चाहिए। किंतु, हमें उनका अनुकरण न करना चाहिए। उसमें भलाई (गहराई) नहीं है, चौड़ाई है। वहाँ खूब खोदना चाहिए। इसलिए हमें अपने देश में (गहराई) कायम रखते हुए ही चौड़ाई की बात करनी चाहिए। सर्वोदय की यही कोशिश है। भूदान की यही राह है।

लोग पूछते हैं, 'बाबा जमीन माँगते हुए इस तरह गाँव-गाँव क्यों घूमता है? सरकार पर दबाब डालकर कानून से जमीन छीन ली जाय, तो अच्छा होगा। या हम जमीन वैसे ही छीन लेंगे। लोग न देंगे, तो हम खुद जाकर

जमीन पर कब्जा कर लेंगे। इतना आसान काम होते हुए भी बाबा ५ साल से इस तरह क्यों घूम रहा है? बाबा को क्या रोग हुआ है?' पर यह तो उसने अभी आपको समझाया। रोग यह हुआ है कि उसे गहराई के साथ चौड़ाई करनी है और चौड़ाई के साथ गहराई। याने दोनों गाँठे तोड़नी है।

दोनों गाँठें तोड़नी होंगी

'मैं देह हूँ' यह गाँठ तोड़नी है। 'मैं देहरूप नहीं, आत्मरूप हूँ' यह गहराई होगी। 'मैं इसी शरीर में नहीं हूँ', इसलिए 'दुनिया में जितने शरीर हैं, कुल मेरे ही रूप हैं' यह होगा, तो दूसरी गाँठ खुलेगी। दोनों गाँठें खुले बिना मानवता का विकास और समाधान तथा शान्ति की स्थापना न होगी।

पशुता से मानवता की ओर

मनुष्य की हालत जानवर से भिन्न है। वह कुछ व्यापक बनता है। उसका प्रेम परिवार तक फैलता है; वह समाज को अपना रूप मानता है और थोड़ा गहरा भी जाता है। यों तो मानव का पहला जन्म पशुओं के बराबर ही होता है। किंतु बाद में उसे संस्कार मिलता है, माता-पिता द्वारा उसे कर्त्तव्य का भान कराया जाता है। फिर वह गुरु-सेवा का महत्त्व समझने लगता है। फिर गुरु उसे विद्या सिखाता है। वह बताता है कि 'मैं देह से भिन्न हूँ; केवल शरीर का भरण करना धर्म नहीं, शरीर के लिए धर्म नहीं, धर्म के लिए शरीर है; धर्म के लिए शरीर का त्याग भी करना जरूरी हो, तो किया जाय। रोज खाना जरूरी है, लेकिन एक दिन एकादशी करना जरूरी है, एकादशी सिखाती है कि हम शरीर से अलग हैं, हमें अपने शरीर का गुलाम बनना नहीं है; धर्म सिखाता है कि शरीर का जोर अपना बल नहीं, अपना बल है धर्म और इसके लिए संयम बहुत जरूरी है।' इस तरह बालक जब संयम सीखता है, तब वह 'मनुष्य' बनता और उसका दूसरा जन्म होता है। पहले जन्म में तो वह पशु जैसा ही रहता है।

किन्तु आज पिता की यह इच्छा होती है कि मेरी सन्तान को विद्या भी कम-से-कम कष्ट में मिले, होस्टल में उसे सब प्रकार की फैसिलिटीज हों और उसका जीवन भी कम-से-कम कष्ट का हो। उसे कम-से-कम श्रम करना हो। अब

आप ही बताइए कि यह पहला जीवन है कि दूसरा ? क्योंकि गधा भी चाहता है कि उसे कम-से-कम कष्ट में खाना मिले। यह कौन-सी तालीम है ? यह सारी युनिवर्सिटी की तालीम पहले जन्म की है, जिससे विकसित गधा बनता है, विकसित मानव नहीं।

जंतुओं में भी सहयोग

मानव तबतक मानव नहीं बन सकता, जबतक वह अपने को दूसरों तक न ले जाय और दूसरों का अपने में समावेश न करे। 'लंबी-चौड़ी बात करना सिर्फ मनुष्य जानता है, सो भी नहीं और सिर्फ देशभक्त जानता है, सो भी नहीं। दीमक भी इस तरह काम करते हैं। लाख-लाख दीमक एकत्र होकर काम करते हैं। उनमें नेता भी होते हैं और रानी भी। उनके पीछे-पीछे सब जाते हैं। अपने को व्यापक बनाने की युक्ति उनमें भी है। सुप्रसिद्ध विद्वान् 'मेटर्लिंग' ने उनपर एक किताब लिखी है। उसमें वह लिखता है कि 'मनुष्य-समाज को फ़ुफुंदी (दीमक) के जीवन से बहुत सीखने को मिलेगा।' शहद की रानी मक्खियाँ भी बहुत बड़ी संख्या में इकट्ठा होकर काम करती हैं। सहयोग से उनका समाज काम करता है। सारांश, दूसरे भी प्राणी यह बात जानते और व्यापक बनना समझते हैं। इसलिए यह मत समझिये कि सिर्फ मनुष्य ही यह जानता है। इसलिए मानव का विकास तबतक नहीं हो सकता जबतक वह व्यापक और गहरा न बनेगा।

मानव के विकास के लिए कठिन तपस्या

बाबा गाँव-गाँव क्यों घूमता है ? इससे जमीन माँगो, उससे संपत्तिदान माँगो, इसे समझाओ, उसे विचार जँचाओ, इस तरह कंठशोष क्यों करता है ? कानून के जरिये जमीन छीन क्यों नहीं लेता ? इसलिए कि बाबा मानव के हृदय का विकास चाहता है, सिर्फ जमीन का बँटवारा नहीं। इसीलिए यह कठिन तपस्या हो रही है। इसीको 'क्रान्ति' कहते हैं। जहाँ मनुष्य का विकास होगा, वहीं वह गहरा और व्यापक बना दीखेगा।

नंजूडापुरम् (कोयम्बतूर)

४-१०-'५६

जीवन का अखंड प्रवाह

आज एक भाई मिलने आये। उन्होंने एक बड़ा सवाल पूछा कि 'हमें सद्गति कैसे मिले ?' ऐसा सवाल भारत में ही पूछा जाता है। यह अपने देश की बड़ी भारी संपत्ति है, क्योंकि यहाँ के लोग इस दुनिया के जीवन को ही अन्तिम नहीं समझते। वे समझते हैं कि यह जीवन तो अपने अखंड जीवन का एक छोटा-सा हिस्सा है। हम जनमे, उसके पहले भी जीवन था और यह शरीर गिरने पर भी वह जारी रहेगा। यह तो अखंड प्रवाह है। हम मर गये और जीवन खतम हुआ, ऐसा नहीं। दुनिया में कहीं भी देखो, अनंत सृष्टि फैली नजर आती है, सृष्टि का कहीं अन्त ही नहीं दीखता, फिर जीवन का अन्त कैसे हो ? इसलिए मरने के बाद भी जीवन है, जिसका खयाल लोग कुछ-न-कुछ रखते ही हैं। फिर भी जैसा रखना चाहिए, वैसा नहीं रखते, बहुत कम रखते हैं। अगर यह खयाल रखते कि 'हमारा यह जीवन तो छोटा-सा है, आगे बहुत लंबा जीवन पड़ा है !', तो हमारे जीवन का ढंग ही बदल जाता। नूह पैगम्बर की कहानी है। उन्हें भगवान् ने बीस हजार साल की जिन्दगी दी थी और वे भी इस बात को जानते थे। वे एक छोटी-सी झोपड़ी में रहते थे। एक दफा लोगों ने उनसे पूछा कि 'आप अच्छा मकान क्यों नहीं बनाते ?' उन्होंने जवाब दिया : 'बीस हजार साल ही तो रहना है। उसके लिए बड़ा मकान क्यों बनायें ?' ...सारांश बीस हजार साल की जिन्दगी के लिए भी नूह पैगंबर बड़ा मकान बनाने के लिए तैयार न थे, क्योंकि वे जानते थे कि अनंत काल में बीस हजार साल कुछ नहीं है। उनके जीवन से हमारा जीवन कितना छोटा है ! फिर इतनी छोटी-सी आयु में हम सबको क्यों लूटें, सबका द्वेष क्यों संपादन करें ? संपत्ति, जमीन और बच्चों का लोभ क्यों रखें ?

मनुष्य धर्म के लिए पैदा हुआ

जिसे यह भान है कि यह जीवन याने एक छोटा-सा टुकड़ा है, बड़ा भारी टुकड़ा तो बाकी ही है, वह शख्स सबकी सेवा ही करेगा, वह भोग में आसक्त नहीं हो सकता। वह यही सोचेगा कि हम जिंदगी का एक क्षण भी बिना सेवा के न बितायेंगे। परमेश्वर ने हमें मनुष्य का चोला देकर यहाँ पर इसीलिए भेजा है कि हम सबकी सेवा करें। क्या गधा सबकी सेवा करता है ? शेर और भेड़िया सेवा करते हैं ? भगवान् ने हमें गधा नहीं बनाया, बैल भी नहीं और शेर या भेड़िया भी नहीं बनाया, बल्कि मनुष्य बनाया ; इसलिए कि हम सेवा करके छूट जायँ। यह मानव-देह सेवा के लिए है। 'स हि धर्मार्थमुत्पन्नः'—मनुष्य किसलिए पैदा हुआ ? धर्म करने के लिए पैदा हुआ, भोग के लिए नहीं। देहसे काम लेना है, इसलिए उसे खिलाना पड़ता है, जैसे कि घोड़े को खिलाना पड़ता है। चरखे से सूत कातना है, इसलिए हम उसे तेल देते हैं, तो क्या वह भोग है ? इसी तरह देह का उपयोग समाज-सेवा के लिए करना है। शौक है समाज-सेवा का, दुखियों को मदद देने का। लेकिन इस शरीर से काम लेना है, इसलिए उसे खिलाना पड़ता है, तो थोड़ा खिलायेंगे। पर भोग के लिए नहीं खायेंगे। सारांश, जो शख्स जानता होगा कि हमारा अखंड जीवन पड़ा है और उसका एक छोटा-सा हिस्सा यह मनुष्य-जीवन है, वह अपना जीवन केवल सेवा में ही लगायेगा।

गति अपनी करनी से

सद्गति क्या है ? क्या वह किसी बादशाह की मर्जी से मिलती है ? क्या ईश्वर कोई सुल्तान है कि अपनी मर्जी से चाहे जिसे नरक में ढकेल दे या स्वर्ग में भेज दे ? वह इस तरह अपनी इच्छा से काम करनेवाला नहीं, अत्यंत तटस्थ है। आप जैसा करोगे, वैसा पाओगे। आपने बबूल का बीज बोया और भगवान् से प्रार्थना करने लगे कि 'भगवान् ! हमें मीठे आम मिलने चाहिए', तो वह यही जवाब देगा कि 'तू ने बबूल का बीज बोया है, इसलिए तुझे बबूल ही मिलेगा। इसमें मेरी मर्जी का नहीं, तेरी करनी का ही सवाल

है। तू अगर आम चाहता है, तो तूझे आम की गुठली ही बोनी पड़ेगी।' अगर आप आम की गुठली बोयेंगे, तो भगवान् आपको बबूल कभी न देगा। एक भाई का पाँव अग्नि पर पड़ा और जला। उसने अग्निदेव से प्रार्थना की कि 'अग्निदेव ! मेरा पाँव मत जलाओ।' अग्निदेव ने उससे कहा कि 'तू फिर से मुझ पर पाँव मत रख, तो मैं फिर से तुझे नहीं जलाऊँगा। यह तेरे ही हाथ में है।' ठंड के दिनों में एक आदमी अग्नि के पास बैठा तो उसे गरमी मिली। दूसरा आदमी अग्नि से दूर रहा, तो उसे गरमी न मिली। उसने अग्निदेव से प्रार्थना की कि 'अग्निदेव ! तू क्यों पक्षपात करता है? तू तो देवता है न? देवता सबके साथ समान बर्ताव करता है। फिर तू उसे गरमी क्यों पहुँचाता है और मुझे क्यों नहीं?' अग्निदेव ने उसे जवाब दिया : 'तू गरमी चाहता है, तो मेरे नजदीक बैठ। दूर रहा, तो तुझे गरमी न मिलेगी। किसी को गरमी मिलती है और किसी को नहीं, इसमें मेरी नहीं, तेरी अपनी जिम्मेवारी है।'

इसी जिंदगी में पहचान

ईश्वर निमित्तमात्र है। बारिश होती है। आपने मिर्च बोयी, तो बारिश मिर्च को बढ़ाती है और केला बोया, तो केले को भी बढ़ाती है। आप मिर्च बोयेंगे, तो बारिश केले को नहीं बढ़ा सकती। सारांश, सद्गति और दुर्गति ईश्वर की मर्जी पर निर्भर नहीं है। वह अपनी कोई मर्जी नहीं रखता है बल्कि तटस्थ रहता है। वह निमित्त बनता है और आपको गति देता है। आपने जो टिकट लिया होगा, उसीके अनुसार आपको गाड़ी में बैठना होगा। गाड़ी आपके लिए खुली है, आप चाहे जो टिकट ले सकते हैं। बाबा किसी को सद्गति नहीं दे सकता, विचार समझा सकता है। जिसे मरने के पहले सद्गति मिली होगी, उसी को मरने के बाद भी मिलेगी। मरने के बाद सद्गति मिलेगी या नहीं?, इसकी पहचान यहीं हो जायगी। क्या आपके चित्त में काम, क्रोध, लोभ, मत्सर भरा है? तो फिर आपको सद्गति नहीं मिल सकती। मन का शांत और निर्विकार रहना ही 'सद्गति'

है। अगर मन प्रेम से भरा हो, शांत हो और उसमें क्रोध न हो, तो आज ही सद्गति है। फिर मरने के बाद मुझे सत्गति मिलेगी या नहीं ? इसकी फिक्र करने की जरूरत ही न रहेगी। जब आपने कलकत्ते का टिकट लिया है, तो आप कलकत्ता जरूर जायँगे फिर मैं कलकत्ता जाऊँगा या नहीं ? इसकी फिक्र में पड़ने की जरूरत नहीं। अगर आपने कलकत्ते का टिकट नहीं लिया होगा, तो कलकत्ता नहीं पहुँच सकते।

भूदान से दोनों दुनियाओं में भला

सद्गति की और दुर्गति की चाबी हमारे हाथ में है। हम अगर सबको प्यार करते हैं, तो हमें परमेश्वर का प्यार हासिल होगा। भूदान-यज्ञ उसी की राह दिखाता है। यह ऐसा अद्भुत काम है कि इसमें आध्यात्मिक कार्य भी होता है और व्यावहारिक कार्य भी। इसलिए हमने कहा कि भूदान-यज्ञ में जो जमीन देगा, उसका भी कल्याण होगा और जो जमीन लेगा, उसका भी कल्याण होगा। आपने किसी प्यासे को या किसी भूखे को पानी पिलाया, खाना खिलाया, तो उसका दाह शांत होगा, उसे तृप्ति होगी, उसे संतोष होगा। हम कहना चाहते हैं कि उसे जितना संतोष होगा, उससे ज्यादा संतोष आपको होगा। यह अनुभव की बात है। इससे इस दुनिया में भी भला होगा और परलोक में भी। ऐसे कार्य को 'भक्ति का कार्य' कहते हैं। भूदान-यज्ञ भक्ति का कार्य है।

कड्डा पालेयम्
५-१०-'५६.

शुद्धबुद्धि के जप का परिणाम

आप देखेंगे कि बाबा रोज घूम ही रहा है। वह लोगों के पास जमीन माँगने के लिए नहीं जाता, यह काम तो दूसरे लोग करते हैं। फिर बाबा करता क्या है? वह जप करता है। शुद्धबुद्धि से जो जप किया जाता है, उसकी बड़ी ताकत है। लोग उसकी महिमा पहचानते नहीं। जप से सारी हवा बदल जाती है। सारे भारत में यह जोरदार जप शुरू हुआ था कि 'हिन्दुस्तान को स्वराज्य चाहिए, अंग्रेज यहाँ से चले जायँ।' वह शुद्धबुद्धि का जप था और वह व्यापक हुआ। अंग्रेज बड़े समर्थ थे, शस्त्रास्त्रों से सज्जित थे, उन्होंने जर्मनी का भी पराभव किया। लेकिन उनके खिलाफ हम लोगों ने क्या किया? केवल जप किया और उन्हीं जेलों में जाकर पड़े रहे। कोई भी पूछ सकता है कि दुश्मन के जेल में जाकर पड़ना, क्या यह कोई उसे जीतने का तरीका है? अबतक जो लड़ाइयाँ हुईं, उनमें यही तरीका रहा कि दुश्मन के हाथ न पड़ें। जहाँ हमारे लोगों को दुश्मन ने पकड़ कर जेल में डाल दिया, वहीं हम हार गये, ऐसा माना जाता था। किंतु हम तो शत्रु के जेल में गये थे। फिर भी आजाद हुए। यह इसीलिए हुआ कि वह शुद्धबुद्धि का जप था। अब बाबा जप कर रहा है कि 'जमीन सबकी हो। जैसे हवा, पानी और सूरज की रोशनी पर सबका हक है, वैसे ही जमीन पर भी सबका हक है।' अगर बाबा के साथ आप सब लोग भी यह जप करना शुरू करें कि 'जमीन की मालकियत किसी की नहीं, केवल भगवान् की ही हो सकती है। जमीन पर काम करने का सबको अधिकार है और सबका वह कर्तव्य भी है; जमीन से किसी को वंचित रखना पाप है', तो निश्चय ही वह भी सफल होकर रहेगा।

जमीन का बँटवारा आप की मर्जी पर

लोग बाबा से पूछते हैं कि 'आप को ४० लाख एकड़ जमीन मिली, यह

बहुत अच्छा काम माना जायगा, किंतु आप कहते हैं कि पाँच करोड़ एकड़ जमीन चाहिए, कुल जमीन बँटनी चाहिए, जमीन की मालकियत मिटनी चाहिए, यह सब कैसे होगा? उसके लिए कितना समय लगेगा?' हम जवाब देते हैं कि आप जितना समय लगाना चाहते हो, उतना लगेगा। आप चाहेंगे कि यह काम इसी साल हो, तो इसी साल हो सकता है। आप चाहेंगे कि सौ सालों में भी न हो, तो सौ सालों में भी नहीं होगा। यह काम आपकी और हमारी मर्जी पर निर्भर है। अगर हम चाहें कि कुल जमीन का बँटवारा हो जाय, तो वह हो ही जायगा। जमीन का बँटवारा कौन करेगा? क्या 'भूदान-समिति' करेगी? वह तो दस-बीस हजार एकड़ का बँटवारा कर सकती है, परंतु क्या गाँव-गाँव की कुल जमीन का बँटवारा भूदान-समिति करेगी? घर-घर शादी होती है, तो क्या उसके लिए कोई 'शादी-समिति' बनी है? हर घर के लोग स्वयं अपना इन्तजाम कर लेते हैं। तमिलनाड भर में 'पोंगल' होता है, तो क्या उसके लिए कोई 'पोंगल-समिति' है? मलबार में 'ओणम्' होता है, हिन्दुस्तान भर में एक दिन दीवाली होती है। इसी तरह कुल हिन्दुस्तान में एक दिन में जमीन का बँटवारा हो सकता है। उसके लिए हम सबको भावना निर्माण करनी चाहिए। हम लोगों ने कहा कि अंग्रेजों को हिन्दुस्तान छोड़कर जाना चाहिए, तो अंग्रेजों ने एक तारीख मुकर्रर की और उसी दिन उन्होंने भारत छोड़ा। उसकी तैयारी करने में उन्हें एक-दो साल लगे, पर काम बना एक ही दिन में। मनुष्य मरता है, तो कितने दिन में मरता है? एक क्षण में मरता है, चाहे इसकी तैयारी में सौ साल चले जायँ। किसी गुहा में दस हजार साल का अन्धकार हो और हम वहाँ लालटेन ले जायँ, तो वह अन्धकार कितने साल में दूर होगा? क्या सौ-दो सौ साल लगेंगे? जहाँ प्रकाश पहुँचा, उसी क्षण अन्धकार दूर हो जाता है।

कचरा खोदने का काम

एक भाई सूर्य पर रहता था। वह रात के समय पृथ्वी पर गिर पड़ा।

उसने देखा कि यहाँ तो जहाँ देखो वहीं कचरा-ही-कचरा पड़ा है। वह सूरज-वाला मनुष्य था, इसलिए उसे अन्धकार मालूम ही न था। इसलिए उसे लगा कि चारों ओर काला-काला कचरा ही पड़ा है। इसलिए उसने कुदाली लेकर खोदना शुरू किया। कुदाली से खोद-खोदकर टोकरियाँ भरता था और कचरा फेंकता था। उसने सोचा कि ये पृथ्वी के लोग कैसे हैं, कचरे में ही रहते हैं। इससे पड़ोसी जाग गया और लालटेन लेकर आया तमाशा देखने कि रात को कौन खोद रहा है। लालटेन देखकर सूरजवाले मनुष्य को लगा कि मैं घंटेभर से कचरा खोद-खोदकर फेंक रहा था, परंतु खत्म ही नहीं हो रहा था। लेकिन अब एक क्षण में कैसे खत्म हो गया ?... लेकिन वह कचरा था ही नहीं, वह तो अन्धकार था, जो खोद-खोद कर नहीं, प्रकाश से ही हटनेवाला था।

अभी भूदान हमने खोदना शुरू किया है, दानपत्र भरवा लेते हैं, किन्तु इस तरह खोदते-खोदते भूदान कब पूरा होगा ? जब विचार का प्रकाश फैलेगा, तब न दानपत्र लिखा जायगा, न दिया जायगा। लोग जाहिर कर देंगे कि हमें जमीन बाँटनी है और कुल जमीन बँट जायगी। उन्हें सिर्फ विचार का प्रकाश मिलना चाहिए। बाबा क्या कर रहा है ? वह विचार फैला रहा है, लोगों के पास यह विचार पहुँचा रहा है कि 'भाइयो, जमीन चंद लोगों के हाथ में रखोगे, तो हिन्दुस्तान का भला न होगा। जमीन ईश्वर की संपत्ति है। जैसे हवा और पानी सबके लिए खोलना चाहिए, वैसे जमीन भी सबके लिये खोलनी चाहिए। यही विचार समझाने के लिए बाबा घूम रहा है और इसीका जप कर रहा है। अभी कचरा खोद-खोदकर फेंकने का काम चल रहा है। पूछा जाता है कि इस कोयम्बतूर जिले में कितना कचरा फेंका, तो जवाब मिलता है कि दस हजार एकड़। फिर लोग सोचते हैं कि जो बहुत सारा कचरा बचा है, वह कब फेंका जायगा ? लेकिन वह कचरा नहीं है, अंधकार है। यह बात जब लोगों के ध्यान में आयेगी, तब वे सोचेंगे कि ये लोग क्या कर रहे हैं। फिर वे अपनी लालटेन लेकर आयेंगे, तो एक क्षण में प्रकाश फैलेगा।

शस्त्रों के हल बनेंगे

बाबा जप करेगा और काम आप लोग करेंगे। क्या आपका काम बाबा करेगा? आपका खाना बाबा खायेगा? आपकी नींद बाबा लेगा? आपको अपना खाना खुद खाना होगा, अपनी नींद खुद लेनी होगी। हिन्दुस्तान का मसला हिन्दुस्तान हल करेगा। बाबा ने अपना मसला हल किया है। उसने अपनी कोई मालकियत नहीं रखी। जैसे साँप दूसरे के घर में जाकर रहता है, वैसे बाबा भी दूसरे के घर में जाकर रहता है। बाबा ने साँप का चरित्र उठा लिया है। वह अपना घर बनाता नहीं। भागवत में अवधूत मुनि ने कहा है कि 'मैं साँप से यह बोध लेता हूँ', उसी तरह बाबा ने साँप से बोध लिया और अपनी मालकियत छोड़ दी। वह अपनी देह की भी मालकियत नहीं मानता, बल्कि यही मानता है कि यह सारी देह समाज की सेवा के लिये है। उसने स्वयं अपने लिए कोई वासना नहीं रखी। तो, बाबा का यह प्रश्न हल हो गया है। इसलिए बाबा को कोई समस्या नहीं हल करनी है। वह सारे देश की समस्या है, उसे सारा देश हल करेगा।

आज दुनिया में लोग बड़े-बड़े बम बनाते हैं, लेकिन ये सारे शस्त्रास्त्र खतम हो जायँगे। उन्हें कौन तोड़ेगा? जिन हाथों ने ये बनाये हैं, वे ही हाथ उन्हें तोड़ेंगे। ये सारी-की-सारी तलवारें, बंदूकें लोहे के कारखानों में वापिस आयेंगी और वहाँ उनका रस बनाकर हल बनाये जायँगे। सारे-के-सारे शस्त्रास्त्र पिघलने के लिए आनेवाले हैं, जहाँ उनसे अच्छे-अच्छे औजार बनेंगे, काटने के लिए हँसिया, खेती के लिए हल और सूत कातने के लिए तकुए बनेंगे। यह कौन बनायेगा? जिन लोगों ने ये शस्त्र बनाये, वे ही बनायेंगे। कब? जब विचार बदलेगा तब। विचार बदलने पर सारी-की-सारी सृष्टि का संहार हो जाता और नयी सृष्टि पैदा होती है। सूर्य की किरणें फैलते ही सभी लोग अपने बिस्तर लपेट लेते हैं। जिन्होंने बिछाये थे, वे ही लपेट लेते हैं। इसी तरह जिन्होंने ये शस्त्रास्त्र बनाये हैं, उन्हींकी समझ में जब आयेगा कि इनसे कोई मसला हल नहीं होता, तो वे ही इन्हें खतम कर देंगे। लोग पूछते हैं कि इतनी बड़ी भारी

योजनाएँ गिरेंगी ? परंतु भूकप से जितना बड़ा मकान होता है, उतना ही वह जल्दी गिरता है। छोटे मकान टिक भी जाते हैं। उसके लिए क्या करना होगा ? विचार फैलाना पड़ेगा और वही बाबा कर रहा है।

मुलुर (कोयम्बतूर)
६-१०-'५६.

अपने कामों की जिम्मेवारी खुद उठायें : ५५ :

अभी आपने एक अद्भुत ही भजन सुना (सभा में प्रवचन के पहले माणिक्यवाचकर का एक भजन गाया था)। उसमें भक्त कहता है कि 'भला बुरा जो कुछ करना है, तू करता है। मैं उसके लिए जिम्मेवार नहीं।'

सारी जिम्मेवारी भगवान पर छोड़ना कठिन

मेरे हाथ से भला या बुरा कुछ भी हो, दोनों के लिए मैं जिम्मेवार नहीं, यह कहना बहुत बड़ी बात हो जाती है। इस तरह के भजन सुनने की आदत हमें हो गयी है। लेकिन उसका अर्थ कितना गहरा होता है, यह हम नहीं जानते। मेरे हाथ से कुछ अच्छा काम हुआ, तो उसका आनंद, हर्ष या अहंकार नहीं होना चाहिए, यह तो कुछ कोशिश करने से ध्यान में आ सकता है। किंतु मेरे हाथ से कुछ बुरा काम हो, तो उसकी भी मुझपर कोई जिम्मेवारी नहीं, उससे कुछ दुःख भी नहीं होता है, यह अनुभव बहुत कठिन है। बहुत ज्यादा खा लिया याने गलत काम हुआ, तो उसका फल मिलेगा ही, पेट जोरों से दुखना शुरू होगा। अब भक्त कहेगा कि ज्यादा खाया, इसलिए मैं जिम्मेवार नहीं और उसके कारण पेट दुखता है, उसके लिए भी मैं जिम्मेवार नहीं हूँ। लेकिन यह बोलना ही कठिन है, उसका अनुभव और भी कठिन है, इसलिए बेहतर यही है कि हम अपने कामों की जिम्मेवारी खुद उठायें।

गलत बँटवारा

कुछ लोगों ने बीच का एक मार्ग निकाला है। कुछ अच्छा काम किया

और उसका अच्छा फल मिला, तो कहते हैं कि हमने किया और कुछ गलत काम हुआ, तो कहते हैं कि भगवान् ने कराया, हम क्या करें? डॉक्टर लोग ऐसा ही करते हैं। डॉक्टर ने सौ बीमारों को औषध दिया, जिसमें से अस्सी दुरुस्त हो गये, तो उसके औषध से दुरुस्त हुए और बीस मर गये, तो ईश्वर ने मार डाले। अगर अस्सी लोगों को तुमने दुरूस्त किया, तो बीस लोगों को तुमने ही मार डाला, ऐसा कहो। भला कुछ हुआ, तो हमारे हाथ से हुआ, उसमें हमारी जिम्मेवारी है और बुरा हुआ, तो ईश्वर ने किया, इसमें हमारी कोई जिम्मेवारी नहीं। किन्तु इस तरह बँटवारा करना मिथ्या है, यह नहीं चलेगा। या तो भला बुरा दोनों की जिम्मेवारी खुद उठाओ या दोनों की जिम्मेवारी ईश्वर पर छोड़ दो।

जिम्मेवारी हम खुद उठायें

भला या बुरा, दोनों की जिम्मेवारी छोड़ना आसान मालूम होता है, हमारे समाज में यह भाषा बहुत चलती है। हिन्दुस्तान में इस तरह बोलने की आदत पड़ गयी है कि भगवान् सब कुछ कराता है, हमारे हाथ में कुछ नहीं है। इस तरह बोलना आसान है, पर उसका अनुभव करना आसान नहीं। अनुभव का अर्थ यह है कि बिच्छू काटे, तो रोये नहीं और मीठा आम मिले तो खुश भी न हों। इसमें मीठा आम मिलने पर खुश न होना, कुछ संभव भी है, पर बिच्छू काटने पर न रोना कठिन है। सारी जिम्मेवारी ईश्वर पर सौंपने की भाषा माणिक्यवाचकर बोल सकता है, क्योंकि उसकी यह अवस्था हो गयी थी कि बिच्छू काटने पर भी शांत रहता था। इसलिए उसके लिए वह शोभा देता है परंतु हमारे लिए यही शोभा देता कि हम भला-बुरा, दोनों की जिम्मेवारी उठायें और सोच-विचार कर भला करें और बुरा टालें। ईश्वर सब कुछ करेगा, यह न कहें। ईश्वर ने हमें विवेकबुद्धि दी है। उसका उपयोग कर जो अच्छा हो, उसे ही करें और जो खराब हो उसे न करें। हमारे हाथ से हो चुका, ऐसा न कहना चाहिए, बल्कि हमने किया, यही कहना चाहिए। हमने बुरा किया, तो हमें उसका बुरा फल जरूर मिलेगा। उसे भोगना ही चाहिए, उसके लिए रोना ठीक नहीं और न ईश्वर से प्रार्थना करना ही ठीक है।

सांसारिक काम अपनी अक्ल से, पारमार्थिक ईश्वर की अक्ल से ?

लोगों से जब हम पूछते हैं कि क्या भूदान देना चाहिए ? सबको जमीन देनी चाहिए ? तो वे 'हाँ' कहते हैं, और यह पूछने पर कि 'क्या हवा, पानी और जमीन की मालकियत हो सकती है ?' तो 'नहीं' कहते हैं। इस पर हम कहते हैं कि 'तब तो आपको दान देना होगा।' लेकिन जहाँ दान देने की बात आती है, वहीं वे हिचकिचाने लगते हैं और कहते हैं कि भगवान् बुद्धि देगा, तब होगा। याने अपने हाथ से पुण्य करने का सवाल आता है, तो भगवान् बुद्धि देगा तब होगा। पर जब लड़की की शादी करनी होती है, तब खुद पचास जगह ढूँढ़ने क्यों जाते हो ? क्यों नहीं कहते कि भगवान् की इच्छा होगी तब शादी होगी ? भूख लगती है तो मनुष्य उठता है, चूल्हा सुलगाता है, घर में चावल न हो, तो कहीं से माँगकर ले आता है, माँगने पर न मिले तो चुराकर लाता और रसोई पकाकर खाता है। उस वक्त वह क्यों नहीं कहता कि ईश्वर चाहेगा, तब होगा ? मतलब यह है कि संसार के सब काम हम अपनी इच्छा से, अपनी अक्ल से करेंगे, किंतु जब परमार्थ का कार्य करना हो, तब कहेंगे कि ईश्वर करेगा तब होगा। याने स्वार्थ के कार्य हम अपने प्रयत्न से करेंगे और पुण्यकार्य, धर्मकार्य ईश्वर करायेगा, तब होगा। बोलने में तो हम पाप-पुण्य दोनों की जिम्मेवारी ईश्वर पर डालते हैं, पर फल भोगने का समय आने पर पुण्य की जिम्मेवारी अपने ऊपर लेते और पाप की जिम्मेवारी ईश्वर पर डालते हैं। फिर पाप का फल मिलने लगता है, तब क्यों रोते हैं ? पाप की जिम्मेवारी ईश्वर पर है, तो रोने दो ईश्वर को, तुम क्यों रोते हो ? लेकिन मनुष्य रोता है, फिर भी वह समझता नहीं कि यह मेरी जिम्मेवारी है।

भक्तिमार्गी साहित्य के कारण भ्रम

इस तरह के भक्तिमार्गी साहित्य से हिन्दुस्तान के लोगों के दिमाग में यह सर्वथा भ्रम पैदा हो गया है। वे समझते ही नहीं कि असली चीज क्या है, अपनी हालत क्या है ? अपनी हालत के अनुसार ईश्वर का स्वरूप बदलता है।

अगर हमें सुख-दुःख की परवाह है, तो हम अपने पाप-पुण्य के लिए जिम्मेवार हैं, उसे ईश्वर पर नहीं सौंप सकते। हमें विचारपूर्वक पुण्य करना और उसका फल भोगना होगा। हमें विचारपूर्वक पाप को टालना और उसके फल से दूर रहना चाहिए। जब हम सुख-दुःख से परे हो जायेंगे, तभी माणिक्य-वाचकर का वह वाक्य काम में आयेगा। तबतक तो हमें सत्कार्य में ही निरत रहना चाहिए, बुरी चीजों को दूर रखना चाहिए, सारे समाज को प्यार करना और मिल-जुलकर रहना चाहिए। जो सुख हम अपने लिये चाहते हैं, वही दूसरों को देना चाहिए। दूसरों को सुखी बनाकर ही हम सुखी बन सकते हैं, दुःखी बनाकर नहीं। इसलिए हमें परोपकार में रत रहना चाहिए, आस-पास के लोगों की निरंतर सेवा करनी चाहिए। तभी हमें सुख मिलेगा, मानसिक समाधान मिलेगा। होते-होते आखिर यह सुख की वासना ही जल जायगी और तब माणिक्यवाचकर का वह वाक्य हमारे काम आयेगा।

केथनुर (कोयम्बतूर)
११-१०-'५६.

स्त्रियाँ और संन्यास : ५६ :

मैं मानता हूँ कि हिन्दूधर्म ने स्त्रियों पर कुछ अन्याय किया है। पुरुषों को डर लगता था कि स्त्रियों को पारमार्थिक कार्य में प्रवेश देने से खतरा पैदा होगा।

बुद्ध ने खतरा उठाया !

भगवान् बुद्ध भी आरंभ में स्त्रियों को दीक्षा नहीं देते थे। एक बार उनके शिष्य आनन्द एक स्त्री को लेकर आये और भगवान् से कहने लगे : 'इसे दीक्षा दीजिये। यह स्त्री दीक्षा के लिए अत्यंत योग्य है, शायद हमसे भी अधिक।' तब भगवान् बुद्ध ने उस स्त्री को दीक्षा देना स्वीकार किया। फिर भी उन्होंने उस समय आनन्द से कहा : 'आनन्द, मैं एक खतरा उठा रहा हूँ।'

महावीर की निर्भीकता

महावीर स्वामी बुद्ध भगवान् के कुछ ३०–४० साल पहले हुए। वे इतने निर्भय थे कि उनसे अधिक निर्भय व्यक्ति शायद ही कोई हो। स्त्रियों और पुरुषों को समान अधिकार है, इस बात को वे अक्षरशः सत्य मानते थे। वे मानते थे कि सन्यास, ब्रह्मचर्य और मोक्ष का अधिकार, स्त्री और पुरुष दोनों को है। वे अत्यंत निर्विकार थे, नग्न घूमते थे। जैनियों में पुरुषों के समान सैकड़ों स्त्री-संन्यासिनियाँ काम करती थीं। उनमें दो प्रकार होते हैं: (१) श्रमण और (२) श्रावक। श्रमण माने संन्यासी और श्रावक माने गृहस्थाश्रम में रहकर धर्मकार्य करनेवाला। उनमें जितने श्रमण थे, उनसे अधिक श्रमणियाँ थीं। आज भी जैन संन्यासिनियाँ धर्म-प्रचार करती रहती हैं। स्त्रियों को दीक्षा देने के विषय में बुद्ध भगवान् को जो डर था, वह महावीर स्वामी को नहीं था।

रामकृष्ण परमहंस को भी संकोच

यह तो पुरानी बात हो गयी। आज भी यद्यपि रामकृष्ण परमहंस के आश्रम में शारदा देवी पहले से ही थीं, फिर भी स्त्रियों को दीक्षा नहीं दी जाती थी। अब पिछले साल से स्त्रियों को दीक्षा देना आरंभ हुआ है। इसका मतलब यह हुआ कि उन्हें भी इस कार्य को आरम्भ करने में इतना समय बिताना पड़ा।

गांधीजी का नया रास्ता

गांधीजी को इसमें कोई दिक्कत नहीं मालूम हुई, क्योंकि यद्यपि वे मानते थे कि संन्यास का अधिकार सबको है, फिर भी वे किसी को भी दीक्षा नहीं देते थे। जहाँ दीक्षा देने की बात आती है, वहाँ बहुत दृढ़ता की आवश्यकता होती है, जरा भी दोष आ जाय, तो उससे संस्था कलुषित होती है। दीक्षा देने की आवश्यकता गांधीजी को महसूस नहीं हुई। उन्होंने दीक्षा के बिना ही शुद्ध रहने का मार्ग बताया। उन्होंने एक नया विचार दिया कि 'गृहस्थ' को ही 'वानप्रस्थ' बनना चाहिए, याने दो-चार दिन संसार में बिता कर पति-पत्नी को वानप्रस्थ बनकर रहना चाहिए और गृहस्थाश्रम में संयम होना चाहिए। इसमें

ढोंग नहीं आ सकता है और साधकों की साधना को पूरी गुंजाइश मिलती है। गांधीजी ने स्त्री-पुरुष दोनों को समान अधिकार दिये। किन्तु दीक्षा देनेवालों को स्त्रियों को दीक्षा देने में भय मालूम होता था।

मीरा की मीठी चुटकी

मीराबाई की कहानी है। एक बार वह मथुरा-वृन्दावन गई थीं। वहाँ एक संन्यासी रहते थे। मीराबाई ने उनके दर्शन की इच्छा प्रकट की, पर उनके शिष्यों ने बताया कि हमारे गुरु स्त्रियों को दर्शन नहीं देते। इस पर मीराबाई ने वहीं पर एक भजन बनाया, जो गुजराती में है :

'हुँ तो जाणती हती जे व्रजमां पुरुष छे एक।
व्रज मां वसीने तमे पुरुष रह्या छो तेमां भलो तमारो विवेक।'

"मैं तो समझती थी कि व्रज में सिर्फ एक ही पुरुष है और बाकी सारी गोपियाँ हैं। व्रज में रहकर भी आप पुरुष बने रहे, तो आपके विवेक के लिए क्या कहूँ?" जब शिष्यों ने गुरु को यह सुनाया, तब गुरु को लगा कि इसे दर्शन देना उचित है और फिर उन्होंने दर्शन दिया।

संन्यास की कलिवर्ज्यता पर शंकर का प्रहार

संन्यास, ब्रह्मचर्य, परिव्रज्या लेने की इजाजत हो, तो भी हजारों स्त्रियाँ संन्यासिनी बनेंगी, ऐसी बात नहीं। आज पुरुषों को इजाजत है, तो भी हजारों पुरुषसंन्यासी थोड़े ही बनते हैं। किंतु इजाजत न होना एक 'डिसएबिलिटी' (अपात्रता) होना प्रगति के लिए रुकावट पैदा करता है। हिन्दूधर्म में पहले ऐसा नहीं था। पर बीच में माना गया कि कलियुग में संन्यास सबके लिए वर्जित है। इस पर प्रहार शांकर-सम्प्रदाय से हुआ। शंकराचार्य के गुरु संन्यासी थे। वे पहले गृहस्थाश्रमी थे और बाद में उन्होंने संन्यास लिया। ब्रह्मचर्य में से ही संन्यासी होने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने अपनी माँ से संन्यास लेने की इजाजत माँगी। माँ इजाजत नहीं देती थी, पर आखिर उसे देनी पड़ी। आज हम शंकराचार्य का अत्यंत गौरव गाते हैं। हिन्दूधर्म

पर श्रीकृष्ण भगवान् के बाद सबसे ज्यादा असर यदि किसी व्यक्ति का हुआ, तो वह शंकराचार्य का हुआ है। उनके भाष्य-स्तोत्र आदि देश भर में सर्वत्र पढ़े जाते हैं। किंतु उनके रहते, जो हालत थी, उसकी हम कल्पना नहीं कर सकते।

अन्त तक माफी नहीं माँगी

शंकराचार्य संन्यास लेकर निकले और उत्तर में घूम रहे थे, तो उन्हें माता का स्मरण होने लगा। उन्होंने सोचा कि स्मरण हुआ है, इसका मतलब यह है कि माँ मुझे बुला रही है। इसलिए वे दक्षिण की ओर वापस चल पड़े। घर पहुँचे, तो उनकी माता की मरने की तैयारी थी। माँ को भगवान् का दर्शन होना चाहिये, इसलिए उन्होंने कृष्णाष्टक बनाया और माँ के मुँह से उसका उच्चारण कराया। उसकी अंतिम पंक्ति का उच्चारण होते ही माँ को भगवान् का दर्शन हुआ, ऐसी कहानी है। माँ ने अपने लड़के को संन्यास लेने के लिए इजाजत दी थी और कलियुग में तो संन्यास वर्जित माना गया था, इसलिए उनके समाज की तरफ से याने नंबुद्री ब्राह्मणों की तरफ से उनका बहिष्कार था, जैसे टॉलस्टॉय का पोप की तरफ से बहिष्कार था या जैसे गांधीजी को हिन्दू धर्म का वैरी समझकर मारा गया था। बहिष्कार के कारण माँ की स्मशान की यात्रा के लिए ब्राह्मणों में से एक भी मनुष्य नहीं आया। जाति-भेद था, इसलिए दूसरी जातिवाले तो आ ही नहीं सकते थे। लाश उठाने के लिए कोई नहीं आया, तो फिर शंकराचार्य ने तलवार से लाश के तीन टुकड़े किये और एक-एक टुकड़ा ले जाकर जलाया। वे अत्यंत प्रखर ज्ञानी थे, ऐसे मौके पर भी वे पिघले नहीं। अगर वे माफी माँगते, तो ब्राह्मण स्मशानयात्रा के लिए आते, परन्तु उन्होंने माफी नहीं माँगी।

हक पाने का यही तरीका

आज शंकराचार्य के लिए इतना आदर है कि नंबुद्री ब्राह्मणों में उनकी स्मृति में, जलाने के पहले लाश पर तीन लकीर खींचते हैं। परंतु उस जमाने में समाज इतना कठोर था कि माँ की लाश उठाने के लिए कोई नहीं आया।

फिर भी शंकराचार्य ने समाज पर कोई आक्षेप नहीं किया। उनके ग्रंथों में कहीं भी कटुता नहीं है। उत्तम सुधारक का यही लक्षण है। शंकराचार्य को संन्यास का हक प्राप्त करने के लिए इतना करना पड़ा। इसी तरह एक-एक हक प्राप्त करना होता है।

स्त्री-पुरुष-समानता का हक कैसे मिले ?

स्त्री-पुरुषों की समानता का हक भी ऐसे ही प्राप्त करना होगा। स्त्रियाँ अगर पुरुषों की बराबरी में बीड़ी पीना चाहें, तो वह हक उन्हें आसानी से मिल सकता है। किंतु वे संन्यास, ब्रह्मचर्य, परिव्रज्या या मोक्ष का हक चाहती हैं, तो कोई ज्ञानवान, प्रखर वैराग्य संपन्न स्त्री निकलेगी, तभी वह हासिल होगा। गांधीजी के देने से उन्हें यह हक हासिल नहीं होगा, न और किसी के देने से। जब शंकराचार्य की कोटि की कोई स्त्री निकलेगी, तभी उन्हें वह हक हासिल होगा।

वडुमपालेयम्
११-१०-'५६

ज्ञानविज्ञानमय युग : ५७ :

अभी आपने एक बहुत सुंदर भजन सुना कि भक्तशिरोमणि 'आंडाल' भगवान् कृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पण कर रही है। उसने अपने लिए कुछ भी नहीं रखा, बल्कि अपना जीवन ही कृष्णमय बना दिया। यहाँ तक कि कृष्ण भगवान् को पहनाने के लिए वह जो माला ले जाती थी, उसे पहले स्वयं पहन लेती और देखती कि ठीक दीखती है या नहीं। भगवान् को वह पुष्पमाला अधिक प्रिय होती थी, जो आंडाल पहले स्वयं पहनकर फिर भगवान् को देती। इसका अर्थ यह है कि उसका अपना निज का भोग भी परमेश्वरार्पण हुआ था। हम अपने लिए कुछ रख लेते हैं और बाकी भगवान् को देते हैं, समाज-सेवा में लगाते हैं, तो वह परोपकार होता है। लेकिन हम अपने लिए कुछ भी नहीं

रखते, सब समाज का समझते हैं, अपने शरीर के भोग को भी एक सामाजिक-कार्य समझते हैं, तो वह संपूर्ण कृष्णार्पण हो जाता है। फिर उस मनुष्य के लिए परोपकार जैसी कोई चीज ही नहीं रहती, क्योंकि 'स्व' और 'पर' में भेद ही मिट जाता है। फिर तो 'सर्वोपकार' हो जाता है। हमने 'कुरल' में एक बड़ा सुंदर मंत्र पढ़ा था कि 'जिसका हृदय प्रेम से भरा हो, जो उदार और बुद्धिमान् हो, वह समझता है कि अपनी हड्डियाँ भी अपनी नहीं, बल्कि समाज की हैं। इससे उल्टे जो छोटी बुद्धिवाला होता है, वह सारी दुनिया अपनी मालकियत की समझता है।'

पुराणों में दधीचि ऋषि की सुंदर कहानी है। वे महान् तपस्वी और भगवान् की भक्ति में तन्मय थे। उनके शरीर में ज्यादा मांस नहीं था, सिर्फ हड्डियाँ ही थीं। समाज के लोग उनके पास आये और कहने लगे : 'हमें वृत्रासुर से बहुत तकलीफ हो रही है और कहा गया है कि दधीचि ऋषि की हड्डियों के वज्र से ही उसकी पराजय हो सकेगी। इसलिए आप कृपाकर अपनी अस्थियाँ दीजिये।' दधीचि ऋषि ने बड़ी खुशी से अपनी हड्डियाँ समाज को अर्पित कर दीं और वे स्वयं मर गये।

धर्म-विचार के बिना मानव क्षण भर भी टिक नहीं सकता

अपना सर्वस्व समाज को समर्पित करना चाहिए, ऐसी बातें सुनने की हमारे समाज को आदत पड़ गयी है। आदत के कारण उनका चित्त पर बहुत ज्यादा असर भी नहीं होता। कुछ लोगों ने यह मान लिया है कि यह सारा धर्म-विचार परलोक के लिए है, इहलोक के लिए नहीं। कुछ लोगों ने माना है कि आगे जो आदर्श समाज आयेगा, उसमें यह नीति चलेगी; पर आज के समाज में नहीं। इसीलिए 'ईसा मसीह के अनुयायी' कहलानेवाले भी इन दिनों शस्त्रसंभार बढ़ाने की तैयारी में लगे हैं। वे रविवार के दिन चर्च में जाकर प्रार्थना-प्रवचन सुनते और उनकी सेना के हर सिपाही के जेब में बाइबिल होती है। वे समझते हैं कि अहिंसा व्यक्तिगत कल्याण के लिए अच्छी है, पर समाज कल्याण के लिए हिंसा की जरूरत रहेगी ही। लोग समझते हैं कि त्यागी पुरुषों की ये सारी कहानियाँ,

भक्तगाथाएँ, धर्मप्रवचन, अहिंसा की बातें महापुरुषों के लिए हैं, अपने लिए नहीं। यह कल्पना गलत है। धर्म की अगर कहीं जरूरत है तो आज इसी क्षण है। जैसे हमें हवा इसी क्षण चाहिए, हम हवा को अगले क्षणों के लिए छोड़ देंगे, तो इन क्षणों में हमें मरना होगा। हवा को भी रोका जा सकता है, दस-पंद्रह मिनट तक हवा के बिना चल सकता है, पर धर्मविचार और प्रेम के बिना मनुष्य एक क्षण भी नहीं टिक सकता। फिर सवाल उठाया जा सकता है कि फिर आज कैसे टिका है? आज भी वह इसीलिए टिका है कि समाज में प्रेम का अंश अधिक है। कहीं द्वेष, झगड़ा या बुराई हो, तो मनुष्य को चुभती और एकदम उसकी आँखों को दिखाई देती है। किसी माता ने किसी बच्चे को प्यार किया, तो अखबार में उसका तार नहीं भेजा जाता, किंतु कहीं खून हुआ, तो उसकी खबरें अखबार में महीनों तक सतत आती हैं। सारा इतिहास लड़ाइयों से भरा रहता है। इसलिए शायद यह गलतफहमी हो सकती है कि मानव स्वभाव में झगड़े, द्वेष आदि हैं, पर बात इससे उल्टी है। स्वच्छ, निर्मल, शुभ्र खादी को जरा-सा भी दाग लग जाय तो वह एकदम दीखता है, वह सहन नहीं होता। दूध में जरा भी कचरा पड़ा हो, तो सहन नहीं होता। मानव-हृदय शुद्ध-निर्मल होने के कारण उसे बुराई सहन नहीं होती। इसलिए जो बुराई प्रकट होती है, वह फौरन अखबारों में और इतिहास में आ जाती है।

भूदान-यज्ञ में यह अनुभव हो रहा है कि हजारों लोग जमीन देते हैं। आजतक हमें साढ़े पाँच लाख लोगों ने जमीन दी है। जमीन के लिए भाई-भाई में झगड़े चलते हैं, कोर्ट में केस चलते हैं किसान को जमीन प्राणवत् प्रिय होती है, लेकिन जहाँ जमीन माँगी गई है, वहाँ लोगों ने प्रेम से दी है। कहीं कम-बेशी होती है, क्योंकि मोह होता है।

नदी समुद्र से डरती नहीं

कुल की कुल जमीन दान दीजिये, ऐसी माँग करना भी कलियुग के लिए साहस की बात मानी जायगी। फिर भी इस युग में यह बात बोली जाती है। इसलिए हम कहना चाहते हैं कि यह कलियुग नहीं, 'नारायणपरायणता' का

युग है। आज अपना सब कुछ समाज के लिए अर्पण करने की बात ठीक मालूम होती है। अगर किसी एक शख्स के लिए जमीन की माँग की गई, तो देना ठीक है या बेठीक, वह उसका उपयोग कैसे करेगा, आदि सवाल पैदा हो सकते हैं। लेकिन जहाँ समाज को अर्पण करने की बात आ गई, वहाँ तो पैसा बैंक में रखने की बात हुई। लोग इस बात को समझ जाते हैं कि मनुष्य के लिए सबसे सुरक्षित बैंक अगर कोई है, तो वह समाज है। वहाँ अपना पैसा सुरक्षित रहेगा और उसका इतना व्याज मिलेगा कि हम अपने दो हाथों से न ले सकेंगे। कोई भी नदी कितनी ही बड़ी क्यों न हो, समुद्र में जाने से डरती नहीं। कावेरी भी अपना पानी समुद्र में उँडेल देती है और छोटा-सा नाला भी। बड़ी गंगा भी गंगासागर में मिल जाती है, क्योंकि सब का गन्तव्य-स्थान समुद्र ही है और वहीं से सबको पानी मिला है। इसलिए जहाँ समाज को देने की बात आती है, वहाँ लोगों को उसे समझने में मुश्किल मालूम नहीं होती।

ज्ञानविज्ञानमय युग

यह सारा इस युग में हो रहा है, क्योंकि यह **ज्ञानविज्ञानमय युग** है। पुराना युग ज्ञानमय युग था। वे लोग आत्मज्ञान से ही समझाते और आत्मज्ञान से ही माँगते थे। आत्मज्ञान का ग्रहण सबको आसानी से नहीं होता। इसलिए कुछ लोग उनकी बात सुनते थे, तो कुछ नहीं। अब इस युग जो बात कही जा रही है, वह आत्मज्ञान भी कहता है और विज्ञान भी। आत्मज्ञान कहता है कि 'तुम अपना सब कुछ दे दोगे, तो श्रेय होगा।' पहले भी वह यही कहता था और आज भी कहता है, '**तेन त्यक्तेन भुंजीथाः**।' हम भी आत्मज्ञान की वही माँग कर रहे हैं और साथ-साथ विज्ञान की भी माँग कर रहे हैं। हम समझाते हैं कि भाइयो, इस विज्ञान-युग में अलग-अलग रहोगे, तो टिक न सकोगे। एक हो जाओगे तो टिक सकोगे। आपका श्रेय और कल्याण तो एक होने में ही है, वह प्राचीन काल में भी था और आज भी है। परंतु आपका ऐहिक जीवन भी इससे सुधरेगा, ऐसा विज्ञान

कह रहा है। आज व्यक्तिगत मालकियत के असुर पर एक तरफ से आत्मज्ञान का प्रहार हो रहा है और दूसरी तरह से विज्ञान का। इन दो प्रहारों के बीच अब यह असुर टिक नहीं सकता।

बुद्ध और आईनस्टीन का शस्त्र

आप इस गलतफहमी में न रहें कि यह कलियुग है। भागवत की भाषा में तो यह 'नारायण सेवा का युग' है और आज की भाषा में 'ज्ञान-विज्ञान का युग'। बुद्ध भगवान् की बात आत्मकल्याण को पहचाननेवाले ही सुनते थे। पर बाबा की बात आत्मकल्याण और व्यक्तिगत कल्याण तथा समाज-कल्याण को पहचाननेवाले भी सुनते हैं। सबसे अलग रहने से इस युग में हम टिक नहीं सकते, यह बात बाबा के कहने से और अच्छी तरह समझ में आती है। बुद्ध भगवान् का शस्त्र तो बाबा के पास है ही, दूसरा विज्ञान का, आईन्स्टाइन का शस्त्र भी बाबा के पास है। उसके पास दो आयुध हैं, इसी-लिए भूदान और संपत्तिदान दे रहे हैं। यह इसलिए बन रहा है, क्योंकि आत्मज्ञान और विज्ञान, दोनों जोर कर रहे हैं। इसलिए जो ताकत दुनिया में पहले कभी भी पैदा नहीं हुई थी, वह ताकत आज पैदा होने जा रही है।

स्वार्थ के लिए सर्वस्व समर्पण करो

लोग पूछते हैं कि बाबा पाँच-साढ़े पाँच साल से सतत घूम रहा है, तो उसे थकान कैसे नहीं आती? हम कहते हैं कि प्रभु रामचंद्र जैसे महापुरुष को रावण जैसे मामूली असुर को नष्ट करने के लिए चौदह साल घूमना पड़ा, तो बाबा को मोहासुर को नष्ट करने के लिए साढ़े पाँच साल घूमना पड़ा, तो कौन-सी बड़ी बात है? रावण के तो दस ही सिर थे, लेकिन मोहासुर के हजार-हजार सिर हैं। बाबा को साढ़े पाँच साल घूमने से कोई थकान नहीं मालूम होती, बल्कि बड़ा उत्साह आता है, क्योंकि इस काम में धर्म और अर्थ, दोनों इकट्ठा हुए हैं। आप परार्थ चाहते हों तो आपको भूदान, संपत्तिदान में हिस्सा लेना चाहिए। आप स्वार्थ चाहते हों, तो भी इसमें हिस्सा लेना चाहिए। परार्थ चाहते हों, तो थोड़ा-सा दान देने से निभ

जायगा; पर स्वार्थ चाहते हों, तो सर्वस्व समर्पण करो, जैसे आंडाल ने अपना सर्वस्व भगवान् को समर्पित किया था। इस तरह धर्म और अर्थ, स्वार्थ और परार्थ, दोनों इकट्ठे हो रहे हैं। जरा उधर पश्चिम के देशों की तरफ देखिये। वहाँ कितना सामूहिक कार्य हो रहा है। वह सारा विनाश के लिए किया जा रहा है, फिर भी उसमें समूहभावना, सहयोग है ही। वह कितना प्रचंड सामूहिक कार्य है! ऐसे जमाने में हम अपना अलग-अलग घर, अलग इस्टेट आदि रखेंगे, तो कैसे टिकेंगे? इसलिए इस जमाने की माँग है कि हम सब व्यापक बन जायँ।

काट्टुपालेयम् (कोयम्बतूर)
१४-१०-'५६

धर्म का रूप बदलता है : ५८ :

सेवा और धर्म का रूप भी दिन-दिन बदलता रहता है। उसे पहचानना पड़ता है। युग-युग के अलग-अलग धर्म होते हैं, किन्तु कुछ समान धर्म भी होते हैं। सत्य, प्रेम और करुणा सारी दुनिया के लिए याने सब स्थानों के लिए और सब जमानों के लिए समान-धर्म है। परमेश्वर के असंख्य गुणों में से हमने ये तीन गुण चुन लिए हैं और उनका हम निरंतर स्मरण करते हैं। परमेश्वर का रूप इन्हीं तीन गुणों में देखते हैं। हमने कुल शास्त्रों, सत्पुरुषों के अनुभवों और इतिहास का निचोड़ निकालकर सत्य, प्रेम और करुणा ये तीन गुण चुने हैं। ये गुण ही अनादिकाल से आज तक सारी दुनिया को ऊपर उठाने का काम करते आ रहे हैं। फिर भी ये उस-उस समाज के लिए जैसा रूप चाहिए, वैसा लेते हैं।

पुराना समाज श्रद्धा-प्रधान, आज का ज्ञान-प्रधान

प्राचीन काल से आज तक समाज में भी सत्य, प्रेम और करुणा ये त्रिमूर्ति काम कर रहे हैं, किन्तु पुराने समाज में उनका एक रूप था, बीच के समाज में दूसरा रूप और आज तीसरा रूप है। पुराना समाज श्रद्धा-

प्रधान था, तो आज का समाज ज्ञान-प्रधान हो गया है। यह अपरिहार्य है। इसका मतलब यह नहीं कि पुराने समाज में ज्ञान की कीमत न थी और आज के समाज में श्रद्धा की कीमत नहीं है। लेकिन जहाँ सृष्टि का रहस्य और विज्ञान मनुष्य के सामने खुल गया, वहाँ मनुष्य की अवस्था दूसरे प्रकार की होती है। पुराने जमाने में बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों को और सम्राटों को भूगोल का जो ज्ञान नहीं था, वह आज दस साल के लड़के को है। अकबर जैसे बड़े बादशाह को या श्रीहर्ष जैसे बड़े सम्राट् को दुनिया में कितने देश हैं, यह कहाँ मालूम था? लेकिन आज हम देखते हैं कि स्वेज नहर के बारे में घटना हो रही है, तो दुनिया में ऐसा एक भी देश नहीं कि जहाँ के लड़कों को उसका ज्ञान न हो। कुल दुनिया के कुल अखबारों में उस खबर को प्रधान स्थान दिया जाता है। लोग उसे पढ़ते हैं और उसके बारे में सोचते भी हैं। वाद-विवाद मंडलियों में उचित-अनुचित की चर्चा भी चलती है। हिन्दुस्तान को ही मिसाल लीजिये। पिछले साल सीमा-आयोग की रिपोर्ट प्रकाशित हुई और उस पर देश भर में काफी चर्चा चली। उसमें लड़कों ने और विद्यार्थियों ने भी दिलचस्पी ली। यह दुःखजनक नहीं, आनंदजनक बात है।

आज भी श्रद्धा का क्षेत्र है

मैंने ये मिसालें इसलिए दीं कि आगे का समाज ज्ञान-प्रधान रहेगा। इसका मतलब यह नहीं कि श्रद्धा का क्षेत्र कम हो जायगा। मेरी आँख को चश्मा लग गया, तो मेरी आँख पहले जितना दूर देखती थी, उससे बहुत ज्यादा दूर का देखने लगी। मेरी आँख का क्षेत्र बढ़ गया, इसलिए कान का क्षेत्र कम होने का कोई कारण नहीं। वह क्षेत्र ही अलग है। श्रद्धा का क्षेत्र पहले भी था और आज भी है। लेकिन पहले जिन बातों में नाहक श्रद्धा रखते थे, उन बातों में आज उनकी श्रद्धा न रहेगी, वहाँ बुद्धि आयेगी। जिस विषय का स्पष्ट ज्ञान होता है, वहाँ श्रद्धा का सवाल नहीं है। लेकिन जहाँ ज्ञान बढ़ता है, वहाँ अज्ञान भी बढ़ता है। जिनके पास ज्ञान नहीं होता था, उनके पास अज्ञान भी बहुत कम होता था। पहले लोगों को इस दुनिया का जितना

ज्ञान था, उससे आज ज्यादा ज्ञान हुआ है और पहले हमें इस दुनिया के बारे में जितना अज्ञान था, उससे आज ज्यादा अज्ञान है। सच्चे ज्ञानी सच्चे अज्ञानी भी होते हैं, इसीलिए वे नम्र होते हैं। लेकिन अज्ञानी को थोड़ा-सा ज्ञान हो गया, तो उसे लगता है कि मुझे सारा ज्ञान हो ही गया, अब मेरे पास अज्ञान नहीं रहा। ज्ञानी को पता चलता है कि अभी प्राप्त करने के लिए कितना ज्ञान पड़ा है। इसीलिए आज भी श्रद्धा का क्षेत्र है, लेकिन जिन बातों में श्रद्धा की जरूरत नहीं है, उन बातों में लोग नाहक श्रद्धा न रखेंगे।

करुणा का युगानुकूल नया रूप

पुराने समाज के मूल्य आज के समाज में ज्यों-के-त्यों काम नहीं देंगे। आज नये मूल्य आयेंगे। उससे घबड़ाने का कोई कारण नहीं। वह करुणा का नया रूप है। छोटे बच्चों को आज्ञा करना करुणा का एक रूप है, लेकिन प्रौढ़ बाप की करुणा का रूप यह है कि लड़कों को सलाह दे, आज्ञा न दे। बूढ़े बाप की करुणा का रूप यह है कि अपने प्रौढ़ लड़के को पूछने पर ही सलाह दे, अन्यथा उसके वश में रहे। अगर कोई बाप ऐसा हो, जो बूढ़ा होने पर कहे कि बीस साल पहले मेरी आज्ञा चलती थी, लेकिन आज नहीं चलती, यह क्यों हुआ? तो इस बाप में सिर्फ ज्ञान नहीं, ऐसी बात नहीं, बल्कि करुणा ही नहीं है।

पुराने लोग न पहचानेंगे

आज हम भूदान-यज्ञ के सिलसिले में जो कर रहे हैं, उसका आकलन पुराने ढंग से सोचनेवालों से एकदम नहीं होता, वे उसे समझ नहीं पाते, इसमें आश्चर्य नहीं। नारायण का एक अवतार राम था और उसीका दूसरा अवतार परशुराम, पर परशुराम ने राम को नहीं पहचाना। परशुराम कोई मूर्ख नहीं, महाज्ञानी और ईश्वर का अवतार था। फिर भी ईश्वर के नये अवतार को ईश्वर का पुराना अवतार पहचान न सका। लेकिन जब परशुराम ने रामचंद्र की कृति देखी, तब उसने पहचान लिया और मान लिया कि मुझे इसके सामने झुकना चाहिए।

पाँच साल से भूदान-यज्ञ एक छोटी-सी पगडंडी से चल रहा है। वह कोशिश कर रहा है कि दोनों ओर के आक्रमण टालकर आगे बढ़ें। पुराने लोग हमसे पूछते हैं कि बाबा, आप जैसा बोलते हैं, वैसा बापू नहीं बोलते थे। बापू तो बड़े-बड़े फंड जमा करते थे और उसका ब्यान हासिल करते थे, पैसा ठीक जगह रखा है और उसका ब्याज ठीक मिल रहा है या नहीं, इसका पूरा ध्यान रखते थे। इस तरह एक ओर से इस प्रकार का आक्षेप उठाया जाता है और दूसरी ओर से यह आक्षेप उठाया जाता है कि आप जन-समाज को प्यार से जीतना चाहते हैं और जिसे जितना महत्त्व न देना चाहिए, उतना देते हैं। कुछ लोग ठीक इससे उल्टा कहते हैं कि जिन्हें जितना महत्त्व देना चाहिए, उतना नहीं देते। एक भाई कह रहे थे कि गांधीजी ने कांग्रेस को इतनी महिमा दिलायी, तो आप क्यों नहीं देते? उधर से दूसरे लोग कहते हैं कि आप कांग्रेसवालों के साथ मिलजुलकर काम करते हैं, अधिकतर कांग्रेसवाले ही भूदान का काम करते हैं, इसलिए कांग्रेस की महिमा नाहक क्यों बढ़ा रहे हैं? कुछ लोग कहते हैं कि आप खतरनाक काम कर रहे हैं, क्योंकि मालकियत मिट रही है। उधर दूसरे लोग पूछते हैं कि आप भूदान माँगते फिरते हैं, तो सत्याग्रह कब करेंगे? उनकी सत्याग्रह की कुछ अपनी कल्पना है।

नये विचार के लिए नया वाहन

इस तरह दोनों ओर से लोग पूछते रहते हैं, तो हमें उस पर न आश्चर्य होता है, न दुःख, बल्कि खुशी होती है। नया युग आ रहा है। करुणा का नया रूप प्रकट हो रहा है। करुणा का पुराना रूप अपने इस नये रूप को पहचान नहीं रहा है। हम अपने कार्यकर्ताओं को समझाते हैं कि पुराने लोगों का जितना आशीर्वाद हासिल कर सकते हो, उतना कर लेना चाहिए और यह ध्यान में रखना चाहिए कि नये विचार के लिए नये वाहन की जरूरत होती है। इसलिए आत्मनिष्ठापूर्वक काम करते चले जाओ। हमारी वाणी में नम्रता हो, हरएक के साथ हम प्रेम से पेश आयें, विचार-भेद को ठीक से समझें, गलत

विचार जरा भी सहन न करें, फिर भी सबके लिए आदर रखें। इस तरह हम काम करते चले जायँगे, तो यह काम खूब बढ़ेगा।

बजाजनगर (वीरपांडी)
१५-१०-'५६.

एक पुराना भ्रामक तत्त्व-विचार : ५९ :

बहुत पुराने जमाने से एक भ्रम चलता आया है, जिसके मूल में एक तत्त्व-विचार भी है। कुछ दार्शनिकों ने माना है कि आद्यतत्त्वों में एक तत्त्व नहीं, बल्कि दो तत्त्व हैं : स्त्रीतत्त्व और पुंतत्त्व याने प्रकृति और पुरुष। प्रकृति जड़ होती है और पुरुष चेतन। इस पर से कुछ लोग यह भी कहने लगे कि 'स्त्रियों को मोक्ष और वेदाध्ययन का अधिकार नहीं, क्योंकि वे जड़ हैं। वे इस जन्म में श्रद्धा-भक्ति रख सकती और फिर अगला जन्म पुरुष का पाकर मोक्ष हासिल कर सकती हैं। लेकिन स्त्री-जन्म में ही मोक्ष हासिल नहीं हो सकता।'

यह सारी गलतफहमी उस प्रकृति-पुरुष वाले रूपक के कारण हुई है। व्याकरण में 'प्रकृति' शब्द का स्त्रीलिंग और 'पुरुष' शब्द का पुल्लिंग है। किंतु वास्तव में प्रकृति याने जड़-अंश और पुरुष याने चेतन-अंश है। स्त्री और पुरुष दोनों में जड़-अंश होता है और चेतन-अंश भी। शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। इसलिए दोनों में दोनों अंश समान हैं, यह नहीं कि स्त्री के शरीर में आत्मा का अंश कम है और शरीरांश ज्यादा या पुरुष के शरीर में आत्मा का अंश ज्यादा और शरीरांश कम है। फिर भी वह भ्रामक विचार चलता आ रहा है।

बजाजनगर (वीरपांडी)
१५-१०-'५६

अभी वैकुंठभाई मेहता ने अपने भाषण में कहा कि गत ५०-६० साल से स्वदेशी के दो आंदोलन हुए। फिर भी स्वदेशी-विचार हमारे मानस में स्थिर नहीं हुआ। बात सही है, पर उसके कारणों के विषय में हमें चिंतन करना चाहिए।

पुराना सदोष स्वदेशी-विचार

प्रथम तो जो स्वदेशी-विचार निर्माण हुआ था, वह स्वदेश-प्रेम के तौर पर नहीं, बल्कि विदेशी राज्य हटाने के साधन के तौर पर निर्माण हुआ। याने उसका स्वरूप भावात्मक (पॉजिटिव) नहीं, अभावात्मक (निगेटिव) था। इसका अर्थ यह नहीं कि उस आन्दोलन में स्वदेश-प्रेम का कोई अंश न था, बल्कि उस समय हमें अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त होना था और दूसरे-तीसरे साधन न मिल रहे थे। इसलिए हम आर्थिक बहिष्कार का एक शस्त्र के तौर पर उपयोग करें, यही हमारी दृष्टि थी। इसलिए उसका प्रथम स्वरूप तो यह था कि हम इंगलैंड का माल न खरीदें, चाहे दूसरे देशों का खरीदें। उन दिनों जापान ने रूस पर विजय पायी थी, एशियाई के नाते हमारे मन में जापान के लिए कुछ प्रेम और आदर पैदा हुआ था। इसलिए जापान का माल यहाँ बहुत आने लगा और हमारे स्वदेशी-आन्दोलन से जापान को लाभ मिला। फिर आगे ब्रिटिश माल के बहिष्कार की जगह विदेशी कपड़े के बहिष्कार की बात चली, जिससे यहाँ की मिलों को उत्तेजन मिला। यह संभव नहीं था कि कुल चीजें बाहर से न लें, इसलिए हमने कपड़े जैसी एक चीज चुन ली और उसे बाहर से न लेने का तय किया। परिणाम यह हुआ कि यहाँ की मिलों ने खूब नफा कमाया और देश को अच्छी तरह ठगा। हमें यह भी कबूल करना होगा कि हमारे आन्दोलनों को कुछ मदद उन्हीं लोगों ने पहुँचायी, जिन्होंने इस तरह नफा कमाया। मैं यह सब इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि उन लोगों के

लिए आपके मन में कुछ घृणा पैदा करूँ, बल्कि आपके सामने सिर्फ एक इतिहास रख रहा हूँ। सारांश, उन आन्दोलनों में यहाँ की जनता की ताकत बढ़ने कोई बात न हुई, ज्यादातर वह आंदोलन मध्यमवर्ग तथा ऊपर के वर्ग के लिए था। इस तरह वह स्वदेशी विचार सदोष ही था, उसमें कोई गहरा चिंतन न था।

स्वराज्य-प्राप्ति के खयाल से चरखा स्वीकार

उसके बाद गांधीजी के समय दूसरा स्वदेशी-आन्दोलन हुआ। गांधीजी ने पुराने स्वदेशी आन्दोलन का दोष देख लिया था। इसलिए उन्होंने ग्रामोद्योगों पर जोर दिया और कहा कि ग्रामोद्योग शत-प्रतिशत स्वदेशी है। इसका मतलब यह हुआ कि जब ग्रामोद्योगों के बदले हम यहाँ की मिलों की चीजें खरीदते हैं, तो वह कुछ प्रतिशत स्वदेशी हो जाता है, उसे भी कुछ तो नंबर मिल ही जाते हैं, इसलिए उसका पूरा निषेध नहीं होता। फिर भी उसका काफी निषेध हुआ और नये आन्दोलन में पुरानी स्वदेशी का दोष नहीं रहा। किंतु इसमें भी एक दोष आ गया, जो गुण भी माना गया और वह गुण था भी। बहुत बार गुण-दोषों का मिश्रण हो जाता है। इसलिए एक गुण होता है, तो उसके साथ दोष भी होता है। उस आन्दोलन का गुण यह था कि वह चीज अपने देश की आजादी के साथ जुड़ी थी। केवल ग्रामोत्थान की ही दृष्टि से नहीं, बल्कि देश की आजादी की दृष्टि से वह चीज सामने रखी गयी। यह उसका बड़ा गुण और आकर्षण था। इसलिए आजादी के आन्दोलन के साथ वह विचार जरा व्यापक फैल गया। लेकिन उसमें एक दोष भी आया कि जिन्होंने उसको स्वीकार किया था, उन्होंने उसे आर्थिक बुनियादी अंश मानकर स्वीकार नहीं किया। गांधीजी उस आर्थिक विचार पर बहुत जोर देते थे, लेकिन उनके हाथ में एक साधन के तौर पर मुख्य संस्था कांग्रेस थी, जो अंग्रेज-सरकार से लड़ती थी। किंतु कांग्रेस के नेता बार-बार उनसे पूछते थे कि चरखे से आजादी का क्या संबंध है? क्या सूत कातने से स्वराज्य मिलेगा? याने क्या यह कोई मंत्र है? स्वराज्य तलवार से नहीं मिलता, यह चीज भी निगल जाना हमारे लिए

मुश्किल था। लेकिन उस समय हमारे हाथ में तलवार नहीं थी, इसलिए हमने वह चीज मान ली। लेकिन सूत के धागे से स्वराज्य मिलेगा, यह बात ग्रहण करनी बड़ी कठिन थी। फिर भी बहुत से लोगों ने उसे इसलिए कबूल किया, क्योंकि वे कहते थे कि इसके जरिये जन-संपर्क होगा। स्वराज्य के आन्दोलन के लिए जन-संपर्क (मास काण्टैक्ट) की बहुत जरूरत होती है।

उसमें और एक बात भी थी कि उसके जरिये लोगों में अंग्रेजों के राज्य के बारे में असंतोष भी पैदा होता था। देश का दारिद्र्य आदि सब बातें लोगों के सामने रखने का मौका उसके जरिये मिलता था। ये सब बातें सही थीं। दरिद्रता आदि की जिम्मेवारी अंग्रेजों की थी। लेकिन चरखे से हम अंग्रेजों के खिलाफ कुछ-न-कुछ भावना पैदा करेंगे, यह जो विचार था, उसके कारण दोष पैदा हुआ। परिणाम यह हुआ कि जहाँ स्वराज्य आया, वहाँ जिन लोगों ने उसे उस दृष्टि से स्वीकार किया था, उन्होंने कहा कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद चरखे का काम खतम हुआ। अब उसकी क्या जरूरत है ?

स्वदेशी एक धर्म

बापू ने हमें सिखाया था कि जैसे सत्य एक धर्म है, अहिंसा एक धर्म है, उसी तरह अपने आस-पास के लोगों द्वारा पैदा किया हुआ माल प्रेम से स्वीकार करना हमारा धर्म है। क्योंकि अगर हम नजदीक की चीज छोड़कर दूर की लेते हैं, तो करुणा नहीं, बल्कि लाभ-प्राप्ति की दृष्टि होती है। अगर करुणा की दृष्टि हो, तो आसपास के लोगों का दुःख दूर करना हम अपना कर्तव्य समझेंगे। इसमें दूरवालों का द्वेष नहीं होगा। बल्कि दूर के लोगों का भी वही कर्तव्य होगा कि वे अपना माल इस्तेमाल करें। स्वदेशी जीवन का एक धर्म है, यह बात बापू ने हमारे सामने रखने की कोशिश की थी, नहीं तो उस समय स्वदेशी को राजनैतिक बहिष्कार का एक साधन माना गया। इसलिए कुछ लोगों को उसका आकर्षण था और इसीलिए कुछ लोगों के मन में उसके प्रति विरोध भी था। वे कहते थे कि यह स्वदेशी का प्रचार बिलकुल संकुचित है। दुनिया एकरूप है, इसलिए कहीं से भी हम माल ले सकते हैं। हम फलाने देश का

माल लेंगे और फलाने देश का माल न लेंगे, यह कहना ठीक नहीं है। उस समय स्वदेशी विचार मूलतः संकुचित भावना से निर्माण हुआ था, इसलिए जैसे चंद लोगों को उसका आकर्षण था, वैसे ही चंद लोगों को उसका विरोध भी था।

अतः हमें स्वदेशी को एक जीवन-विचार के तौर पर समझना बाकी है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हिन्दुस्तान में क्या दृश्य देखने को मिला? स्वदेशी का विचार ही खतम हो गया है। यहाँ तक कि परदेश में सीये हुए कपड़े यहाँ आते हैं और कुछ तो वहाँ के लोगों के इस्तेमाल किये हुए होते हैं। किंतु वे सस्ते मिलते हैं। कुछ लोग इसे भी सेवा मानते हैं, क्योंकि उससे गरीबों को कपड़ा सस्ता मिलता है।

बुनियादी विचार ठीक से समझें

हम किसी का दोष नहीं दिखाना चाहते। दोष व्यक्ति का नहीं है। जब विचार ही ठीक से समझ में नहीं आता, तब दोष निर्माण होते हैं। अगर हम अहिंसक समाज-रचना चाहते हैं, तो बुनियादी तौर पर कुछ बातें हमें समझनी चाहिए। अगर उन विचारों का ग्रहण नहीं हुआ, तो अहिंसा का नाम लेते हुए भी, विश्वशान्ति की चाह रखते हुए भी, हमारे काम से हिंसा को बढ़ावा मिलेगा। अहिंसा के लिए जिन बातों की अत्यंत जरूरत है, ऐसी दो बातों का उल्लेख वैकुंठभाई ने अपने भाषण में किया। अहिंसा के लिए और भी वस्तुओं की जरूरत है, लेकिन उन सबका विवेचन करने का आज प्रसंग नहीं। उन्होंने जो दो बातें बतायीं उनमें से एक यह है कि उस-उस स्थान के लोग अपना भार दूसरों पर न रखें, अपना भार खुद उठायें, जिसे हम स्वावलंबन का सिद्धान्त कह सकते हैं। दूसरी बात यह है कि आर्थिक समत्व की जरूरत है। इस बारे में हमें अपना विचार साफ करना चाहिए। जो लोग हमारा विचार नहीं जानते, वे अगर उसपर अमल नहीं करते हैं तो हम उनका दोष नहीं मान सकते।

समर्थों का परस्परावलंबन

हम सर्वोदयवाले स्वावलंबन सिद्धान्त को नहीं, बल्कि परस्परावलंबन के

सिद्धांत को मानते हैं। लेकिन परस्परावलंबन दो प्रकार का होता है। एक समर्थों का और दूसरा असमर्थों का परस्परावलंबन। आपके हाथ, पाँव, आँखें सब कुछ हैं, मुझे भी वह सब हैं। आप भी एक पूर्ण पुरुष हैं, हम भी एक पूर्ण पुरुष हैं। आप भी समर्थ हैं, हम भी समर्थ हैं। अब हम दोनों हाथ से हाथ मिलाकर काम करेंगे, परस्पर सहयोग करेंगे, तो वह समर्थों का सहयोग होगा। मान लीजिये कि भगवान् ने ऐसा किया होता कि आपको चार आँखें दी होतीं और कान नहीं दिये होते, मुझे चार कान दिये होते और आँखें नहीं दी होतीं, और भगवान् कहता कि तुम लोग अब परस्परावलम्बन करो, सुनने की जरूरत हो तो कानवाला सुनेगा, और देखने की जरूरत हो तो आँखवाला देखेगा। दोनों मिलकर सुनना और देखना, दोनों काम हो जायँगे। इसी तरह का परस्परावलंबन आज चल रहा है। इसे सांख्यशास्त्र में 'अंधपंगु न्याय' कहते हैं।

अगर हम कहें कि हम स्वावलंबनवादी हैं, तो हम संकुचित बन जाते हैं। इसलिए हमने तय किया है कि हम स्वावलंबन का नाम नहीं लेंगे, हम परस्परावलंबन का ही नाम लेंगे, किंतु हरएक को पूर्ण रखेंगे और पूर्णों का परस्परा-वलंबन चलेगा। हमारे सामनेवालों की जो योजना है, उसमें हम भी अपूर्ण हैं और आप भी अपूर्ण हैं, और दोनों मिलकर पूर्ण बन जाते हैं। लेकिन हमारी योजना में हम भी पूर्ण हैं और आप भी पूर्ण हैं और दोनों मिलकर परिपूर्ण बन जाते हैं। उपनिषदों ने यही कहा है कि 'पूर्णम् अदः पूर्णम् इदम्' परमेश्वर ने अपनी रचना में प्राणिमात्र को बुद्धि दी है। आज की योजना के मुताबिक अगर उसने बुद्धि का भंडार किसी बैंक में रखा होता, तो कैसा मजा आता? फिर किसी को अक्ल की जरूरत पड़ती, तो वह परमेश्वर के पास टेलीग्राम भेजता कि अक्ल भेजो। आजकल हमारे इंतजाम करनेवालों को हवाई जहाज में कितना दौड़ना पड़ता है, तो फिर परमेश्वर को कितना दौड़ना पड़ता? लेकिन ईश्वर की क्या हालत है? वह क्षीरसागर में सोता रहता है और इतना शांत है कि कुछ लोगों के मन में शंका होती है कि वह है भी या नहीं। क्योंकि उसका इंतजाम इतना सुव्यवस्थित है कि उसे बीच-बीच में दर्शन देने की जरूरत ही नहीं

पड़ती। सारांश, उसने अच्छी तरह से विकेंद्रित योजना बनायी है, सबको अक्ल दी है।

स्वावलंबन का अर्थ

हम भी परस्पर सहयोग चाहेंगे। जहाँ अच्छा गेहूँ पैदा नहीं होता, वहाँ उसे पैदा न करेंगे। हर रोज गेहूँ खाने का आग्रह नहीं करेंगे। हमारी जमीन में चावल और ज्वार पैदा होता हो, तो हम हर रोज वही खायेंगे। फिर भी कभी-कभी गेहूँ खाने की इच्छा हो, तो यह न कहेंगे कि गेहूँ खाना बड़ा पाप है। गेहूँ बाहर से खरीद लेंगे। जिन चीजों की रोजमर्रा आवश्यकता है, जिनके बिना एक क्षण भी न चलेगा, ऐसी चीजों के लिए अपना भार दूसरों पर नहीं डालना चाहिए। इसका नाम है अहिंसा की रचना और इसीको 'स्वदेशी' कहते हैं।

स्वदेशी में बाहर के लोगों के साथ व्यापार-व्यवहार नहीं चलेगा, ऐसी बात नहीं है। स्वदेशी में परस्पर व्यवहार के लिए अच्छी तरह गुंजाइश है। किंतु जो काम हम अच्छी तरह कर सकते हैं, उस काम का बोझ दूसरों पर डालना गलत है। जो चीजें हम देहात में अच्छी तरह बना सकते हैं, वे वहाँ न बनायें और दूसरों की चीजें खरीदते रहें, इसका क्या अर्थ है? कपड़ा शहरों की मिलों में बनता है। और कपास कहाँ बनती है? अगर यह होता कि कपास शहरों में पैदा होती, तो हम ग्रामों के लिए खादी का आग्रह न रखते। गाँव-वालों से हम यही कहते कि तुम्हारे यहाँ कपास नहीं होती है, कपास तो बंबई अहमदाबाद और कोइम्बतूर में होती है, तुम्हारे यहाँ अनाज होता है, तो तुम्हें उतना ही पकाना चाहिए। लेकिन जब कपास देहात में पैदा होती है, तो इधर की कपास उधर भेजो और उधर का कपड़ा इधर लाओ, यह सब क्या है?

रोजमर्रा की चीजें बाहर से खरीदना खतरनाक

दुनिया में विश्वयुद्ध कब शुरू हो जायगा, कोई नहीं कह सकता, क्योंकि दुनिया का सारा बुरा-भला करने का अधिकार दो-चार व्यक्तियों के हाथ में है। अगर उनके दिमाग बिगड़े, तो दुनिया में लड़ाई शुरू होगी। आजकल हम

भगवान् से प्रार्थना करते समय यह नहीं कहते हैं कि भगवान् हमें सद्बुद्धि दे, बल्कि यह कहते हैं कि भगवन्! तू आइक, ईडन, बुलगानिन को सद्बुद्धि दे। क्योंकि भगवान् मुझे बुरी बुद्धि देगा, तो उससे दुनिया का कुछ न बिगड़ेगा, मेरा ही बिगड़ेगा। लेकिन अगर इन लोगों का दिमाग बिगड़ गया, तो सारी दुनिया का मामला बिगड़ जायगा।

हम सबके लिए यह सोचने की बात है कि हमने सारी दुनिया की रचना इस तरह बना ली है कि इधर से चीज उधर भेजो और उधर से इधर भेजो। ऐसी हालत में किस वक्त दुनिया का संतुलन बिगड़ेगा, कह नहीं सकते। मान लीजिये कि कल विश्वयुद्ध शुरू हुआ, तो हिंदुस्तान चाहे उसमें शामिल होना चाहता हो, या न चाहता हो, तो भी जो विश्व में शामिल हैं उन्हें विश्वयुद्ध में शामिल होना ही पड़ेगा। इस हालत में एक बम कोयम्बतूर में पड़े, दूसरा बंबई पर और तीसरा अहमदाबाद में, तो वहाँ के कुल मजदूर शहर छोड़कर भाग जायँगे। फिर आपको और हमें, सबको नंगा रहना पड़ेगा। इसलिए हम कहते हैं कि रोजमर्रा की चीजें बाहर से खरीदना खतरनाक है। उसमें दुनिया की जो रचना बनती है, वह अच्छी नहीं बनती।

स्विटजरलैंड की घड़ियाँ खरीदें

अभी इन लोगों ने एक अच्छा अंबर चरखा बनाया है। इसकी अच्छाई यही है कि यह स्वयमेव कातता है। यंत्र की अच्छाई इसीमें मानी जाती है कि वह स्वयमेव चले। समाज रूपी यंत्र भी तब अच्छा माना जायगा, जब स्वयमेव चलेगा। अगर ऐसा हो कि हर जगह का इंतजाम वहाँ के लोग करें; खाना, कपड़ा आदि रोजमर्रा की चीजें अपने गाँव में या दस-पाँच गाँव मिलकर पैदा करें और जो रोजमर्रा की चीजें न हों, वे जहाँ पैदा होती हों, वहाँ से खरीदें, तो वह बहुत अच्छी रचना होगी। मैं इस विचार को भी पसंद नहीं करूँगा कि हम हिन्दुस्तान में बहुत ज्यादा कोशिश करके नाहक घड़ियाँ बनायें। उन्हें स्विटजरलैंड बहुत अच्छी तरह बना रहा है। इतना ही चाहूँगा कि लोग नाहक घड़ी न पहनें। आजकल हरएक के हाथ में घड़ी दीखती

है। उसका उपयोग इसी में होता है कि अपना कितना समय आलस्य में बीता, इसका पता चले। साथ ही किसी की घड़ी का किसी की घड़ी से मेल नहीं खाता। किसी की घड़ी १० मिनट आगे, तो किसी की १० मिनट पीछे।

खालिस चीज मिलती नहीं

इन दिनों जवान लोगों के सिर पर एक छप्पर दीखता है। वे सुन्दरता के लिए बाल रखते हैं और उसमें शहर का तेल डालते हैं। वह तेल खराब होता है, क्योंकि उसमें दूसरी खराब चीजें मिलायी जाती हैं। उससे बाल पक जाते हैं। याने सुन्दरता के लिए जो किया जाता है, उसीसे लोग कुरूप बनते हैं। लोगों को इतनी मामूली अक्ल क्यों न होनी चाहिए कि गाँव का स्वच्छ-शुद्ध तेल डालें?

आज दुनिया में बड़ी भारी समस्या है कि कहीं भी खालिस चीज नहीं मिलती। यहाँ तक कि औषध भी खालिस नहीं मिलती। यह बड़ी भयानक दशा है। इसमें मनुष्य की निष्ठुरता की कोई सीमा ही नहीं है। यह सारा मिश्रण इसलिए होता है कि लोग स्वदेशी धर्म को नहीं पहचानते। इसलिए हमें अपना काम स्वयं करना चाहिए। जितना हमसे हो सके उतना करने के बाद जो नहीं हो सकता, उसका बोझ हम दूसरों पर डाल सकते हैं। दूसरे भी जो काम न कर सकेंगे, उनका जिम्मा हमें उठा लेना चाहिए।

इस तरह एक-दूसरे की मदद देने-लेने में पाप या संकोच नहीं। वह मदद याने 'परोपकार' होना चाहिए। 'उपकार' शब्द में ही एक खूबी है। थोड़ी-सी मदद को उपकार कहते हैं। अपना मुख्य काम हम खुद ही करें और कुछ थोड़ी-सी चीजें, जो हम नहीं बना सकते, दूसरों से लें। उतना उपकार हम उनसे लें और उतना ही उपकार उनपर करें। अगर कोई पंगु हो, तो हम उसे कंधों पर उठाएँ। वह प्रेम का कर्त्तव्य होगा, सवाल यही है कि प्रेम और करुणा क्या कह रही है। अपने नजदीक वाले मनुष्य ने जो चीज बनाई, उसे न खरीदते हुए दुनिया की चीजें खरीदना एक संकुचित स्वार्थ और निष्ठुरता है।

विचार व्यापक रहे

स्वदेशी में किसी प्रकार का मानसिक संकोच नहीं। तुकाराम से जब पूछा गया था कि तुम्हारा स्वदेश कौन-सा है, तुम कहाँ रहते हो, तो उसने जवाब दिया : "आमुचा स्वदेश, भुवनत्रयामधे वास"—मेरा स्वदेश यही है कि मैं तीनों भुवनों में निवास करता हूँ। तुकाराम एक बिलकुल ही देहात में रहनेवाला मनुष्य था। उसने भिन्न-भिन्न भाषाएँ नहीं सीखी थीं। सिर्फ अपनी मातृभाषा मराठी जानता था। उसने अपनी सारी जिंदगी एक देहात में ही बितायी। लेकिन जब उससे पूछा गया कि तुम कहाँ रहते हो तो उसने कहा कि मैं तीनों भुवनों में रहता हूँ। इस तरह हमें विचारों में अत्यंत व्यापक होना चाहिए। समझना चाहिए कि दुनिया में जितने मानव हैं, वे सब हमारे भाई हैं। किंतु हमें अपने भाइयों से भी कहना चाहिए कि 'तू पंगु नहीं, तुझे अपना काम करना चाहिए। मैं भी पंगु नहीं, मुझे भी अपना काम करना चाहिए। फिर हम एक-दूसरे को थोड़ी मदद कर सकते हैं।' हमारा विचार संकुचित स्वावलंबन का नहीं, दया और करुणा का विचार है। अगर हम करुणा रखते हैं, तो हमें स्वदेशी विचार के बारे में इसी तरह सोचना चाहिए। स्वदेशी के पुराने आन्दोलन सफल नहीं हुए, इसका कारण यही है कि खालिस विचार लोगों के पास नहीं पहुँचाया गया। उसे अत्यन्त शुद्ध स्वरूप में अगर किसी ने रखा, तो गांधीजी ने ही रखा है। उन्होंने किसी प्रकार का लेशमात्र भी संकोच नहीं रखा।

स्वदेशी का शुद्ध दर्शन

ऋग्वेद में अग्नि का वर्णन आता है। 'दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम्'—अग्नि दूर को देखता है और अपने घर का पालन करता है। यहाँ पर अग्नि रखी हो तो दूर से दिखाई देती है, पर उसकी गर्मी नजदीक वालों को ही पहुँचती है। इस तरह हम दृष्टि से चारों ओर प्रेम करें। किन्तु जो प्रत्यक्ष सेवा करनी है, वह आस-पास के लोगों की ही करें। सेवा हाथ से की जाती है और प्रेम दिल से। विचार

दिमाग से किया जाता है। प्रेम और विचार अत्यंन्त व्यापक हो सकते हैं, पर हाथ नहीं। हाथ नजदीक की सेवा ही कर सकते हैं।

वेद में अग्नि का जैसा वर्णन है, वैसा ही वर्णन 'वर्डस्वर्थ' की एक सुंदर कविता में आता है–"The Type of the wise who soar but never roam. True to the kindred points of Heaven and Home. अर्थात् स्काइलार्क आकाश में ऊँचा उड़ता है, फिर भी अपने घोंसले पर उसकी दृष्टि रहती है। उसमें ऊँचा उड़ने की ताकत है। किंतु वह ऐसा ऊँचा नहीं उड़ता कि घोंसले को ही छोड़े। वह पक्षी स्वर्ग की तरफ भी नजर रखता है और घोंसले की तरफ भी। वह ऐसा नहीं करता कि आकाश में ही ऊँचा भटकता रहे या ऐसा भी नहीं करता कि अपने घोंसले में बैठा रहे और उसके इर्दगिर्द ही नाचे। यह स्वदेशी धर्म है। हमें सारी दुनिया पर प्रेम करना है। मन में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखना है। हम सारे विश्व के नागरिक हैं, लेकिन हम सेवा नजदीक के क्षेत्र में ही करेंगे। आज स्वाइटझर अफ्रिका में सेवा कर रहा है। वह सारी दुनिया के लिए प्रेम रखता है, लेकिन आपके मलाबार के लिए वह क्या कर रहा है? कुछ भी नहीं कर सकता है, क्योंकि हाथ-पाँव की एक मर्यादा होती है।

इस तरह सेवा के लिए नजदीक का क्षेत्र और प्रेम तथा चिंतन के लिए सारी दुनिया पर ही नजर, इसका नाम है 'स्वदेशी धर्म'। इसलिए स्वदेशी धर्म में जाति, गाँव, प्रान्त, देश या धर्म का अभिमान आदि बातें नहीं आ सकती हैं। इन सबको स्वदेशी धर्म में से हटा देना चाहिए। क्योंकि अगर ये चीजें रहीं, तो स्वदेशी न टिकेगी। जिनकी उदार दृष्टि हो, वे ही स्वदेशी को समझ सकते हैं। स्वदेशी का यही शुद्ध दर्शन हमें करना होगा। आज इस ओर वैकुंठभाई ने ध्यान खींचा। वे सूत्रवत् बोले, तो हमें भी लगा कि उसपर भाष्य करना ही चाहिए।

गांधीनगर-तिरुपुर (मद्रास)
१७-१०-'५६.

भूदान के काम में हमें हँसने की कला सीखनी चाहिये। हम लोगों के पास जाकर अपनी बात समझायेंगे, तो कभी उसका जवाब अनुकूल मिलेगा, कभी प्रतिकूल। किन्तु दोनों हालतों में लोग हमें हँसते देखें, तभी भूदान आगे बढ़ेगा। अगर अनुकूल जवाब मिलने पर हम हँसे, और प्रतिकूल मिलने पर चिढ़ जायँ, तो भूदान आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए हमारा यह काम हँसते-हँसते करने का काम है।

इन दिनों बहुत से लोगों को हर बात में 'फाइट' करने की आदत पड़ गयी है। कहा जाता है कि अगले साल १९५७ में चुनाव की 'फाइट' होगी। हमने कई बार कहा है कि तुम लोग चुनाव लड़ते क्यों हो? चुनाव तो खेलना चाहिए। कुश्ती खेलते हैं या नहीं? दो मनुष्यों के बिना कुश्ती नहीं बनती। इसलिए कांग्रेसवालों को इस वक्त बड़ी मुश्किल हो रही है। उन्हें फिक्र है कि सामने कुश्ती के लिए मल्ल ही नहीं दिखाई देता। विरोधी दल के बिना लोकशाही का कारोबार अच्छा नहीं चलता, यह सिद्धांत हमने बनाया ही है। आप अगर विरोधी दल चाहते हैं, तो आपको चुनाव खेलना चाहिए, लड़ना नहीं। कुश्ती में जो जीतता है, उसे इनाम मिलता ही है। लेकिन जो हारता है, उसे भी सम्मानपूर्वक नारियल देते हैं। क्योंकि अगर वह न हारता, तो दूसरे को ५००) रु० इनाम मिलता ही नहीं। इसीलिए चुनाव को एक खेल के तौर पर समझें, तो आज जो उसमें बुराइयाँ होती हैं, वे न होंगी। जिसने चुनाव जीत लिया, उसे राज्य-कारोबार चलाने का इनाम मिल गया और जो चुनाव हार गया, उसे सार्वजनिक सेवा का नारियल! दोनों को दोनों ओर से लाभ है। उसमें अपना क्या बिगड़ेगा? वे हारे तो भी उनकी जीत होती है।

पक्षभेद के कारण प्रेम न घटे

इलेक्शन में हमें खेल के समान वृत्ति रखनी चाहिए। उसमें यह होना चाहिये कि हम दोनों भाई-भाई हैं। एक ही आश्रम या एक ही घर में रहते हैं,

प्रेम से मिलजुल कर काम करते हैं, एक साथ खाते-पीते हैं, अपनी कमाई दोनों बाँट लेते हैं। उनमें एक सोशलिस्ट पार्टी का है, तो दूसरा कांग्रेस पक्ष का। फिर भी एक-दूसरे से दोनों अत्यंत प्रेम करते हैं। चुनाव में ये दोनों जायँगे, तो एक कहेगा कि दूसरे को वोट मत दीजिये, क्योंकि वह अच्छा कारोबार न चलायेगा, क्योंकि उसकी कल्पना अच्छी नहीं है। दूसरा भी इसी तरह लोगों से कहेगा कि वह अच्छी लोकशाही न चलायेगा, क्योंकि उसका विचार ठीक नहीं है। इस तरह एक-दूसरे के विरुद्ध प्रचार करेंगे। लोगों में अपने विचार का प्रचार करेंगे। कोई भी हारे और कोई भी जीते, लेकिन घर पर जाकर दोनों एक साथ खायेंगे-पीयेंगे और प्रेम से रहेंगे। इस तरह के आनन्द में और विनोद के बीच चुनाव होना चाहिए। फिर हम दोनों में से कोई भी हार जाय, तो कोई हर्ज नहीं।

हमने बिहार में यह खूब देखा है। बिहार के कई कुटुंबों में एकआध कांग्रेसी होता है, दूसरा कम्युनिस्ट, तीसरा सोशलिस्ट, तो चौथा सर्वोदयवादी। बाप अगर काँग्रेसी रहा, तो बेटा जरूर कम्युनिस्ट होगा। लेकिन वे लोग कहते हैं कि किसी भी पक्ष का राज्य चले, अपने कुटुंब का नुकसान न होगा, क्योंकि कुटुंब में हरएक पार्टी के लोग होते हैं। यही आनंद प्राचीन काल में हिन्दुस्तान में आता था। बाप हिन्दू होता था, तो बेटा बौद्ध और उसका एक भाई जैन होता था, सभी एक ही परिवार में प्रेम से रहते और अलग-अलग अपने-अपने धर्म में विश्वास रखते थे। लेकिन धर्म-विश्वास अलग है, तो प्रेम तोड़ना चाहिए, इसकी कोई जरूरत नहीं। इसी तरह राजनैतिक पद्धति अलग होने पर भी प्रेम तोड़ने की जरूरत नहीं है। इसलिए चुनाव में लड़ने की वृत्ति, 'टु फाइट इलेक्शन' यह शब्द बहुत बुरा है। यह शब्द अंग्रेजी भाषा से यहाँ आया है। अपने देश में तो चुनाव खेल होना चाहिए।

घर्षण में तेल डालिये

खैर, यह तो हमने आपको बेकार बात बतायी, क्योंकि आपने प्रस्ताव पास किया कि हम चुनाव में भाग न लेंगे, इसलिए आप पर यह लागू

नहीं होती। चुनाव में जो हिस्सा लेंगे, उनको यह बात समझाइये, इतनी ही आपकी जिम्मेवारी रहेगी कि दोनों में से किसी की सूरत रोनी या गुस्सेवाली न हो। अगर हमने इतना कर लिया, तो भी बहुत किया। मशीन में 'घर्षण' तो होता ही है। अगर बिना 'घर्षण' की मशीन बनायें, तो वह काम ही न देगी। बिना घर्षण के मशीन ढीली पड़ जायगी। उसमें गति ही न आयेगी। इसलिए कितना भी हँसते-हँसते चुनाव खेलो, फिर भी उसमें कुछ-न-कुछ घर्षण होगा ही। ऐसे समय आप तेल की डिबिया लेकर तैयार रहिये। ज्योंही घर्षण की स्थिति मालूम पड़े, त्यों ही उसमें तेल डालिये। अगर यह कला आपको सध जाय तो लोग शिकायत न करेंगे कि आप चुनाव से अलग रहे। बल्कि यही कहेंगे कि अगर ऐसे थोड़े लोग अलग न रहते, तो तेल ही कौन डालता!

भूदान-कार्य करने का तरीका

जब चुनाव हँसते-हँसते खेलना है, तब भूदान काम चिढ़ते-चिढ़ते नहीं करना है, यह अलग बताने की जरूरत नहीं। लोग समझते हैं कि यह इस्टेट (भूमि आदि) हमारी है, तो हमें भी कहना चाहिए कि हाँ, हम आपके लड़के हैं। वह ३० साल का युवक होगा और हम साठ साल के सफेद लम्बी दाढ़ीवाले! तो वह यह रिश्ता कैसे कबूल करेगा? कहेगा कि 'आप मेरे बाप और मैं ही आपका लड़का हूँ, इसलिए मैं ही आपकी इस्टेट का अधिकारी हूँ। फिर आप मेरी इस्टेट कैसे माँगते हैं?' मैं कहूँगा कि 'आपकी इस्टेट मुझे ही मिलनी चाहिए।' सारांश, अगर उससे हमें इस्टेट माँगनी है, तो प्रेम से समझा कर ही काम लेना होगा। अगर वह मान जाय, तो इस्टेट का हक़ दे देगा, नहीं तो दान देगा ही। हक नहीं, तो दान ही सही।

फिर अगर वह दान भी न देना चाहे, तो बाबा कहेगा कि इस ब्राह्मण की इज्जत रखोगे या नहीं? हमें तो किसी-न-किसी तरह उससे जाकर चिपकना है। हम पूछेंगे कि 'जमीन न सही, पर क्या पढ़ने के लिए पुस्तक भी न लेंगे?' वह तुरत कहेगा : 'हाँ-हाँ, जरूर लेंगे। बस, हमारा काम हो गया! उसके घर में

हमारी पुस्तक पहुँच गयी, तो उसका नाम 'काली सूची' (ब्लैक लिस्ट) में चढ़ गया कि फलाने को 'गीता-प्रवचन' दिया है ।

पन्द्रह दिनों बाद पुनः मिलने पर हम उससे पूछेंगे, कि 'क्यों भाई, 'गीता-प्रवचन' पढ़ा या नहीं ? वह कहेगा : 'पढ़ना तो है, लेकिन फ़ुर्सत नहीं मिलती ।' मैं कहूँगा, 'ठीक ! पर आपके घर आया हूँ, तो भोजन दीजियेगा न ? अगर जमीन माँगनेवाला भोजन से मान जाय याने भोजन से जमीन देना टल जाय, तो उसे कौन नहीं देगा ? फिर भोजन करने के लिए साथ-साथ बैठने पर मैं चर्चा शुरू कर दूँगा कि 'गीता-प्रवचन क्या है ? भूदान क्या है ?' आदि-आदि । तब वह कहेगा कि 'अब मैं समझा । अगर ऐसा है, तो मैं 'गीता-प्रवचन' अवश्य पढ़ूँगा ।' बस, हमारा काम हो गया ।

सारांश, किसी के भूदान देने पर ही हमारा काम होता है, ऐसी बात नहीं । हमें उनसे बहुत बातें करवानी हैं—साहित्य पढ़वाना, खद्दर पहनवाना, सूत कतवाना, हमारे ढंग का पाखाना बनवाना आदि सभी बातें करवानी हैं और सभी प्रेम से करवानी है ।

गुड़ खिलानेवाला महात्मा

पुराने ऋषि लोगों को कड़ुवा खिलाते थे । कहते थे कि नीम की पत्ती खाओ । लेकिन गांधीजी ने तो गुड़ खिलाने की सलाह दी । बीच में उन्होंने भी नीम की पत्ती खिलाना शुरू किया था । उसके लिए दस-बारह चेले भी मिल गये, लेकिन ज्यादा नहीं मिले । तब उन्होंने समझ लिया कि नीम की पत्ती खिलाने का कार्यक्रम लोकप्रिय नहीं हो सकता, गुड़ खिलाने का कार्यक्रम ही लोकप्रिय होगा ।

हमारा एक प्रोग्राम गुड़ खिलाने का भी है । हमें लोगों से कहना चाहिए कि शक्कर क्यों खाते हो ? गुड़ क्यों नहीं खाते ? वे कहेंगे कि 'शक्कर सफेद दीखती है !' तो आप कहिये : वह सफेद दीखती है, इसीलिये वह सफेद लोगों तरह है । तुमने 'गोरों' को यहाँ से भगा दिया, तो गोरी शक्कर को क्यों ाये रखते हो ? गुड़ का रंग अपने देश का है और शक्कर का रंग गोरों के

देश का। वह दीखने में तो सफेद है, लेकिन उसके अन्दर 'विटामिन' नहीं है। फिर आपको विटामिन पर एक व्याख्यान भी झाड़ देना चाहिए। अवश्य ही आजकल गुड़ स्वच्छ, शुद्ध और निर्मल नहीं मिलता। पर महात्माजी ने ऐसे गुड़ का प्रचार करने के लिए नहीं कहा था। उन्होंने तो शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल गुड़ के प्रचार के लिए कहा था, जिसे लेकर लोग कहें कि 'अरे, गुड़ भी ऐसा होता है!' इस तरह भूदान नहीं, तो गुड़ का ही प्रचार हो जाता है।

देखो हम तो हैं मच्छीमार! गांधीजी ने हमें मच्छीमार विद्या सिखायी है। उन्होंने हमारे हाथ में अनेक प्रकार के जाल दिये हैं। कोई मछली एक जाल में न आयेगी, तो दूसरे में आयेगी। अगर वह भूदान के जाल में नहीं आती, तो खादी के जाल में आयेगी। अगर उसमें भी नहीं आती, तो आखिर गुड़ के जाल में तो वह आयेगी न? इसीलिए इस दुनिया में हम बिलकुल अपराजित हैं। हमारी कभी पराजय हो नहीं सकती। जहाँ भी हम जायँ, हमारी जीत ही जीत है। क्योंकि हमारे पास वह गुड़ है, जिसे महात्माजी ने अहिंसा नाम दे दिया है। हम लोगों को अहिंसारूपी गुड़ खिलायेंगे, तो हमारा बहुत काम होगा। इसलिए आप भूदान काम के लिए जायँगे, तो एकांगी बनकर न जायँगे, इन सब अङ्गों को लेकर ही जायँ।

यह अष्टभुजा देवी है। उसके एक हाथ में एक शस्त्र है, तो दूसरे हाथ में दूसरा शस्त्र। हमारे देवता भी कैसे रहते हैं? उनके एक हाथ में गदा रहती है, तो दूसरे हाथ में फूल है। सब हाथ में गदा ही गदा रहे, तो फिर कोई भी भक्त नजदीक नहीं आयेगा। इसीलिए दूसरे हाथ में हमारा देवता कमल भी रखता है। इस तरह यह अपना भूदान हमारी गदा है और गुड़ हमारा फूल है। शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी हम विष्णु भगवान् हैं। इसलिए लक्ष्मी तो हमारे न चाहने पर भी हमारे पास आयेगी। उसमें कोई शक नहीं है कि जमीन लोगों के हाथ से छूट रही है। इसलिए हम प्रेम से लोगों के पास जायँगे, तो बिलकुल आसानी से वह हमारे पास आ जायगी।

परीक्षक जनता

दूसरी बात हमें आपसे यह कहनी थी कि हिन्दुस्तान के लोग बड़े परीक्षक हैं। बैल बराबर पहचान लेता है कि गाड़ी चलानेवाला ठीक है या नहीं। उसे तुरत पता चल जाता है कि गाड़ी चलानेवाला शिक्षित है या अशिक्षित। हम कहते हैं कि सारी जनता मूर्ख है, लेकिन वह बहुत अक्ल रखती है। वह हम लोगों की बराबर परीक्षा करती है। हिन्दुस्तान के गरीब लोगों की सेवा संतों ने की है, इसलिए जब उसे मालूम होता है कि हम सेवक हैं, तब वह हमें संत की कसौटी पर कसती है, लोगों का जीवन-स्तर गिरा है, लेकिन चिंतन का स्तर ऊँचा ही है। इसलिए वे कार्यकर्ता और सेवक की छोटी-छोटी बात भी देखते हैं। इसलिए हमारा व्यक्तिगत आचरण जितना ही निर्मल और स्वच्छ रहेगा, उतना ही हमारा कार्य जल्दी होगा।

गांधी नगर
१८-१०-'५६

हाइड्रोजन बम और चाकू　　　　: ६२ :

हमसे पूछा गया कि 'आप राज्य पर यकीन नहीं रखते हैं और कहते हैं कि फौज, पुलिस वगैरह की जरूरत नहीं है। उस हालत में अगर देश पर बाहरी हमला होगा, तो देश का बचाव कैसे किया जायगा?' हम कहते हैं कि दूसरा देश हमपर हमला करेगा ही क्यों? अगर हमारे देश में जमीन बहुत ज्यादा है और दूसरे देश के पास कम, इसलिए वह हमला करेगा, तो हम उसे प्रेम से जमीन दे देंगे। आस्ट्रेलिया में जमीन बहुत ज्यादा है, और वे दूसरों को वहाँ आने नहीं देते, इसलिए उनपर हमला हो सकता है। लेकिन हिंदुस्तान पर हमला नहीं हो सकता है, क्योंकि हमारे पास जमीन कम ही है।

बात यह है कि हिंदुस्तान पर अमेरिका या रूस कभी हमला न करेगा। अगर हमला होगा, तो पाकिस्तान से होगा। याने भाई-भाई के झगड़े का सवाल

है। दुनिया में जितने झगड़े होते हैं, सब भाई-भाई के ही झगड़े हैं, दुश्मनों के नहीं। भाइयों में ही एक दूसरे पर दावा किया जाता है, जो मित्रों पर नहीं किया जाता। किसी मित्र ने एक-आध बार कुछ एहसान किया, तो आप उसे जिंदगी भर याद रखते हैं। किंतु भाई हमेशा आपका काम करता हो और कभी एक-आध बार वह आपकी बात न माने, तो आप उतना ही याद रखते हैं। इसलिए ये सारे झगड़े भाईचारे से मिटेंगे, फौज से नहीं। अगर हम फौज बढ़ायेंगे, तो पाकिस्तान भी बढ़ायेगा और फिर विश्वयुद्ध का भी खतरा खड़ा हो जायगा। लेकिन आज अगर हिंदुस्तान हिम्मत करके अपनी सेना विघटित कर दे, तो हिंदुस्तान की ताकत बहुत बढ़ जायगी। फिर पाकिस्तान भी फौज पर नाहक खर्च न करेगा।

लेकिन इसके लिए हिम्मत चाहिए, यह डरपोक का काम नहीं है। हम डरपोक हैं, डरपोक को कल्पना-शक्ति नहीं होती। सोचने की बात है कि हमपर हमला किसका होगा। उधर तो एटम और हाइड्रोजन बम बन रहे हैं, जो हमारे पास नहीं है। फिर भी हम कहते हैं कि हमारे पास एक चाकू तो होना ही चाहिए। मैं मानता हूँ कि अगर हिंदुस्तान अपनी फौज को विघटित कर देगा, तो वह दुनिया में सबसे शक्तिशाली राष्ट्र बन जायगा, इससे इसकी नैतिक प्रतिष्ठा बहुत बढ़ जायगी। वह पाकिस्तान की जनता का दिल जीत लेगा और 'यूनो' में भी उसका वजन बहुत बढ़ जायगा।

तिरुपुर (कोयम्बतूर)
१८-१०-'५६

साढ़े पाँच साल से भूदान-यात्रा चल रही है। लाखों लोगों ने दान दिया है। यह दान कोई नयी चीज नहीं, पुराने जमाने से ही लोग कुछ-न-कुछ दान करते आये हैं। दानी लोगों की प्रशंसा भी की जाती है, उनपर काव्य भी लिखे जाते हैं, उनके भजन भी गाये जाते हैं। जिस तरह दान की परंपरा चली आ रही है, उसी तरह तप की भी। कोई तपस्वी अपनी चित्तशुद्धि के लिए तप करता है, दूसरे लोग उसकी सेवा करते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं, उसकी तपश्चर्या के कारण उसके प्रति आदर और पूज्य बुद्धि रखते हैं और समझते हैं कि उसके आशीर्वाद से हमारा भला होगा। यहाँ ऐसे भी ज्ञानी हो गये, जो ऊँचे पहाड़ों के जैसे ज्ञान के पहाड़ थे। कुछ ऐसे भी ज्ञानी हो गये, जिनके ज्ञान का लोगों को कोई अन्दाजा नहीं लगा। लोगों ने इतना ही समझा कि ये ज्ञान के समुद्र हैं, इनसे हमें कुछ ज्ञान मिले, तो अच्छा है। किंतु हममें ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता नहीं है, इसलिए उनका आशीर्वाद मिले, उनकी कृपादृष्टि, उनका दर्शन हो, तो बस है।

सामूहिक दान

इस तरह अपने देश में एक प्रकार की साधना चली। भूदान-यज्ञ का काम उससे भिन्न प्रकार का है। इसमें भी दान है और उसमें भी। इसमें भी कार्यकर्ताओं को खूब घूमना पड़ता है, तपस्या करनी पड़ती है। इसके लिए भी अध्ययन करना पड़ता है, ज्ञान की जरूरत होती है। किंतु इसमें जो किया जाता है, वह समाज के लिए किया जाता है। सारा समाज मिलकर करे, ऐसी इच्छा रहती है। इसमें यह बात नहीं कि कोई एक-आध मनुष्य दान दे, बल्कि यह है कि सबके सब दान दें, बिना दान किये कोई न रहे। हमसे बार-बार पूछा जाता है कि क्या गरीब भी दान दें, तो हम कहते हैं कि क्यों न दें? भगवान् ने उन्हें दो हाथ दिये हैं, इसलिए उन्हें लेना भी है और देना भी। अगर देना नहीं होता, तो भगवान् उन्हें एक ही हाथ देता। गरीबों के पास भी देने

की चीज है। वे पैसे से श्रीमान् नहीं, पर श्रम से श्रीमान् हैं। वे अपने श्रम का एक हिस्सा दे सकते हैं। हर एक को देना है, एक भी शख्स दिये बिना रहेगा, तो इस यज्ञ की पूर्ति न होगी। किसी गाँव के १०० मनुष्यों में से ९९ लोगों ने दान दिया, किसी ने भूदान, किसी ने संपत्ति-दान, किसी ने श्रम-दान दिया, तो यह माना जायगा कि अच्छा काम हुआ, पर उससे यज्ञ पूरा नहीं होगा। जब वह बचा हुआ आखिरी मनुष्य १०० वाँ दान देगा, तब यज्ञ पूरा होगा। व्यक्तिगत दान की कल्पना भिन्न है और यह सामूहिक दान की, सबलोगों के दान की कल्पना भिन्न है। इसमें विचार ही भिन्न है।

सामूहिक त्याग और भोग

पहले कुछ लोग पैसा कमाते थे, तो व्यक्तिगत कमाते थे। आज भी वह चल रहा है। लेकिन अब जमाना आया है कि सब मिलकर संपत्ति पैदा करें। पहले अपना अकेला भोग चलता था, अब सबका मिलकर भोग करना है। सब मिलकर जीवन की सब साधना करनी है। भूदान के पीछे यही विचार है। उसके परिणामस्वरूप जो भोग मिलेगा, वह सबको मिलेगा और उसके लिए सबको त्याग करना पड़ेगा। सार्वजनिक त्याग में और सार्वजनिक भोग में एक विशेष आनंद आता है। इसमें किसीके मन में अभिमान नहीं रहता कि मैं त्यागी हूँ। मैं चौबीस घंटे श्वासोच्छ्वास लेता हूँ और सभी लोग लिया करते हैं, तो उसका किसीको अभिमान नहीं होता। पुण्य-कार्य में सबसे बड़ा खतरा यह है कि उस पुण्य का अहंकार सिर पर बैठता है। त्याग का बोझ सिर पर बैठा, तो फिर कितनी भी हजामत करो तो भी वह हटता नहीं। जो लोग इस तरह हजामत करने का प्रयोग करते हैं, उन्हें संन्यासी कहा जाता है। संन्यास का भी अहंकार होता है। अहंकार की हजामत की, तो हजामत का भी अहंकार हो जाता है। इसलिए सबसे बड़ी बात है अहंकार से मुक्ति। अगर हम त्याग नहीं करते हैं, पुण्य नहीं करते, तो हम नीच हैं, हम संसार में फँसे हैं, ऐसी भावना मन में आती है। 'मैं नीच हूँ', यह कहना भी अभिमान का एक प्रकार है, और 'मैं ऊँचा

हूँ', यह कहना भी अभिमान का दूसरा प्रकार है। इन दोनों में से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि जो साधना करनी है, सब मिलकर करनी चाहिए।

सामूहिक तपस्या की प्राचीन मिसालें

१०-१५ दिनों के उपवास करनेवाले कई तपस्वी होते हैं। हम पुराने ग्रंथों में पढ़ते हैं कि फलाने ऋषि ने तीन साल फाका किया। हम सोचते रहे यह कैसे संभव है, वह ऋषि जरूर कुछ दूध वगैरा पीता होगा। इन दिनों दूध पीनेवाले और केले खानेवाले उपवास चलते हैं। उपवास के दिन खाने की कुछ खास चीजें होती हैं। अगर वैसा ही वह ऋषि करता होगा तो फिर तीन ही नहीं बल्कि तीस साल फाका कर सकता है। परन्तु ग्रंथों में लिखा है कि ऋषि ने तीन साल तक बिना पानी का उपवास किया। इसपर सोचते हुए हमारे मन में कल्पना आयी कि उस समय किसी प्रकार की साधना के लिए सब लोग मिलकर फाका करते होंगे और वह किसी मनुष्य के मार्गदर्शन में करते होंगे। मान लीजिये कि ५२ व्यक्तियों ने वसिष्ठ ऋषि के मार्गदर्शन में एक हफ्ते तक बिना पानी पिये फाका किया तो यह कहा जाता होगा कि वशिष्ठ ऋषि ने एक साल फाका किया। याने कुल की कुल तपस्या वसिष्ठ ऋषि के नाम पर लिखी गयी। हम यह भी पढ़ते हैं कि फलाने ऋषि ने तीस साल तपस्या की। इसका मतलब यह है कि कोई ऋषिसंघ होगा, और सब मिलकर तपस्या करते होंगे, जो एक व्यक्ति के नाम पर लिखी जाती होगी।

आज भी यह होता है। कहा जाता है कि बाबा ने ४० लाख एकड़ जमीन हासिल की। लेकिन बाबा ५०० साल काम करेगा, तो भी यह संभव न होगा कि वह ४० लाख एकड़ हासिल करे। लेकिन हजारों लोगों ने जमीन [illegible]सिल की और वह सारा बाबा के नाम पर लिखा जाता है। इस तरह जहाँ [illegible]मूहिक साधना होती है, वहाँ एक विशेष शक्ति प्रकट होती है और उस तपस्या का अहंकार नहीं होता।

मोक्ष व्यक्तिगत नहीं हो सकता

मनुष्य-जीवन में भोग या मोक्ष जो कुछ हासिल करता है, सब मिलकर

हासिल करना है, यह कल्पना दृढ़ होनी चाहिए। कवि ने कहा है—'कलंदु निन् अडियारोडु' अर्थात् हम तुम्हारे भक्तों के साथ मिश्रित होकर रहना चाहते हैं। भक्त-जनों की साधना का यही रहस्य है। समाज का कोई व्यापक प्रश्न हल करने के लिए सामूहिक तपस्या या सामूहिक दान की कल्पना पहले के जमाने के लोग कम करते थे। कुछ थोड़ी मिसालें मिलती हैं, जो मैंने अभी पेश कीं। लेकिन हम कहना चाहते हैं कि अब जमाना आया है कि भोग और मोक्ष, हम सब मिलकर प्राप्त करें। सब मिलकर भोग प्राप्त करने की कुछ कल्पना आ सकती है परंतु सब मिलकर मोक्ष प्राप्त करने की कल्पना बिलकुल ही नयी है।

लोग कहते हैं कि मोक्ष तो व्यक्तिगत ही होता है। पर यह बिलकुल गलत विचार है। जो व्यक्तिगत हो सकता है, वह मोक्ष ही नहीं। मोक्ष का मतलब है, अहंकार से छुटकारा। 'मेरा मोक्ष' ऐसी भाषा जहाँ आती है, वहाँ मोक्ष खतम ही होता है। मोक्ष का अर्थ ही है, व्यक्तित्व से छुटकारा पाना, सामूहिक, समाजमय बनना। भोग कभी व्यक्तिगत हो भी सकता है। कोई शख्स कहीं कोने में जाकर मुँह छिपाकर आम खा सकता है। किंतु व्यक्तिगत मोक्ष की कल्पना हो ही नहीं सकती। जिस किसी ने ऐसी कल्पना की हो, उसने मोक्ष का अर्थ समझा ही नहीं। उसने दूसरी ही किसी चीज को मोक्ष मान लिया।

हमारे लिए काम

हम समझते हैं कि समाज को आजतक मोक्ष हासिल नहीं हुआ है। उसकी साधना हो रही है, धीरे-धीरे हम ऊपर चढ़ रहे हैं। आज के ऋषि पुराने जमाने के ऋषियों से ऊँचे हैं। पुराने जमाने की अपेक्षा आज के जमाने में जैसे भौतिक ज्ञान ज्यादा है, वैसे आजके आध्यात्मिक ज्ञान का स्तर भी ऊँचा है। यह मैं इसीलिए कह रहा हूँ कि आपके मन में यह शंका न हो कि दान से जमीन के ऐसा बड़ा मसला पहले कभी हल नहीं हुआ तो अब कैसे हो सकता है। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि पुराने जमाने में जो चीजें नहीं बनीं, वही करने के लिए आपका और हमारा जन्म है। आज के जमाने में हमें और आपको एक नया काम करने का अवसर मिल रहा है, यह आपका और हमारा परम भाग्य

है। हम आशा करते हैं कि गाँव-गाँव के लोग इस बात को समझेंगे, गाँव-गाँव के लोगों को कार्यकर्त्ता यह बात समझायेंगे और इस यज्ञ में हिस्सा न लेनेवाला एक भी शख्स भरतभूमि में न रहेगा।

वेलपालेयम् (कोयम्बतूर)
२०-१०-'५६

राजा मिटे नहीं : ६४ :

हिंदुस्तान को राजा का अनुभव हजारों वर्षों से है। उस पर से वे इस निर्णय पर पहुँचे कि यहाँ राजा लोग प्रजा के कल्याण के लिए नाकाफी हैं। राजा अकेला तो राज्य नहीं करता था। कुछ मंत्री बना लेता और उनकी सलाह से राज्य चलाता था। अब लोगों ने राज्य-संस्था मिटा दी। अब प्रजा पाँच-पाँच साल के लिए राज्यकर्ता चुनती है। अगले साल लोग आपको पूछने आयेंगे कि राजा किसे बनाया जाय? लोगों की मर्जी के मुताबिक राजा चुना जायगा, जिसे आज मुख्यमंत्री कहते हैं। वह पाँच साल के लिए राज्य चलायेगा और अपने मंत्री खुद तय कर लेगा। उसमें किसी को पूछेगा नहीं।

आज सरकार के हाथ राजा से भी अधिक सत्ता

आज के मुख्यमंत्री और राजाओं में खास फर्क नहीं है। पहला फर्क तो यह कि पहले का राजा मृत्यु तक राज्य चलाता था, अब मुख्यमंत्री पाँच साल तक राज्य चलायेंगे। पाँच साल के बाद आप अगर उन्हें फिर से चुनेंगे, तो फिर से पाँच साल तक वे राज्य चलायेंगे। दूसरा फर्क यह है कि पहले राजा का बेटा गद्दी पर बैठता था, पर अब राज्यकर्ता का बेटा उसी तरह राज्य नहीं चला सकता। बस, इतना ही फर्क है और ढाँचे में कोई बदल नहीं हुआ। पाँच साल तक वह पूरी हुकूमत चला सकता है। वह जो करेगा सो बनेगा।

इस जमाने के पाँच साल पुराने जमाने के ५० साल के बराबर हैं। पुराने जमाने में राजा हुक्म देता था, तो उसे देश में पहुँचते-पहुँचते ही दो-चार साल

बीत जाते। औरंगजेब बादशाह का आसाम के गवर्नर को हुक्म हुआ, तो देहली से वहाँ पहुँचते-पहुँचते ही दो-तीन महीने बीत जाते। फिर वह अपने सरदार को सभी गाँवों में वह आज्ञा प्रचारित करने का हुक्म देता। इस तरह गाँव-गाँव बादशाह का हुक्म पहुँचने में चार-पाँच महीने और लग जाते थे। इस बीच परिस्थिति बदल जाती, तो राजा द्वारा दूसरा हुक्म भेजा जाता। पहले हुक्म का अमल नहीं हुआ था कि उतने में दूसरा भी हुक्म हो जाता। उसे भी गाँव-गाँव पहुँचने में एक साल लग जाता। इसलिए वे केवल नाममात्र के राजा रहते थे। वे प्रजा के जीवन का बहुत ज्यादा नियमन न कर पाते थे। लोगों को अच्छी तरह आजादी थी। आज हालत दूसरी है। आज देहली से हुक्म निकला, तो उसी दिन सारे हिंदुस्तान में पहुँच जाता है। रेडियो वगैरह ऐसे साधन हैं कि जो हुक्म दिया जायगा, उसके अमल के लिए दो घंटे में हिंदुस्तान में तैयारी हो जायगी। यही हालत दूसरे देशों की है। इसलिए जिसे राजा बनाते हैं, फिर वह पाँच साल के लिए भी क्यों न हो, वह पाँच साल में इतना काम कर सकता है जितना पहले के राजा ५० साल में भी नहीं कर सकते थे। आज के पाँच वर्ष याने पुराने राजाओं को मरने के लिए जितना समय लगता था वह कुल समझ लो। २० साल में पुराना बादशाह जितने हुक्म चला सकता होगा, उतने हुक्म आज आपका मुख्य मंत्री भी चलाता होगा। इसलिए वे अगर प्रजा का भला करना चाहें, तो भला कर सकते हैं और बुरा करना चाहें, तो बुरा भी कर सकते हैं। प्रजा के हाथ में कुछ न रहेगा।

आप इस भ्रम में मत रहिये कि पाँच साल के बाद राज्य हमारे ही हाथ में है। पाँच साल में तो इधर का उधर हो जायगा। आज प्रजा को पूछने का सिर्फ नाटक होता है। उसके परिणामस्वरूप राज्य चलानेवाले कहते हैं कि हम जो कुछ करते हैं, वह प्रजा की सम्मति से ही करते हैं। पुराने राजा यह नहीं कह सकते थे कि हम जो करते हैं वह प्रजा की सम्मति से करते हैं। आजकल तो बम्बई, कलकत्ता, पटना और कई जगह सरकार की ओर से गोली चलायी जाय, तो वे कहेंगी कि लोगों की सम्मति से हम गोली चलाते हैं।

लोगों ने हमें राज्य चलाने की आज्ञा दी है। इसलिए हमें ऐसा करना पड़ता है। पुराने राजाओं के सरदार यह नहीं कह सकते थे कि हमने गोली चलायी, तो लोगों की सम्मति से चलायी। इसलिए वे जो पुण्य-पाप करते थे, वह राजा का पुण्य-पाप होता था और उसका बोझ उसीको उठाना पड़ता था। लेकिन आज के राजा, जो पुण्य-पाप करेंगे, उसकी जिम्मेवारी आपपर है और पुराने जमाने के राजा से शतगुणित सत्ता अभी आपके मुख्यमंत्री के पास है। इसलिए गाँव-गाँव के लोगों को जाग जाना चाहिए। अपना भला-बुरा करने की सत्ता किसी को नहीं देनी चाहिए। पाँच साल के लिए नहीं और पाँच दिन के लिए भी नहीं।

ग्राम-राज्य से गाँव आजाद होंगे

आप अपने गाँव का एक राज्य बनायें। कौन-सा माल बाहर से लाया जायगा, वह सब मिलकर तय करें। गाँव में इतनी शक्ति आनी चाहिए कि इसके अलावा कोई भी चीज कोई व्यक्ति न खरीदेगा और बेचनेवाला वैसे ही वापस चला जायगा। गाँव एक स्टेट (राज्य) है। आजकल प्रान्त-रचना के सिलसिले में चर्चा चलती है कि कौन-सा तालुका किस राज्य में डाला जाय। राज्य चलानेवाले इधर से उधर डालते हैं और उधर से इधर। आपसे कोई पूछने नहीं आता। पाँच साल के बाद दूसरा शासक आता है, तो वह भी उधर का इधर और इधर का उधर कर देता है। कोई अगर आपसे पूछेगा कि आप कहाँ रहते हैं, तो जवाब होगा कि मैं गाँव में रहता हूँ और वह गाँव दुनिया में है। आप हमारी गिनती तमिल, मैसूर आदि चाहे जिसमें करें, हम तो अपनी गिनती गाँव में करते हैं और वह जगह कहीं है, तो दुनिया में है। हमारा राज्य परमेश्वर है और गाँव वाले मिलजुल कर राज्य-कारोबार चलाते हैं। आज तो आप के गाँव की योजना देहली में, और बहुत हुआ तो मद्रास में होती है। पर जबतक अपने गाँव की योजना आप न बनायेंगे, तबतक गुलामी न मिटेगी।

इसलिए सबसे बड़ी बात यह है कि आप अपना कारोबार चलायें। गाँव

के जितने २१ साल से बड़े भाई-बहन हैं, उनकी एक समिति (ग्राम-समिति) बनायी जाय और फिर उसमें से कार्य करने के लिए सर्वानुमति से एक समिति (कार्य-समिति) बने। वे लोग गाँव की सेवा करेंगे। वे गाँव के लिए जो फैसला देंगे, वह गाँव में ही होगा। शादी का खर्चा सारा गाँव उठा लेगा, इसलिए कर्ज का सवाल ही न आयेगा। गाँव की समिति की ओर से गाँव में एक दूकान चलेगी, जिसमें गाँववाले जो तय करेंगे, वे ही चीजें रखी जायँगी। झगड़े का निपटारा गाँव में ही होगा। उस पर अपील न की जा सकेगी। ऐसा करोगे तभी गाँव को सच्ची आजादी मिलेगी।

फिर अगर देहलीवाले कहें कि बाहर से आक्रमण होने पर रक्षा के लिए सेना चाहिए, देश में रेल चाहिए, इन सब के इन्तजाम के लिए थोड़ा टैक्स दीजिए, तो वह देना होगा। किन्तु उसमें भी आप कह सकेंगे कि हमारे गाँव का कारोबार हम सँभालते हैं, तो हमारे टैक्स का उपभोग हमारे गाँवही क्यों न किया जाय ? इस पर सरकार कहेगी कि रुपये में से १५ आना आप रखिये और एक आना हमें दीजिये। इस तरह गाँव की सत्ता आपके हाथ में आयेगी, तभी देश बचेगा। यही सर्वोदय का प्रयत्न है। भूदान इसीलिए है। थोड़ी जमीन लेकर बाँटना उसका उद्देश्य नहीं है। व्यक्तिगत मालकियत को खत्म करना ही उसका उद्देश्य है।

व्यक्तिगत मालकियत मिटने से व्यक्तिगत रोना भी दूर

लोग पूछते हैं कि व्यक्तिगत मालकियत न रहेगी तो काम कैसे चलेगा ? पर यह भ्रम है। व्यक्तिगत मालकियत मिटेगी तो व्यक्तिगत रोना भी मिट जायगा। सब मिल कर काम करेंगे, तो रोयेंगे क्यों ? आज तो हरएक किसान के पीछे एक-एक साहूकार लगा है, किसान रोता रहता है और बाकी लोग सुनते रहते हैं। व्यक्तिगत मालकियत रखी है, इसीलिए व्यक्तिगत रोना पड़ता है। व्यक्तिगत मालकियत मिटने पर अगर रोयेगा तो सारा गाँव रोयेगा। सारा का सारा गाँव रोये, ऐसा मौका आये, यह आसान बात नहीं है। सब मिलकर काम करते हैं तो हँसने का ही मौका आता है, इस दृष्टि से आप भूदान की ओर देखिये।

ग्रामदान क्यों ?

यदि आप इसे ठीक तरह समझ लेंगे और उसके अनुसार बरतेंगे तो सुखी होंगे। नहीं तो पाँच-पाँच साल में राजा बदलते जायँगे और आप उन्हें चुनते चले जायँगे। यह समझ लो कि राजा अभी मरा नहीं, बल्कि जोरदार बना है, उसका नाम बदल गया है। जबतक हम अपने गाँव में गाँव का राज्य न चलायेंगे, तब-तक ये राजा चलते रहेंगे। ग्रामदान में आप कुछ खोयेंगे नहीं। ५–१० या ५० एकड़ जमीन का मालिक २ हजार एकड़ जमीन का, याने सारे गाँव की जमीन का मालिक हो जायगा। उसमें कोई कुछ खोयेगा नहीं, बहुत कुछ पायेंगे। एक छोटा-सा परिवार था, तब जो आता, वही उसे पीसता। अब अगर वह परिवार बड़ा हो जाय, तो उसे कोई पीस न सकेगा। यह ग्रामदान का अर्थ है। इसीलिए बाबा ग्रामदान माँगता है।

कनकम् पालेयम्
२१-१०-'५६.

बुनकरों से ! : ६५ :

बुनकरों का धन्धा सिखाने या उसे बढ़ाने के लिए आजतक किसी की एक कौड़ी खर्च नहीं हुई है। वेद में एक मन्त्र है। ऋषि भगवान् को अपना स्तोत्र अर्पण कर रहा है : "वस्त्रेव भद्रा सुकृता सुपाणि।" याने जैसे किसी बुनकर ने उत्तम वस्त्र बनाया हो, वैसे ही मैंने यह स्तोत्र बनाया है और वह तुम्हें समर्पित करता हूँ। यह दस हजार साल पहले का वचन है। इससे स्पष्ट है कि दस हजार साल से हमारे देश में बुनकर का धन्धा चलता आया है। बाप ने बेटे को वह कला मुफ्त में सिखायी है। इसे सिखाने के लिए न शिक्षक रखना पड़ा, न शाला खोलनी पड़ी और न सरकार को या और किसी को यह कला सिखाने के लिए कौड़ी खर्च करनी पड़ी। किन्तु आज उसी कला को मारने के लिए सरकार की तरफ से खर्च किया जाता है, तो यह कितनी विचित्र बात है !

क्योंकि एक बार चरखे को पॉवरलूम लगेगा, तो हाथ की कला खतम हो जायगी। हजारों साल से जो कला विकसित होती चली आयी है, वह एक क्षण में नष्ट हो सकती है। इसलिए आप लोगों ने पॉवरलूम का जो निषेध किया, उसके साथ हमारी सहानुभूति है। ऐसी सभा गाँव-गाँव में होनी चाहिए और बुनकरों की आवाज उठनी चाहिए कि हम पॉवरलूम नहीं चाहते।

याद रखिए कि अगर अभी राजा का राज्य होता, तो आप बोल सकते थे कि 'राजा का जुल्म हुआ।' लेकिन यह प्रजा का राज्य है, इस राज्य में आप चुप बैठेंगे, तो यही माना जायगा कि सब कुछ आपकी सम्मति से हो रहा है। इसलिए इसके विरुद्ध आवाज उठाना आपका कर्तव्य हो जाता है। मन में निषेध रखेंगे तो काम न चलेगा। हजारों सभाओं के जरिये अपनी आवाज उठानी होगी और जिनके कान यहाँ नहीं आ पाते, उतने कानों तक वह पहुँचनी चाहिए। इतने जोरों से आवाज उठनी चाहिए कि बहरों के कानों को भी वह सुनाई दे। अगर आप यह करते हैं, तो सरकार के खिलाफ कुछ भी नहीं करते। बल्कि अच्छा राज्य चलाने में सरकार को मदद ही देते हैं। क्योंकि अगर आप आवाज नहीं उठायेंगे तो सरकार समझेगी कि लोगों को यह बात पसंद है और लोगों की पसंदगी से राज्य चल रहा है। इसलिए यह निषेध बहुत जरूरी है और प्रजा के नाते आपका यह कर्तव्य है।

लेकिन इस निषेध के साथ अपना कुछ संघटन भी होना चाहिए। केवल बुनकरों का संघटन काफी नहीं। बुनकर, किसान और दूसरे-तीसरे धंधे करनेवालों का एक संघ चाहिए। तीन रस्सी इकट्ठी कर बटने पर ही वह मजबूत होती है। बुनकर एक धागा है, किसान भी एक धागा है और इन दोनों के अलावा दूसरे कार्य करनेवाले भी एक-एक धागा हैं। इन सब को बटने से मजबूत रस्सी बनेगी और उसे कोई तोड़ नहीं सकता। इसलिए आपने गाँव के साथ एकरूप होने का जो निश्चय किया, उससे हमें बड़ी खुशी हुई। दुनिया में केवल निषेध काम नहीं देता। निषेध के साथ कुछ काम भी रहना चाहिए।

उसके साथ कुछ संकल्प रहता है, तभी ताकत आती है। लेकिन यह भी समझ लीजिए कि सिर्फ प्रस्ताव में भी ताकत नहीं है। उसका अमल करेंगे, तभी ताकत पैदा होगी।

सुरट्टपालेयम्
२२-१०-'५६.

निष्काम-सेवा : ६६ :

आप के गाँव के नाम से आचार्य नरेन्द्रदेवजी का स्मरण हो आता है। वे भारत के एक बहुत बड़े सेवक थे और आखिर की बीमारी में यहाँ आकर रहे थे। सत्पुरुषों का मरण-स्थान भी महत्त्व का माना जाता है, क्योंकि उनकी आखिर की शुभवासना उस स्थान के साथ जुड़ी रहती है। हम उम्मीद करते हैं कि यहाँ के भाई-बहनों को उनके स्थान से निष्काम-सेवा की प्रेरणा मिलेगी। वैसे हर मनुष्य कुछ-न-कुछ सेवा करता ही है, उसके बिना जीना संभव ही नहीं। किंतु हम सेवा करते हैं, तो उसके साथ कुछ फल की अपेक्षा भी रखते हैं। अपने लिए कुछ अपेक्षा रखकर जो सेवा की जाती है, उसकी कीमत कुछ कम हो जाती है। पर जहाँ केवल प्रेम से सेवा की जाती है और उससे मिलनेवाले मानसिक आनन्द के अलावा कुछ भी इच्छा नहीं रहती, उस सेवा की कीमत ऊँची हो जाती है। ऐसी सेवा करनेवाले ईश्वर-भक्त होते हैं। वे लोगों की सेवा करते और उसीसे हृदय में आनन्द का अनुभव करते हैं, उसीसे उन्हें तृप्ति होती है।

खेल के जैसा सेवा-कार्य

जिस सेवा के साथ कुछ कामना रहती है, उससे पूरा आनन्द नहीं मिलता। हर काम के लिए यही बात लागू होती है। बच्चे खेलते हैं तो उन्हें उसमें आनन्द आता है। उससे व्यायाम भी होता है और देह के लिए लाभ भी। पर वे देह के लाभ की कामना रखकर नहीं खेलते, आनन्द और सहजभाव से खेलते

हैं। इसलिए बच्चों का खेलना निष्काम कर्म हो जाता है। इसी तरह सत्पुरुषों के जितने लोकसेवा के कार्य होते हैं, वे स्वयंस्फूर्ति से होते हैं और केवल खेल के जैसे होते हैं। बच्चों से पूछा जाय कि तुम किसलिए खेलते हो, तो उनके मन में यह सवाल ही नहीं पैदा होता है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे आनंद के लिए खेलते हैं। देहलाभ के लिए तो खेलते ही नहीं। खेल से देह के लिए लाभ होता और अनन्द भी मिलता है, परन्तु बच्चे स्वभाव से खेलते हैं। इसी तरह सत्पुरुष स्वभाव से ही सेवा करते हैं। उस सेवा से जनता को कई प्रकार के लाभ होते हैं और वे होने भी चाहिए। उन लाभों को ध्यान में रखकर ही सेवा करनी पड़ती है। पर उस सेवा में अपने लिए वे कोई कामना नहीं रखते। इसीलिए वे जो सेवा करते हैं, उसका उनके सिर पर कोई बोझ नहीं होता है।

स्वभाव से सेवा

सवाल पूछा गया था कि ईश्वर सृष्टि की रचना क्यों करता है? जब कि हम खुद ही उस सृष्टि के छोटे-से अंश हैं, तो इसका क्या जवाब दे सकेंगे? लेकिन इसका जवाब दिया गया है: 'लीलामात्रम्।' याने ईश्वर केवल खेलने के लिए सृष्टि की रचना करता है। नटराज नाच रहा है, क्यों नाचता है? उसमें से सृष्टि का प्रलय भी होता है, सृष्टि का निर्माण भी होता है और सृष्टि का पालन भी। उससे भक्तों पर अनुग्रह भी होता है और उनका मोचन भी। उनके नाट्य से ऐसा पंचविध कार्य होता है। वैसे कितने ही कार्य होते होंगे, पर गिनने के लिए पांच प्रकार के कार्य गिने गये हैं। लेकिन नटराज से पूछा जाय कि 'क्या तुम पंचविध कार्य करते हो?' तो वे इतना ही कहेंगे कि 'मैं तो नाचता हूँ।' उनका यह खेल चल रहा है। उसका उनके सिर पर कोई बोझ ही नहीं है। पंचविध कार्य तो किये बिना वे रह ही नहीं सकते।

अगर आप सूर्यनारायण से कहें कि 'तुम चौबीस घंटे लगातार प्रकाश देते हो, मनुष्यों को और प्राणियों को गर्मी पहुँचाते हो, कितना महान् कार्य करते हो! अन्धकार दूर करना आपका कितना महान् उपकार है!' तो वह कहेगा

कि 'मैं नहीं जानता कि मैं क्या उपकार करता हूँ।' प्रकाशदान सूर्य का स्वभाव है। उसके बिना सूर्य रह ही नहीं सकता। सूर्य का सूर्यत्व ही उसपर निर्भर है। इसीलिए वह जितने काम करता है, उनका उसके सिर पर कोई बोझ नहीं होता। क्या हमें अपने आरोग्य का भार मालूम होता है? भार तो रोग का होता है, आरोग्य का नहीं। क्योंकि आरोग्य प्रकृति है, वह स्वभाव है, इसलिए उसका बोझ नहीं मालूम होता।

परोपकार के लिए ही जीवन

परोपकार करना सत्पुरुषों का स्वभाव है। वे पहचानते ही नहीं कि हम परोपकार कर रहे हैं। वे समझते हैं कि हम अपना काम करते हैं। एक बार एक किसान लोकमान्य तिलक से मिलने आया और उन्हें नमस्कार करते हुए कहने लगा: "आपका हमपर बड़ा उपकार है। आप महापुरुष हैं।' लोकमान्य ने उससे कहा: 'अरे भाई, तू खेती करके पेट भरता है और मैं लेख लिखकर, व्याख्यान देकर। इसलिए तू जो काम करता है, उससे मैं कोई ज्यादा काम नहीं करता। और अगर उपकार की बात करनी है, तो तेरा भी दुनिया पर उपकार होता है, जितना कि मेरा होता है।' कहने का तात्पर्य यह है कि उन्होंने महसूस नहीं किया कि मैं कोई उपकार करता हूँ।

माता बच्चे की कितनी सेवा करती है, वह उस बच्चे के लिए ही जीवन बिताती है, चौबीसों घंटा उसीके लिए काम करती है। अगर कल वह यह कहे कि मैं कितना काम करती हूँ, तो बच्चे भी उससे कहेंगे कि हम आपका बहुत उपकार मानते हैं। लेकिन आज माँ कहती भी नहीं कि मैं बड़ी सेवा का काम कर रही हूँ और बच्चे भी उसका आभार नहीं मानते हैं। माँ बच्चों की सेवा करती है और बच्चे माँ की सेवा करते हैं। कोई किसी का उपकार या आभार ीं मानता।

लेकिन संस्था का सेक्रेटरी अपने सालभर के काम की लंबी रिपोर्ट पेश करता है और फिर सब लोग इकट्ठा होकर उसका उपकार मानते हैं। इस तरह जहाँ सेवा का नाटक चलता है, वहाँ उपकार का बोझ मालूम होता और आभार माना

जाता है। लेकिन जहाँ स्वभाव से ही उपकार होता है, वहाँ उसका बोझ नहीं मालूम पड़ता।

सत्पुरुषों की सेवा 'बाई-प्रॉडक्ट'

आपकी कावेरी नदी अखंड बहती है, तो कितना उपकार करती है। लोगों पर, प्राणियों पर, पेड़ों पर, किसानों पर, कारखानादारों पर और शहर में बिजली के पहुँचने पर शहरवालों पर वह असंख्य उपकार करती है। किंतु उससे कहो कि तुम कितना उपकार कर रही हो, तो वह यही कहेगी कि 'मैं क्या उपकार कर रही हूँ, मुझे मालूम नहीं। मुझे इतना ही मालूम है कि मैं समुद्र में मिलने जा रही हूँ। दूसरा कोई काम मैं करती हूँ, तो मुझे मालूम नहीं। सिर्फ एक ही काम मालूम है, मेरा जो ध्येय, गंतव्य स्थान समुद्र है, उससे मिलने के लिए मैं जा रही हूँ।' वैसे ही भक्त लोग हमेशा परमेश्वर के साथ मिलने के लिए, संगम के लिए, प्रवास करते हैं। ईश्वर के पास जाने के लिए उनकी यात्रा चलती है, लेकिन उससे लोगों पर उपकार हो जाता है, असंख्य मनुष्यों की सेवा होती है। वह सेवा उनका 'बाई-प्रॉडक्ट' है। वे सेवा करते-करते ही अपने जीवन को पूर्ण बनाते हैं और सार्थक करते हैं।

निष्काम और सकाम सेवा की मिसालें

भगवान् सूर्यनारायण का प्रवास सुबह से लेकर शाम तक अखंड चलता रहता है। उनसे लोगों की कितनी सेवा होती है, परन्तु वे नहीं समझते कि मैं कोई सेवा कर रहा हूँ। ऐसी सेवा को निष्काम सेवा कहते हैं। इस प्रकार की निष्काम सेवा करने के लिए ही यह मनुष्य देह है।

महात्मा गांधी ने ४० साल तक स्वराज्य के लिए सतत काम किया। उनके चौबीसों घंटे स्वराज्य के चिंतन में जाते थे। जब स्वराज्य हुआ, तो देहली में और हर बड़े शहर में रोशनी हुई। पर उस समय वे नोआखाली में पैदल घूम रहे थे, दुखियों के आँसू पोंछने के काम में लगे हुए थे। स्वराज्य आने पर उन्होंने कोई भी पद अपने हाथ में नहीं लिया। इसी तरह भगवान् कृष्ण ने कंस का वध किया और सारा राज्य उनके हाथ में आ गया। किंतु कृष्ण खुद राजा नहीं बने। उन्होंने उग्रसेन को राजा बनाया। फिर उनके

हाथ द्वारका का राज्य आया, तो उसे बलराम को दे दिया, खुद नहीं लिया। महाभारत का बड़ा युद्ध हुआ और उसमें श्रीकृष्ण के कारण ही पांडवों की जय हुई। लेकिन भगवान् ने आखिर धर्मराज के ही मस्तक पर अभिषेक किया। वे खुद हमेशा सेवक ही रहे। इसीका नाम है निष्काम सेवा। लोकमान्य तिलक स्वराज्य के लिए सतत प्रयत्न करते रहे। लेकिन जब उनसे पूछा गया कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद आप कौन-सा पद लेंगे? तो उन्होंने कहा: 'स्वराज्य प्राप्ति के बाद पद लेना मेरा काम नहीं। मैं या तो वेदों का अध्ययन करूँगा या गणित का अध्यापक बनूँगा।' इसीका नाम है निष्काम सेवा। ऐसी थोड़ी भी निष्काम सेवा जिस किसी मनुष्य के हाथों से होती है, उसे अत्यंत समाधान और तृप्ति का अनुभव होता है।

दाताओं को निष्काम-सेवा का समाधान

हम चाहते हैं कि भूमिहीनों को भूमि मिले और उनकी मदद के लिए संपत्तिवानों की संपत्ति मिले। सब लोग अपनी जमीन, संपत्ति और बुद्धि गरीबों की सेवा में लगायें। इसके बदले में हम उन दाताओं को क्या कोई पद देंगे या उनके लिए कहीं सिफारिश करेंगे? हम उन्हें निष्काम सेवा का समाधान देंगे। केवल निष्काम सेवा करने की प्रीति से जो लोग अपनी जमीन, संपत्ति और बुद्धि का एक अंश दान देंगे, उनके हृदय को अत्यंत समाधान होगा। उससे भूमिहीनों को जितना आनंद होगा, उससे ज्यादा आनंद देनेवालों को होगा। एक प्यासा आपके घर पर आकर पानी माँगता है और आप उसे ठंडा पानी पिलाते हैं, तो उसकी अंतरात्मा तृप्त होती है। किंतु पानी पीनेवाले को जितना आनंद होता है, उससे ज्यादा आनंद पिलानेवाले को होता है। यह बात सही है या गलत, आप ही अपने मन में सोचिये। आप गरीबों के; दुःखियों के लिए कुछ मदद करेंगे, तो उनसे ज्यादा आनंद आपको होगा। आप अनुभव करके देख लिये और अगर आपके मन में यह निश्चय हुआ कि उसमें आनंद, संतोष और तृप्ति है, तो फिर आपको इस काम को उठा लेना होगा।

परेन्दुराई (कोयम्बतूर)
२४–१०–'५६.

भारत बहुत बड़ा देश है। इसमें ३६ करोड़ से भी ज्यादा लोग रहते हैं। इसमें से छटा हिस्सा शहरों में रहता है। वह खेती नहीं करता और न वह कर सकता है। गाँवों में जो कारीगर वर्ग होता है, वह भी खेती नहीं कर सकता है, क्योंकि उसे गाँववालों के काम करने पड़ते हैं। आज कुल देश को अनाज दिलाने का काम किसानों और कृषक-मजदूरों का होता है, बाकी सभी लोग अनाज खरीदेंगे। अनाज ऐसी वस्तु है कि उसके बिना किसी का नहीं चलता। वह ऐसी चीज है, जो सबको मिलनी चाहिए। इसलिए वह मँहगी भी नहीं बिक सकती। वास्तव में 'अनाज की कीमत', यह कल्पना ही छोड़ देनी चाहिए। जैसे हवा, पानी सबको मुफ्त में मिलते हैं, वैसे ही अनाज भी बिना दाम मिलना चाहिए। अगर वह मुफ्त न हो सके, तो कम-से-कम दाम होना चाहिए, जो मुफ्त जैसा ही मालूम हो। लेकिन अगर अनाज का बहुत कम दाम मिलता है, तो किसानों को तकलीफ होती है। इसलिए महँगा भी नहीं और सस्ता भी नहीं, ऐसा बीच का रास्ता निकालना चाहिए।

अनाज से पैसा नहीं मिल सकता

यह तो जाहिर है कि अनाज पैदा कर बहुत पैसा पैदा नहीं कर सकते, यह बात किसान भी जानते हैं। फिर भी वे माँग करते हैं कि अनाज की कुछ ज्यादा कीमत होनी चाहिए। साथ ही वे जानते हैं कि अनाज बहुत ज्यादा महँगा नहीं हो सकता। जो चीज सबको चाहिए, वह महँगी नहीं हो सकती। इसीलिए फिर वे तम्बाकू, गन्ना, जूट, कपास, हल्दी जैसी पैसे की चीजें बोते हैं। यह भी ज्यादा दिन न चलेगा, क्योंकि दिन-ब-दिन जनसंख्या बढ़ रही है। इसलिए जितनी जमीन में दूसरी चीजें बोई जायँगी, उतने परिमाण में अनाज कम मिलेगा। इससे देश को नुकसान होगा। यद्यपि शक्कर खाने की चीज है, फिर भी वह अनाज की जगह नहीं ले सकती। दो तोले अनाज

के बदले दो तोले शक्कर में ले सकते हैं, लेकिन उससे ज्यादा नहीं खा सकते। इसलिये अनाज कम पड़े, इतना गन्ना नहीं बो सकते। देश को कपास भी चाहिए। क्योंकि कपास के बिना कपड़ा न बनेगा। लेकिन कपास ज्यादा बोयेंगे, तो कपड़ा खूब मिलेगा, पर अनाज कम हो जायगा। अनाज के बदले में कपड़ा, तम्बाकू, गन्ना आदि से ही काम न चलेगा। सारांश, जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती चली जायगी, वैसे-वैसे अनाज के लिए ही जमीन का उपयोग करना होगा। तब पैसे के लिए जो चीजें बोते हैं, शायद वे छोड़ देनी पड़ेंगी, या तो कम-से-कम बोनी होंगी।

ग्रामोद्योगों का माल महँगा बेचा जाय

किसान को पैसे के आधार पर अपना जीवन न रखना चाहिए। उसके हाथ में दूसरे उद्योग होने चाहिए। तेल, शक्कर, जूता, कपड़ा आदि चीजें अपने गाँव में ही बनानी चाहिए। किसान के हाथ में कुछ उद्योग होने चाहिए और उन उद्योगों का माल शहर में बेचा जाय और वह महँगा भी रहे। गाँववालों को अपना खुद का तेल बनाना चाहिए और बाकी बेच देना चाहिए। कपड़े आदि का भी ऐसा ही होना चाहिए।

गाँववाले शिकायत करते हैं कि खादी महँगी है। पर वह तो आपकी चीज है, बेचने की चीज है, खरीदने की नहीं। उसका तो ज्यादा पैसा मिलना ही चाहिए, तभी किसानों को कुछ पैसा मिलेगा। अनाज में तो उन्हें खास पैसा मिलेगा नहीं। जनसंख्या बढ़ेगी, तो वे दूसरी चीजें पैदा न कर सकेंगे, ज्यादा से ज्यादा जमीन अनाज में लगानी पड़ेंगी। इसलिए तुम्हारी चीजें शहरों में बेची जानी चाहिए, तुम्हें खरीदनी नहीं चाहिए। आप सब लोगों को खद्दर पहनना चाहिए और बचा खद्दर शहर में बेचना चाहिए। शहरवालों को भी ज्यादा दाम देकर उसे खरीदना चाहिए। किन्तु आज तो देहात के लोगों का कुल जीवन पैसे पर खड़ा किया गया है। खेती के सिवा बाकी धंधे टूट गये हैं।

जमीन की कीमत नहीं हो सकती

जमीन माता है। सबके पोषण का साधन हो सकती है। पैसे का साधन

तो उद्योग होना चाहिए और उसका खुद उपयोग करना चाहिए। पर आज तो जमीन को ही अपने पैसे का साधन बनाया गया है। इसलिए पैसेवालों ने गरीब लोगों के हाथ से उसे छीन लिया है। घर में शादी हुई, तो सौ रुपये का कर्जा दो सौ रुपया लिखवाकर लेना पड़ा। दिन-ब-दिन रुपये बढ़ते गये और आखिर दो सौ रुपये के बदले में पाँच एकड़ जमीन देनी पड़ी। इस तरह जमीन की पैसे में कीमत हो गयी और बेचारा किसान बेहाल हो गया। वास्तव में जमीन का मूल्य रुपये में नहीं हो सकता। अगर आप दस हजार रुपये के नोट को एक गड्ढे में रखकर ऊपर से पानी डालें, तो क्या फसल आयेगी? मिट्टी की कीमत पैसे में हो ही नहीं सकती। मिट्टी में से खाने की चीजें मिल सकती हैं, पैसे नहीं। फिर भी आज जमीन पैसे का साधन बनी और वह चंद लोगों के हाथ में आ गयी है। कारण, पैसा किसानों के हाथ की चीज नहीं है। वह नासिक के छापखाने में छपता है। शहरवालों को पैसा बनाने में तकलीफ नहीं होती है। आपने जमीन को पैसे का आधार बनाया, तो आपकी चोटी उनके हाथ में आ गयी। जमीन की मालकियत ही नहीं हो सकती। वह पैसे की चीज नहीं, प्राण की चीज है। उस पर अपना प्राण टिकेगा। परंतु आपने उसकी पैसे में कीमत की। परिणामस्वरूप गाँव के उद्योग टूट गये और गाँव के लोग चूसे गये।

शहर में बहुत ज्यादा लूटनेवाले होते हैं। गाँव को लूटनेवाले, गरीब लोगों की तुलना में पैसेवाले ही ज्यादा होते हैं। किंतु शहर में तो वे ही लूटे जाते हैं। क्योंकि जमीन में से वे कितने पैसे कमायेंगे? इस तरह शहरों में एक-दूसरे को मारकर लोग जीते हैं। इससे समाज कभी सुखी नहीं हो सकता। समाज में शान्ति नहीं हो सकती। हृदय को समाधान नहीं हो सकता और न जीवन में कभी पूर्णता ही आ सकती है।

गाँववाले सुखी कैसे हों?

आपको सुखी होने के लिए चार-पाँच चीजें करनी होंगी—(१) जमीन पैसे का आधार नहीं होनी चाहिए, (२) गाँववालों को पैसे की ज्यादा जरूरत

न हो, (३) थोड़ा पैसा जरूरी हो, तो उसके लिए गाँव में उद्योग चलें और उन उद्योगों की चीजें बाहर बिकें, (४) उन उद्योगों की चीजों का दाम ज्यादा हो, और (५) गाँव में सब लोगों को जमीन मिले। जैसे शादी करने का अमीर-गरीब आदि सभी को हक है, क्योंकि उसकी सबको जरूरत है, वैसे देहात में हर मनुष्य को जमीन मिलनी चाहिए। इसलिए गाँव की जमीन सब में बाँटो। जमीन का मूल्य पैसे में नहीं हो सकता।

अगर आप यह ग्रामीण अर्थशास्त्र समझ लेंगे, तो आपको भूदान समझाने की जरूरत न रहेगी। आप गाँव में जमीन बाँट लेंगे, गरीबों को जितनी जमीन चाहिए उतनी दान में देंगे, गाँव में ग्रामोद्योग खड़े करेंगे। महत्त्व की चीजें बाहर से न खरीदेंगे, वरन् खुद बनायेंगे और जो चीजें बाहर बेचेंगे, उसका दाम ज्यादा रखेंगे। यह सारा इन्तजाम संघशक्ति से ही करना चाहिए। अलग-अलग बेचने जायँगे, तो ज्यादा पैसा न मिलेगा। इसलिए आपको गाँव का एक संघ बनाना होगा। यही हमारा ग्रामीण अर्थशास्त्र है।

सिवागिरि (कोयम्बतूर)
२७-१०-'५६

आज देश में 'निष्काम-सेवा' करीब-करीब शून्य है। निष्काम-सेवा याने ऐसी सेवा, जिसमें अपने लाभ की इच्छा न हो, अपने पक्ष के लाभ की इच्छा न हो और न उसमें प्रतिष्ठा की भी बात हो। स्वराज्य-प्राप्ति के पहले निष्काम-सेवा का लोगों को कुछ अभ्यास था। उन दिनों काँग्रेस में कई लोग केवल स्वराज्य की भावना से निष्कामता से काम करते थे। रचनात्मक काम करनेवाले भी गरीबों की सेवा निष्काम बुद्धि से करते थे।

स्वराज्य के बाद निष्काम सेवा नहीं रही

पर स्वराज्य-प्राप्ति के बाद कुल देश बदल गया। लोग अनेक राजनैतिक पक्षों में बँट गये। फिर कुछ सेवक, जो पहले लोगों की सेवा करते थे, सरकार के अंदर दाखिल हो गये। स्वराज्य हाथ में लेने के बाद उसे चलाना चाहिए, यह भी एक कर्तव्य माना गया, इसलिए योग्यता और वजन रखनेवाले लोग सरकार के अन्दर गये। जो लोग सरकार में गये, वे निष्काम नहीं हो सकते, ऐसा नहीं; कुछ तो हो ही सकते हैं। हम जानते हैं कि महाराज जनक अत्यन्त निष्काम थे और उन्हीं की मिसाल निष्काम कर्म के बारे में भगवत्‌गीता में दी गई है। लेकिन वैसे लोग हाथ की उंगुलियों से ही गिने जायँगे। बाकी बहुत-से लोग वहाँ सत्ता का ही अनुभव करते हैं। इसलिए उनसे निष्काम सेवा नहीं बनती।

रचनात्मक काम करनेवाले पहले सरकारी मदद की अपेक्षा न करते थे। एक प्रकार से उनका काम सरकार के विरुद्ध ही था। इसलिए उन्हें काफी त्याग करना पड़ता था। उन्हें कुछ तनख्वाह भी दी जाती थी, तो वह बिलकुल कम-से-कम दी जाती थी और उनका सबका भार जनता पर ही था। लेकिन आज हालत बदल गयी है, आज सरकार की योजना में कुछ रचनात्मक कार्यकर्ता दाखिल हुए हैं। वहाँ उन्हें अनेक प्रकार की सहूलियतें मिलने लगी हैं। उन्हें त्याग की आवश्यकता भी उतनी नहीं रही। उन्हें जनता पर आधार रखने की

आवश्यकता भी न रही। उनकी यह श्रद्धा हो गयी कि सरकार पर आधार रखकर ही काम हो सकता है। इस हालत में भी निष्काम सेवा करनेवाले हैं, पर उनकी संख्या बहुत कम, तीन-चार हाथों की उंगुलियों पर उनके नाम गिने जा सकते हैं।

राजनैतिक पक्षवालों की हालत

जो लोग राजनैतिक पक्षों में बँट गये हैं, उनमें से कुछ लोग पद लिये हुए हैं, कुछ म्युनिसिपलिटी, डिस्ट्रिक्टबोर्ड आदि में गये, तो कुछ काँग्रेस संस्था के अध्यक्ष, मंत्री आदि बने। इन दिनों काँग्रेस के अध्यक्ष आदि के हाथ में भी बहुत सत्ता रहती है, क्योंकि आज काँग्रेस शासनकर्त्री संस्था है। ऐसी हालत में निष्काम सेवक कौन होंगे? दुनिया में कुछ तो होंगे ही, ईश्वर के भक्त कहीं-न-कहीं होते हैं तो वहाँ भी होंगे। जो लोग दूसरे राजनैतिक पक्षों में काम करते हैं, उनके हाथ में सत्ता नहीं है, किंतु वे सत्ता के अभिलाषी हैं और उनका सारा ध्यान इसी में रहता है कि काँग्रेस के या सरकार के काम में कहाँ त्रुटियाँ हैं। इस तरह दूसरों की गलतियाँ गिननेवाला अपना चित्त शुद्ध नहीं रख सकता। जहाँ चित्तशुद्धि का अभाव आया वहाँ निष्काम सेवा कहाँ से होगी? फिर भी उनमें कुछ चंद लोग निष्काम होंगे।

सेवा का सौदा

इस तरह स्वराज्य-प्राप्ति के बाद जो सेवा हो रही है, उसका हिसाब हमने लगा लिया। अब भी 'रामकृष्ण मिशन' जैसी कुछ संस्थाएँ काम करती हैं, जो पहले भी करती थीं। उनमें कुछ निष्काम सेवक जरूर होंगे। निष्काम सेवा ही सच्ची सेवा है। बाकी सेवा याने एक प्रकार का सौदा है। किसी ने जेल में कई साल बिताये, तो वह कहता है हमें भी कुछ मिलना चाहिए। किसी ने भूदान में कुछ त्याग किया, तो वह भी कहता है कि हमें कुछ मिलना चाहिए। अभी काँग्रेस ने जाहिर किया है कि जिन्होंने कुछ काम किया है, वे अपने काम का हिसाब पेश करें और उसके अनुसार उन्हें कुछ पद आदि मिलेगा। कुछ लोग अपने काम की रिपोर्ट पेश करेंगे कि हमने इतने-इतने दिन काम किया;

इसलिए हम चुने जायँ। उन्हें वैसी अपेक्षा रखने का अधिकार भी है, लेकिन उसमें निष्कामता कहाँ रही ? वह शुद्ध सेवा नहीं, वह तो सौदा हो गया।

राजसत्ता से धर्म-प्रचार संभव नहीं

अब मैं दूसरा हिसाब लगाऊँगा। आज की हालत में जनशक्ति पर श्रद्धा और जनसेवा पर विश्वास बहुत ही कम दीखता है। राजनैतिक पक्षों में काम करनेवाले मानते हैं कि सत्ता के जरिये ही काम होगा, उनका सरकार की शक्ति पर जो विश्वास है वह जनशक्ति पर नहीं है। वे कुछ जनसेवा भी करेंगे, तो इतना ही करेंगे कि सरकार के जरिये लोगों को कुछ मदद पहुँचायेंगे। लोग भी उनसे ऐसा ही पूछेंगे कि आप हमारी तरफ से प्रतिनिधि बने हैं, तो आपने हमारे लिए क्या किया ? इसलिए लोगों को उनकी अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं और राजनैतिक पक्षों में काम करनेवालों का भी जनशक्ति पर विश्वास नहीं। इस हालत में स्वतंत्र जनसेवा की कोई कीमत नहीं रही। तिस पर भी वे लोग सेवा करेंगे, क्योंकि उसके जरिये वे सत्ता पर काबू रख सकेंगे। वे सोचते हैं कि हम सेवा करेंगे, तभी लोग हमें चुनेंगे और तभी हमारे हाथ में सत्ता आयेगी। इसलिए वह सेवा सत्ता की दासी है।

लोक-जीवन में सुधार, परिवर्तन, लोगों में क्रांति लाना आदि काम सरकारी शक्ति से कभी नहीं हो सकता। अगर सरकारी शक्ति से जनक्रांति होना संभव होता, तो बुद्ध भगवान् के हाथ में जो राज्य था, उसे वे क्यों छोड़ते ? इन दिनों लोग बुद्ध भगवान् की नहीं, बल्कि अशोक की मिसाल देते हैं। वे कहते हैं कि अशोक का परिवर्तन हुआ और उसने धर्मप्रचार किया, तो फिर राज्यशक्ति से धर्मप्रचार हुआ न ? हम कहना चाहते हैं कि वे लोग इतिहास का जरा भी ज्ञान नहीं रखते। जब से बुद्ध-धर्म को सरकारी शक्ति का बल मिला, तब से बुद्ध-धर्म के हिन्दुस्तान से उखड़ने की तैयारी हुई। जब से ईसाई-धर्म को, कान्स्टेन्टाईन के बाद राजसत्ता का आधार मिला, तब से ईसाई-धर्म नाममात्र का रहा। ईसा के पहले अनुयायी जैसे शुद्ध धर्म का आचरण करते थे उसका लोप हुआ, चर्च बना और ढोंग पैदा हुआ। यहाँ पर शैव-वैष्णव-जैन दिखाई देते हैं

परंतु जब से इनको राजसत्ता का बल मिला तब से हजारों लोग शैव, वैष्णव और जैन बने। लेकिन वे वास्तव में शैव, वैष्णव या जैन नहीं, बल्कि राजनिष्ठ और राजभक्त बने। आज दुनिया में गिनती के लिए तो हजारों शैव, वैष्णव, जैन और लाखों हिन्दू, ईसाई हैं; लेकिन उनका आचरण क्या है ?

धर्म का नाम है, आचरण नहीं

आज अगर ईसा मसीह आये, तो क्या यूरोप में और अमेरिका के ईसाई धर्म का दृश्य देखकर वह संतुष्ट होगा ? ईसा ने तो कहा था कि कोई तुम्हारे गाल पर तमाचा मारे, तो दूसरा गाल सामने करो। आज इसका आचरण कौन कर रहा है ? आज गिनती के लिए तो करोड़ों की संख्या में ईसाई हैं। वही हालत इस्लाम की है। बड़े-बड़े राजा हुए, जो इस्लाम का नाम लेते थे, तो प्रजा में से भी हजारों लोग मुसलमान बन गये। क्या वह कोई इस्लाम का प्रचार था ? अभी हम देखते हैं कि अंबेडकर के साथ दो लाख बौद्ध बने। तो क्या ऐसे धर्मांतरण से बुद्ध भगवान को संतोष होता होगा ? क्या उन्होंने इस तरह लाख-लाख लोगों को दीक्षा दी थी ? क्या धर्म कोई खेल है कि लाख-लाख लोग एकदम दूसरे धर्म में शरीक हों ? आचरण कुछ नहीं और धर्म के नाम से झगड़े चलते हैं। इसलिए जबसे राज-सत्ता धर्म के साथ जुड़ गई, तबसे धर्म की अत्यंत हानि हुई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज हजारों, लाखों लोग अपने को धार्मिक कहलाने के बजाय नास्तिक कहलाना पसन्द करते हैं।

इसलिए राजसत्ता के जरिये सद्विचार या सद्धर्म फैल सकता है, यह कल्पना ही मन से निकाल दीजिये। बल्कि अगर सच्चे अर्थ में राजसत्ता धर्म के साथ जुड़ जाय, तो धर्म राजसत्ता को ही खतम कर देगा। दोनों एक साथ नहीं रह सकेंगे। अन्धकार और सूर्यनारायण एक साथ नहीं रह सकते। धर्म अगर सचमुच में राजसत्ता के साथ आ गया, तो वह राजसत्ता को तोड़ देगा। दूसरों पर सत्ता चलाना धर्म-विचार नहीं। सबकी सेवा करना, प्रेम से

समझाना ही धर्म-विचार है। लाख-लाख लोग एकदम धर्मनिष्ठ बनें, यह भी क्या कोई धर्मनिष्ठा है ?

राजसत्ता और समाज-क्रान्ति

जो धर्म दुनिया में और विचार में क्रान्ति लानेवाला है, वह राजसत्ता के जरिये फैल नहीं सकता। इसलिए बुद्ध भगवान् को राज्य छोड़ना पड़ा। ऐसी ही पुरानी दूसरी भी मिसालें हैं। लेकिन अभी की मिसाल लीजिये। नवबाबू (उड़ीसा के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री नवकृष्ण चौधरी) ने राजसत्ता के जरिये सेवा करने की काफी कोशिश की। आखिर इन दो सालों से वे उससे छुटकारा पाने के लिए तरसते थे, लेकिन उनका छुटकारा नहीं हो रहा था। अब वे छूट गये हैं। यह छोटी मिसाल है और बुद्ध भगवान् की बड़ी मिसाल, लेकिन दोनों का तात्पर्य एक ही है। दोनों के हाथ में राजसत्ता थी। लेकिन उन्होंने देखा कि समाज आज जिस स्थिति में है, उस स्थिति को कायम रखकर अगर कुछ सेवा करनी हो तो सरकार के जरिये होती है। उससे समाज कुछ थोड़ा-सा आगे भी बढ़ सकता है, लेकिन वह चींटी के जैसा बढ़ता है। अगर राज्य-कर्ता अच्छे हों, तो समाज आगे बढ़ता है। किंतु हमेशा सभी राज्यकर्ता अच्छे नहीं होते, इसीलिए सत्ता के जरिये समाज-रचना में कोई क्रान्तिकारक बदल नहीं हो सकता। लोगों में जाकर उनके मन की शुद्धि का कार्यक्रम किये बिना जन-समाज आगे नहीं बढ़ता।

किसी राजा की आज्ञा से काम नहीं चलता

हिन्दुस्तान का कुल इतिहास देखने से यह मालूम होता है कि हिन्दुस्तान का समाज जहाँ-जहाँ आगे बढ़ा, वहाँ-वहाँ सत्पुरुषों के ही जरिये आगे बढ़ा। बुद्ध और महावीर का जो असर आज भी भारत पर दीखता है, वह उनके जमाने के किसी भी राजा का नहीं। कबीर और तुलसीदास का जो प्रभाव आज उत्तर प्रदेश पर हुआ है, वह उत्तर प्रदेश के किसी राजा का नहीं है। चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस और रवीन्द्रनाथ का जो असर आज बंगाल पर है, वह बंगाल के किसी भी राजा का नहीं। शंकर, रामानुज, माणिक्य-

वाचकर और नम्मालवार का तमिलनाड पर आजतक जो असर है, वह न किसी पांड्य का है, न पल्लव का है और न चोल राजा का है। यहाँ पर सब लोग भस्म लगाते हैं, तो क्या वह कोई चोल राजा की आज्ञा से करते या पांड्य राजा की आज्ञा से ? आखिर किसके नाम पर लोग अपने जीवन में इतना त्याग करते हैं ? विवाह-संस्था जैसी उत्तम संस्था किसने बनायी ? उसमें कौन-सा कानून आता है ? माताएँ बच्चों की परवरिश करती हैं, तो किस राजा के या किस सरकार के हुक्म से ? असंख्य यात्राएँ चलती हैं, वह किनकी आज्ञा से ? मरने पर स्मशान-विधि और श्राद्ध-विधि आदि होती है, तो किनकी आज्ञा से ? यहाँ पर जो 'तिरुकुल' पढ़ा जाता है, 'तिरुवाचकम्' का रटन किया जाता है, वह क्या किसी युनिवर्सिटी की आज्ञा से होता है, या किसी म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्टबोर्ड की आज्ञा से ? यह बात सही है कि आज उन कम्बख्तों के हाथ में ऐसी ताकत है कि वे कोई भी किताब कुल बच्चों से पढ़वाना चाहें तो पढ़वा सकते है। लेकिन बच्चे वैसी किताबें स्कूल में पढ़ते हैं। और स्कूल खतम होने पर फेंक देते हैं, फिर जिन्दगी भर उस किताब को खोलते नहीं। लेकिन लोग तिरुकुरल और तिरुवाचकम् जेब में रखते हैं और बार-बार पढ़ते हैं। आज लोगों की जो विवेकबुद्धि बनी है, वह किसने बनायी है ? आज इतना दान दिया जाता है, वह किसकी आज्ञा से दिया जाता है ? इतना सारा तप, उपवास, एकादशी, रोजा किया जाता है, वह किसकी आज्ञा से किया जाता है ? हिन्दुस्तान में बहुत-से लोग स्नान किये बगैर दोपहर का भोजन नहीं करते, वह किसकी आज्ञा से करते हैं ?

सिकंदर और डाकू

आप क्या समझते हैं कि पिनलकोड में चोरी के लिए सजा है, इसलिए इतने सारे लोग चोरी नहीं करते ? मान लीजिये कि कल पुलिस, कोर्ट, जेल आदि कुछ नहीं रहे, तो क्या बाबा भूदान का काम छोड़कर चोरी करना शुरू करेगा ? चोरी के लिए सजा न हो, तो आपमें से कितने लोग चोरी करना शुरू करेंगे ? चोरी नहीं करनी चाहिए ऐसी जो हमारी विवेकबुद्धि बनी है,

क्या वह किसी राजा ने बनायी है? राजा क्या बना सकते थे, वे खुद ही चोर थे। वे डाका डालनेवाले थे, लोगों को लूटनेवाले थे, लोगों पर सत्ता चलानेवाले थे। क्या वे लोगों के हृदयों पर सत्ता चला सकते थे? उनकी मिसाल लेकर कौन चोरी छोड़ेगा?

सिकंदर बादशाह की कहानी है। एक डाकू को पकड़कर उसके सामने लाया गया था। सिकंदर ने डाकू से पूछा : 'तू क्या करता है?' डाकू ने कहा : 'तू जो करता है, वही मैं करता हूँ।' इस पर सिकंदर ने कहा : 'तेरी और मेरी बराबरी ही क्या? मैं तो बादशाह हूँ।' डाकू बोला : 'तू जो काम करता है, वही मैं भी करता हूँ। लेकिन तू सफल हुआ और मैं नहीं, इतना ही फर्क है। चोर तू भी है और मैं भी, परन्तु तू सफल चोर है, इसलिए लोगों के सिर पर बैठा है और मैं असफल चोर हूँ, इसलिए तेरे सामने खड़ा हूँ। फिर भी तू मन में यह भलीभाँति समझ ले कि तेरी और मेरी योग्यता समान है।' यह सुनकर सिकंदर अवाक् रह गया। यहाँ ईस्ट इंडिया कंपनी का राज्य चला, उसमें क्लाइव, वॉरेन् हेस्टिंग आदि क्या महापुरुष हो गये? उस समय उधर इंगलैंड की पार्लमेन्ट में हेस्टिंग्ज़ पर केस चला था। उसमें बर्क (Burke) ने अभियोग (Impeachment) पर जो व्याख्यान दिया, उसे हम पढ़ते हैं तो मालूम होता है कि हेस्टिंग्ज़ वगैरह कैसे बदमाश थे। लेकिन हिन्दुस्तान में उनकी सत्ता चली और वे राज्यकर्ता बने।

जनशक्ति से स्वराज्य

अब अंग्रेजों के हाथ से हमारे हाथ में सत्ता आयी और हम राज्यकर्ता बने हैं। शास्त्रों में लिखा है कि "राज्यान्ते नरकप्राप्तिः" राज्य-समाप्ति पर नरक-प्राप्ति होती है। याने राज करनेवाला राजा मरने पर नरक में जाता है। लोग पूछेंगे कि क्या फिर स्वराज्य न चलाना चाहिए? हम कहते हैं कि स्वराज्य जरूर चलायें, पर राज्य नहीं। वेद का ऋषि कहता है—"यतेमहि स्वराज्ये" हम स्वराज्य के लिए प्रयत्न करें। शास्त्रों में भी यह भी लिखा है कि "न त्वहं कामये राज्यम्" मैं राज्य नहीं चाहता मैं स्वराज्य चाहता हूँ, दिल्ली से जो चलता

है उसे 'राज्य' कहते हैं, चाहे वह अपने लोगों का ही हो। शेन्नै (मद्रास) से जो चलता है, वह 'राज्य' कहलाता है। गाँव-गाँव में हर मनुष्य अपने पर जो चलाता है वह 'स्वराज्य' है। मुझे चाहे भूखा रहना पड़े, लेकिन मैं चोरी न करूँगा, इसका नाम है 'स्वराज्य'। मुझ पर दूसरे किसी की हुकूमत चलती हो, तो क्या वह स्वराज्य है? 'स्वराज्य' का अर्थ है अपना खुद का अपने पर राज्य। इस तरह जब सब लोगों में अपने पर काबू रखने की शक्ति पैदा होगी और उन्हें अपने कर्तव्य का भान होगा, तब 'स्वराज्य' आयेगा। तब तक 'राज्य' ही चलेगा, फिर चाहे वह हिन्दीवालों का राज्य हो या तमिलवालों का राज्य हो। हमें काम स्वराज्य का करना है। उसके लिए जनशक्ति पैदा करनी है, लोगों के हृदय में आत्मशक्ति का भान पैदा करना है। अपने गाँव का कारोबार हम ही चला सकते हैं, कोई भी बाहर की सत्ता हमें रोक नहीं सकती, ऐसी ताकत पैदा होनी चाहिए।

बाबा को स्वराज्य मिला

मैं अपने ऊपर अपनी खुद की सत्ता चला सकता हूँ। बाबा ने तय किया है कि वह पैदल घूमेगा। रोज पचासों रेलें फरफर करती हैं और कई बार बाबा को उनका दर्शन होता है। बाबा का कोई भाई कलकत्ते में पड़ा है। रेल में बैठा जाय, तो दो दिनों में उसे मिलने के लिए जाया जा सकता है। लेकिन कोई भी रेल बाबा को अपने में बिठा नहीं सकती। बाबा का अपने विचारों पर काबू है। वह समझता है कि वह जो संकल्प करेगा, उसके खिलाफ दुनिया की कोई ताकत काम न करेगी। फिर भी बाबा दूसरों पर दबाव डालने का संकल्प न करेगा, वह अपने पर ही दबाव डालने का संकल्प करेगा। बाबा अपने लिए कोई [illegible]च करेगा और वह देखना चाहेगा कि क्या उसे तोड़नेवाली कोई शक्ति [illegible]य में है। एक जमाना था जब बाबा का अपने पर काबू नहीं था, अपने पर काबू पाने के लिए उसे अभ्यास करना पड़ा। जिस समय उसकी अपने पर सत्ता नहीं थी, तब दूसरों की सत्ता उसपर चलती थी। किंतु जब से उसकी अपने पर सत्ता चलने लगी, तभी से उसे 'स्वराज्य' मिला।

स्वराज्य के दो लक्षण

दुनिया की दूसरी कोई भी सत्ता अपने ऊपर न चलने देना, स्वराज्य का एक लक्षण है और दूसरे किसी पर अपनी सत्ता न चलाना स्वराज्य का दूसरा लक्षण। हम पर किसी की सत्ता नहीं चलेगी और हम दूसरे किसी पर अपनी सत्ता नहीं चलायेंगे, ये दोनों बातें मिलकर ही स्वराज्य होता है।......यह सब काम सरकारी शक्ति से नहीं, लोकमानस में परिवर्तन लाने से ही होगा। उसके लिए हृदय-शुद्धि की जरूरत है। हृदय-शुद्धि लाने का कार्यक्रम जनता में जाकर करना होगा। उसके लिए यज्ञ, दान, तप आदि सब हैं।

मलयकोटाई (कोयम्बतूर)
२९–१०–'५६.

करुणा के समुद्र का दर्शन : ६९ :

अभी आपने भजन में सुना कि 'परमेश्वर करुणा का समुद्र है।' परमेश्वर को किसने देखा और कैसे मालूम हुआ कि वह करुणा का सागर है? उसे किसी ने अपनी आँखों नहीं देखा। किसी को आँखों से चतुर्भुज विष्णु का दर्शन होता है या किसी का शिव भगवान् की मूर्ति का, तो वह अपनी भावना से मान लेता है कि ईश्वर कहीं है। लेकिन ईश्वर का रूप किसी ने देखा, ऐसा हम नहीं कह सकते। वह तो अपनी भावना का रूप है। भावना को ही हम ईश्वर मानें, तो वह उसके लिए ईश्वर-दर्शन है, किन्तु चर्मचक्षु से ईश्वर का दर्शन किसी को होता नहीं। फिर कैसे पहचाना कि ईश्वर करुणा के समुद्र हैं? पानी से भरा समुद्र सब लोगों ने देखा है, लेकिन करुणा से भरा ईश्वर किसी ने कहाँ देखा? पानी से भरा समुद्र भी सबने नहीं, कुछ ही लोगों ने देखा है। फिर भी सबने पानी तो देखा ही है। दुनिया में ऐसा कोई मनुष्य नहीं होगा, जिसने पानी न देखा हो। जिन्होंने पानी का समुद्र न देखा हो, वैसे लोग लाखों होंगे। मारवाड़ के लोग कहाँ समुद्र देखेंगे? हिमालय के जंगलों में रहनेवालों को समुद्र कहाँ मालूम? ऐसे लाखों

करोड़ों लोग होंगे कि जिन्होंने समुद्र न देखा होगा, लेकिन जिसने पानी नहीं देखा, ऐसा कोई भी शख्स नहीं होगा। बच्चों ने भी पानी देखा होगा।

करुणा और करुणा का समुद्र

किंतु भजन में हमने सुना कि परमेश्वर करुणा का समुद्र है। उन्होंने करुणा के समुद्र को देखा होगा, पर वह आँखों से नहीं, अक्ल से देखा होगा। किसी ने अपनी अक्ल से परमेश्वर को करुणा के समुद्र के रूप में देख लिया होगा। लेकिन सब लोग करुणा के समुद्र को नहीं, करुणा को देखते हैं। करुणा को किसने नहीं देखा ? जिसने पानी नहीं देखा, उसने भी करुणा को देखा है। बच्चे का जन्म होते ही माता ने उसे अपने स्तन का दूध पिलाया। बच्चे ने तबतक पानी नहीं देखा, लेकिन करुणा चख ली। जब माता ने उसे स्तन का दूध पिलाया, उसके साथ-साथ उसे करुणा का भी ज्ञान हो गया। इसलिए जिसने करुणा को देखा नहीं, ऐसा दुनिया में कोई नहीं है।

जीवन में करुणा का दर्शन

कुछ लोगों ने करुणा के समुद्र का अपनी बुद्धि से दर्शन किया होगा, किंतु करुणा का दर्शन तो बालक ने भी किया है। बालक ने माता की करुणा देख ली, इसलिए तमिल में माता को 'कण्कण्ड देय्वम्' (प्रत्यक्ष भगवान्) कहते हैं। फिर भी उसको करुणा का समुद्र नहीं दीखता, हाँ, बच्चों को माता में करुणा की नदी काफी मिलती है। समुद्र बहुत बड़ी चीज है, लेकिन नदी भी कोई बहुत छोटी चीज नहीं। बच्चों को करुणा की नदी का दर्शन माँ में हो गया। उसने पहचान लिया कि वहाँ परमेश्वर का एक अंश है। क्योंकि माँ में परमेश्वर की करुणा दीख पड़ती है।

थोड़े दिनों के बाद बच्चों को पिता की करुणा का अनुभव होता है। वह पहचान लेता है कि यहाँ भी ईश्वर का कुछ रूप है। फिर थोड़े दिन बाद वह स्कूल में चला जाता है, तो वहाँ उसे गुरुजी की करुणा का दर्शन होता है। हाँ, हाथ में छड़ी लेनेवाला गुरुजी हो, तो वह दर्शन न हो, पर ज्ञान देनेवाला मिला

तो करुणा का दर्शन अवश्य होगा। फिर वह संसार में काम करने लगे, कई प्रकार की मुसीबतें आयीं और उस समय मित्रों ने मदद दी, तो मित्रों में करुणा का दर्शन हुआ। एक दिन वह नदी में नहा रहा था, डूबने लगा, रास्ते में एक मुसाफिर जा रहा था, कुछ पहचान नहीं थी। उसने देखा कि एक शख्स पानी में डूब रहा है। वह अच्छी तरह तैरना जानता था। पानी में कूद पड़ा और इसे बाहर निकाल दिया। कुछ जान-पहचान न होते हुए भी नदी में कूद कर बचानेवाले मनुष्य में उसे करुणा का दर्शन हुआ। फिर उसके हृदय में भावना पैदा हुई कि सारी दुनिया में कई लोगों ने मुझ पर करुणा की बारिश की, अब मैं भी थोड़ी करुणा करूँ। फिर वह गरीबों की मदद में, बीमारों की सेवा में और दुखियों की सहायता में लग गया। किसी अज्ञानी को ज्ञान देने लगा। इससे उसे अपने में करुणा का दर्शन होने लगा। इस तरह सर्व-प्रथम माता में और आखिर में अपने में करुणा का दर्शन हुआ।

पेड़ों में और मृत्यु में करुणा का दर्शन

जब उसे अपने हृदय में ही करुणा का दर्शन होने लगा, तो वह सारी दुनिया की तरफ करुणा की नजर से देखने लगा। जैसे चींटी मिट्टी के कणों में घूमती है, लेकिन जहाँ शक्कर का कण देखती है, वहीं उसे एकदम उठा लेती है। वह खाने की चीजों का भी एकदम संग्रह करती है। वैसे ही उस मनुष्य ने दुनिया में जहाँ-जहाँ करुणा देखी, वहाँ से उसने करुणा लेना शुरू किया। फिर उसे कुत्ते, गाय, घोड़े आदि जगह-जगह करुणा दीखने लगी। एक दिन देखा कि एक मुसाफिर रास्ते पर से जा रहा था। उसके पेट में भूख थी। उतने में रास्ते में आम का एक पेड़ आया। वह उसके नीचे से जा रहा था। इतने में अच्छा पका आम नीचे गिरा। उसने उठा लिया और खाया, तो उसे एकदम ज्ञान हुआ कि पेड़ों में भी करुणा भरी है। वे उत्तम-से-उत्तम फल तैयार करते हैं, परन्तु खुद कभी नहीं खाते। लोग भी बड़े प्यार से आम के फल खाते हैं। कितनी करुणा पेड़ में भरी है? इस तरह पेड़ों में भी उसे करुणा का दर्शन होने लगा।

एक बार एक मनुष्य बहुत बीमार था। उसके पेट में खूब दर्द था। डाक्टरों ने खूब इलाज किये, परन्तु उसका कोई भी अच्छा परिणाम नहीं आया। वह बेचारा दुःख के मारे रोज चिल्लाता। आस-पास के लोग सुनते और उसे मदद करने की कोशिश करते, पर कुछ भी परिणाम न होता। एक दिन सूर्य का उदय हो रहा था, उतने में उस बीमार की आँखें बंद हो गयीं और उसका चिल्लाना भी रुक गया। इसने पूछा : 'अरे इसे क्या हो गया ?' लोगों ने कहा : 'वह मर गया।' उसे उस समय मृत्यु में भी करुणा का दर्शन हुआ। कितनी करुणामय मृत्यु है। बेचारा कितना चिल्लाता था, डॉक्टर-मित्र कुछ न कर सकते थे, रिश्तेदार भी जिसे दुःख से नहीं छुड़ा सकते थे, उसे करुणामय मृत्यु ने छुड़ाया।

सारांश, उसे करुणा का दर्शन माँ से होते-होते हृदय में हुआ और उसने बाद में जहाँ-जहाँ देखा, वहीं करुणा का ही दर्शन हुआ। आखिर में करुणा का दर्शन मृत्यु में भी हुआ। वह इधर-उधर की सबकी सब करुणा इकट्ठी करने लगा तो एक दिन बहुत बड़ा भारी समुद्र करुणा का बन गया। उसी को तमिल में 'करुणैकडल' (करुणा का समुद्र) कहते हैं। वही परमेश्वर है। उसी करुणा का एक अंश माँ में है, एक अंश बाप में है, एक अंश गुरु में है, एक अंश मित्र में है, एक अंश भाई में है, एक अंश मनुष्य में है, एक अंश प्राणी में है, एक अंश पेड़ में है और एक बहुत बड़ा अंश मृत्यु में है—इस तरह उसको सर्वत्र करुणा का दर्शन हुआ। अब कहा जायगा कि उसने भगवान् का दर्शन कर लिया। उसने करुणा का समुद्र देख लिया, क्योंकि उसका खुद का जीवन केवल करुणा से भर गया। बोलने में बोला जाता है कि भगवान् करुणा का समुद्र है। पर वह किस तरह देखा जाता है, उसकी एक कला है। वह कला मैंने आप लोगों के सामने खोल दी।

भूदान में करुणा के समुद्र का दर्शन

साढ़े पाँच साल से हम भूदान के काम में घूम रहे हैं। हम कह सकते हैं कि हमें करुणा के समुद्र का दर्शन हुआ। कुल पाँच लाख लोगों ने ४० लाख

एकड़ जमीन का दान दिया है। उसमें कितने ही गरीब लोगों का दान है। बड़े लोगों का भी दान है। दान कैसे माँगा जाता है? दान माँगनेवाले के पास क्या सत्ता और क्या ताकत है? केवल प्रेम से समझाता है। भगवान् ने हमें जो चीजें दी हैं, दूसरे को दिये बिना हम उनका सेवन न करें, जो चीजें हमारे पास हैं, उनका दूसरे को भोग देने के बाद ही भोग करें। अपने पास जमीन हो तो जमीन का हिस्सा, संपत्ति हो तो संपत्ति का हिस्सा, बुद्धि हो तो बुद्धि (ज्ञान) का हिस्सा, शरीर में ताकत हो, तो ताकत का हिस्सा दूसरे को प्रेम से देना चाहिए, यही समझाकर हम जमीन माँगते हैं। इसके सिवा हमारे पास कोई दंडशक्ति नहीं और न कोई सरकारी शक्ति ही है। केवल प्रेम और विचार समझाने की बात है। वह समझकर इतने लाखों लोगों ने दान दिया है। बिलकुल अपने जिगर के टुकड़े उन्होंने दे दिये। इसमें हमें करुणा के समुद्र का दर्शन हुआ।

असुरों पर विजय प्राप्त करें

लोग हमसे पूछते हैं कि बाबा, कबतक घूमते रहोगे? हम उनसे कहते हैं कि हम घूमते नहीं है। यह तो हमारी यात्रा हो रही है? यात्रा भगवान के दर्शन के लिये होती है। हम करुणारूपी भगवान् के दर्शन के लिए घूम रहे हैं। हमें जगह-जगह उसका दर्शन होता है। हमारी यात्रा सफल है, चाहे किसी दिन ५० लोगों ने दान दिया, या किसी दिन एकआध ने। जहाँ प्रेम से दिया जाता है, वहाँ परमेश्वर का दर्शन हो जाता है। हम चाहते हैं कि इस करुणा का अंश जो हरएक के हृदय में पड़ा है, प्रकट हो जाय। वह करुणा सीमित न रहे। बच्चों को माँ में सर्वप्रथम करुणा का दर्शन होता है; पर ऐसी माताएँ भी देखीं, जो अपने बच्चों के लिए करुणामय हैं, लेकिन पड़ोसी के बच्चों के लिए निष्ठुर हैं। उनके हृदयों में करुणा का अंश है और निष्ठुरता का अंश भी—देव भी है और असुर भी है। यह देवासुर-संग्राम हरएक के हृदय में चलता है। हरएक के हृदय में कुछ-कुछ असुर रहते हैं, तो कुछ देव। असुर को वहाँ से भगाना है और देव को विजय प्राप्त करनी है।

ईश्वर का रूप और चिह्न

हम आशा करते हैं कि इस गाँव में करुणा का दर्शन होगा। जब हृदय करुणा से भर जायगा, तभी ईश्वर का दर्शन होगा। कई लोग पत्थर की मूर्ति बनाते हैं और उसी को भगवान् समझते हैं। पर वह तो ध्यान के लिए एक चिह्न बना लिया, जैसे ईश्वर के ध्यान के लिए 'स्वस्तिक' या 'ओम्' बनाते हैं। कहते हैं कि 'ॐ' मूर्ति में 'उ' परमेश्वर का चेहरा और शेषांश सूंड है। वे करुणा, ज्ञान और प्रेम से भरे हैं तथा संकट में मदद करते हैं। इस तरह परमेश्वर का ध्यान-चिंतन करने के लिए एक चिन्ह बना दिया। फिर भी वास्तव में वह ईश्वर का सच्चा रूप नहीं। आपको आम का चित्र दिखाया जाय, तो क्या वह आम है? मान लीजिये, एक गोबर का आम बना दिया और उस पर रंग चढ़ा दिया तो क्या आप उसे खायेंगे और उससे आपकी तृप्ति होगी? स्पष्ट है कि वह आम नहीं, आम का रूप है। आम तो खाने पर मालूम होता है। इसी तरह पत्थर की मूर्ति तो ईश्वर का चिह्न है। उसे हमने ही बनाया है। परन्तु आम हमने नहीं बनाया, ईश्वर ने पैदा किया है। गोबर का आम और यह पत्थर का भगवान् हमने बनाया, वह ईश्वर का रूप नहीं, चिह्न है। जैसे सच्चा आम दूसरा होता है, वैसे ही सच्चा परमेश्वर करुणा है। परमेश्वर का करुणा और प्रेम ही रूप है।

यहाँ 'अन्वे शिवम्' (प्रेम ही ईश्वर है), ऐसा कहा है। शिव का यह एक चिह्न है कि उनके सिर पर गंगा है। याने दिमाग में ठंडक होनी चाहिए। ठंडक के बिना सिर में आग लग जायगी, तो करुणा के बदले क्रोध ही प्रकट होगा। इसलिए बिलकुल ठंडी गंगा शिवजी ने सिर पर रख ली है। और गले में साँप रख लिये हैं। यह कितनी करुणा है। वह काटनेवाला साँप नहीं रहा होगा, वह तो पुष्पों का हार ही बन गया होगा। उन्होंने उसे पहन लिया, तो करुणा का रूप सामने खड़ा करने के लिए एक चिह्न हो गया। पर इस चिह्न को ही ईश्वर समझो और करुणा को न पहचानो, तो क्या कहा जायगा? इस-लिए वास्तव में परमेश्वर का रूप करुणा समझकर दिन-ब-दिन हम अपनी करुणा बढ़ाते चले जायँ, यही सच्ची साधना है।

हमने आपको यह बात समझायी। अगर आपको यह जँच जाय, तो करुणा ही आपसे आगे काम करायेगी। यहाँ से हम आपके स्थूल रूप की आखिरी स्मृति लेकर जायँगे। लेकिन आपकी करुणा के रूप का निरंतर दर्शन किया करेंगे। परमेश्वर हमारे हृदय में करुणा रखेगा, तो हमारा रूप भी परमेश्वर आपके सामने अवश्य रखेगा। हम आशा करते हैं कि करुणामय परमेश्वर की कृपा से आप और हम करुणामय बन जायँ।

चिन्नमन्नुर (कोयम्बतूर)
३०-१०-'५६

सज्जनों के त्रिविध कर्त्तव्य : ७० :

दुनिया में अनेक प्रकार के लोग होते हैं—कुछ भले होते हैं, कुछ साधारण और कुछ थोड़े बुरे भी। जो भले होते हैं, वे सदा के लिए बुरे नहीं होते, सुधर सकते हैं। जो भले होते हैं, वे हमेशा भले होते हैं। भले में से कोई बुरा तो बननेवाला नहीं है, जो बुरे हैं उन्हीं में से भले बननेवाले हैं। कारण, भलाई में ही ताकत होती है, बुराई में नहीं।

भलाई का बुराई पर हमला

आप किसी सज्जन का व्याख्यान सुनते हैं। वह आपको भलाई का उपदेश देता है, तो उसका कुछ-न-कुछ असर आप पर होता ही है। पर कोई बुराई का व्याख्यान देगा, तो उसका लोगों पर असर न होगा। चोर चोरी करेगा और दो चार साथी भी इकट्ठा कर लेगा। किन्तु वह लोगों को यह समझा नहीं सकता कि चोरी करना कर्तव्य है, सब को उस काम में लग जाना चाहिये। वह जो कुछ करेगा, छिपे तौर पर करेगा, अन्धकार में करेगा, प्रकाश में नहीं। अच्छाइयाँ प्रकाश में प्रकट की जा सकती है और लोग उन्हें ग्रहण करते हैं। अन्धकार का हमला प्रकाश पर नहीं होता, प्रकाश का ही हमला अन्धकार पर होता है। इसी तरह बुराई का हमला भी भलाई पर नहीं हो सकता। अगर वह होता है,

तो छिपे तौर पर होता है। हमेशा भलाई का हमला बुराई पर होता चला आया है।

सज्जनों के कर्त्तव्य

लोग अगर यह विचार समझेंगे, तो वे कभी निराश न होंगे। लोग पूछेंगे कि अगर भलाई की चलती है और बुराई की ताकत नहीं है, तो दुनियाँ में तो बुराई की ही बहुत चलती दीखती है, इसका क्या कारण है ? वह बुराई लोगों में बाहर से आती है। उसके लिए परिस्थिति में परिवर्तन लाना पड़ेगा। यह सारा प्रयत्न भले लोगों को करना होगा। भले लोगों को तिहरा प्रयत्न करना होगा। पहले तो वे अपने चित्त का परीक्षण कर निज की भलाई बढ़ायें। उन्हें यह न लगे कि हम भले हैं। हममें क्या बुराई है ? हरएक में कुछ-न-कुछ अवगुण छिपे ही रहते हैं, उन्हें ढूँढ़ कर वहाँ से हटाना चाहिए। व्यक्तिगत आत्मशुद्धि का यह कार्य भले लोगों को सतत करना चाहिए। दूसरे, वे सब भले लोगों को इकट्ठा करें। आज भले लोग अकेले-अकेले काम करते हैं। अपना-अपना विचार सोचते और दूसरे भले सज्जन के साथ सहयोग नहीं करते। उनमें थोड़ा विचार-भेद भी होता है। और उसे महत्व देते हुए वे अलग-अलग काम करते हैं। इसलिए उनकी ताकत इकट्ठी नहीं होती। उनके बीच अनेक संप्रदाय बनते हैं।

सोचने की बात है कि भक्तों के अलग-अलग संप्रदाय बनते हैं और अभक्त सब इकट्ठा रहते हैं। उन सबका समूह है। ये भक्त अलग-अलग संप्रदाय में बँटे हुए हैं। इस्लाम धर्म नास्तिकता नहीं मानता। फिर भी ये सारे लोग इकट्ठा होकर नास्तिकता पर हमला नहीं करते, क्योंकि इनकी आपस में बनती नहीं। अल्लाहमियाँ का नाम लेनेवाला, विष्णु भगवान का नाम नहीं लेगा। विष्णु का नाम लेनेवाला शिव के भक्त से एकरूप न होगा। ईसाई के यहाँ अल्ला, विष्णु, शिव कोई नहीं चलता, उसका स्वर्ग में रहनेवाला अलग ही परमेश्वर है, जो सातवें आसमान में रहता है, वे उन्हीं की भक्ति करेंगे। ये सारे आस्तिक बँटे रहते हैं और कुल नास्तिक लोग एक हो जाते हैं। पुण्यवान्

लोग अलग-अलग रहते हैं और पापी लोग इकट्ठे हो जाते हैं। इससे काम न चलेगा। इसलिए पुण्यवान् लोगों को सामूहिक शक्ति प्रकट करनी चाहिये।

सारांश, प्रथमतः तो उनके हृदय में भी कुछ-न-कुछ बुराइयाँ छिपी हैं, जिन्हें दूर करना चाहिए। उसके बाद दूसरे सज्जनों के साथ एक रूप होकर सामूहिक सज्जनता बनानी चाहिये। वे इस तरह का समूह नहीं बनाते, इसका कारण यही है कि उनके हृदय में बुराई पड़ी है। इसलिए हमने पहले अपनी बुराई देखकर बाद में दूसरे के साथ एकरूप होने के लिए कहा है। वे पुण्यवान्, धार्मिक और आस्तिक तो कहलाते हैं लेकिन अपने मन में अहंकार रखते हैं। यही बुराई है। जो सज्जन दूसरे सज्जन के साथ एकरूप नहीं हो सकता, वह पूर्ण रूप में सज्जन नहीं। उसमें अहंकार ही बड़ी दुर्जनता है। इसलिये पहले उन्हें अपनी सज्जनता पूर्ण करनी चाहिये। और बाद में सज्जनों के साथ एकरूप होकर सामूहिक काम करना चाहिये।

परिस्थिति में परिवर्तन करने की हिम्मत

तीसरी बात यह है कि उन्हें समाज की रचना में बदल करने की हिम्मत करनी चाहिये। समाज की आज की रचना कायम रखकर अगर भला काम करें, तो सारा भला काम खतम हो जाता है। खारे पानी से भरे समुद्र में दो-चार बोतल शहद डालने से वह मीठा नहीं बनता। यही हालत उन सज्जनों की होती है। आज के सारे समाज में वे अपनी मिठास डालना चाहते हैं, लेकिन उससे कुछ नहीं होता। लोग इधर शराब, सिगरेट, बीड़ी पी रहे हैं। व्यभिचार, अत्याचार होता है और लोग बीमार पड़ते हैं, तो वे सज्जन डाक्टर बनकर औषध देते चले जाते हैं। बीमार दुःखी होता ही रहता है, आखिर जब मर जाता है, तभी उसका छुटकारा होता है। किन्तु डाक्टर समाज की स्थिति में कोई फर्क करने का प्रयत्न नहीं करते। लोग ज्यादा खायेंगे, तो हम नहीं समझाते कि कम खाना चाहिये। परन्तु उनके बीमार पड़ते ही दयालु बनकर सेवा करने लगते हैं। इस सेवा से समाज में कोई फर्क नहीं पड़ता।

पुराने वैद्य इतना तो करते थे कि बीमारों को कुछ मुद्दत का पथ्य देते थे।

औषध देने के पहले परहेज रखने की बात करते थे कि मिर्च-मसाला, शक्कर आदि न खाना होगा, बीड़ी-सिगरेट छोड़ना होगा, तभी औषध का गुण होगा, नहीं तो औषध का कुछ असर नहीं होगा। किंतु आज के डाक्टर के पास रोगी जायगा, तो वह पूछेगा कि क्या हुआ है। वह कहेगा कि छाती दुखती है। ठीक है, औषध देता हूँ, खाने-पीने में कोई परहेज नहीं, सब कुछ खाओ, जरा इतना करो कि ज्यादा मत खाना। यह है आधुनिक डाक्टर। उसे डर लगता है कि परहेज की बात करूँगा तो वह औषध लेने को न आयेगा। यह तो रोगी को भी अच्छा लगता है। फलतः डाक्टर, रोग और रोगी, तीनों की दोस्ती बन जाती है। वह रोग कायम रहेगा, रोगी कायम रहेगा और डाक्टर भी सदा का डाक्टर रहेगा—वह उसका 'फेमिली डाक्टर' बन जायगा। वह सदा औषध देगा और घर में कायम के लिए बीमारी रहेगी। पहले जैसे अपने घर में एक जगह भगवान् की मूर्ति रखते थे, वैसे ही घर में एक कोने में बराबर बोतल रहेगी। उसमें कभी लाल पानी रहेगा, तो कभी हरा। जब घरवाले लोग मर जायेंगे, तभी घर में से बोतल हटेगी।

सारांश, आज की समाज-रचना में फर्क करने की हिम्मत ही किसी में नहीं है। आज के समाज में जो दुःखी हैं उनके सामने दया दिखाते हैं, कोई भी माँगने आया, तो उन्हें बहुत दुःख होगा और दो मुट्ठी धान भी दे देंगे। लेकिन ऐसी कोई योजना न बनायेंगे कि उसे फिर से कभी माँगना ही न पड़े। वे क्यों भीख माँगते हैं, इसके बारे में कभी न सोचेंगे। परिस्थिति बदलने की हिम्मत और कल्पना ही वे नहीं कर सकते।

भूदान में तेहरा कार्य

भूदानयज्ञ में यह तेहरा काम हमें करना है। पहला, सर्वोदय विचार माननेवाले सज्जनों को अपने हृदय की शुद्धि करनी है। दूसरा, सब लोगों को मिलकर काम करना है। तीसरा, समाज की आज की रचना पर हमला करना है—समाज-रचना बदलनी है। आज एक भाई हमसे मिलने के लिए आये थे। कहने लगे कि

हम आपको मकान बनाने के लिए जमीन दान देना चाहते हैं। मैंने पूछा कि 'यह बात तो अच्छी है, लेकिन मकान कौन बनायेगा ?' तो कहने लगे : 'आप के संपत्तिदान में से बनाइये।' आज गाँव-गाँव में ऐसा ही चल रहा है। कोई सरकारी अधिकारी आयेगा, तो गांववाले कहेंगे कि हम आप को जमीन देते हैं, आप एक स्कूल बनवा दीजिये और चलाइये। या यह कहेंगे कि हम स्कूल बना देंगे, आप चलाइये। सारांश अपने गांव के लिए योजना हम ही बनायेंगे और हम ही उसे अमल में लायेंगे, यह सोचने की हिम्मत ही किसी में नहीं है। भूदान में कोई थोड़ी जमीन दे दे, तो इतने से क्रान्ति न होगी। वह तो व्यक्तिगत दान की कीमत रखता है, परंतु समाज-रचना बदलने के लिए सबको सामूहिक रूप से ही काम करना होगा।

भेदक्षय से पीड़ित समाज

हिन्दुस्तान में दान-धर्म कम नहीं होते, लेकिन वे सारे पानी के समुद्र में शहद की एक बोतल डालने जैसे हैं। इस तरह ये छोटे-छोटे दानपुण्य तो समाज में कितने ही जीर्ण हो गये। क्षयरोगी शरीर को दूसरा कुछ इलाज नहीं है, उसे जितना खिलाते हैं, वह सारा खतम होता है। उसको फिर-फिर से खिलाया करो, वह उसका इलाज नहीं, उसका इलाज होना चाहिए। हमारे समाज में भी यह क्षयरोग लागू है। हम एक-दूसरे के साथ मिलजुल कर काम ही नहीं करते। मेरा घर, मेरा लड़का, मैं और मेरे ने ही सारे समाज को जीर्ण कर डाला है। एक गाँव में एक साथ रहेंगे, परंतु एक घर सुखी होगा, तो दूसरा दुखी। दोनों एक साथ सुखी न होंगे। सुखी घरवाला दुःखी पड़ोसी की चिंता न करेगा और दुःखी घरवाला सुखी घरवाले का मत्सर करेगा। दोनों मिलकर एक-दूसरे की चिंता न करेंगे, तो फिर गाँव के बारे में कैसे सोचेंगे ?

हमारे देश में भी यह क्षयरोग है। उसमें अनेक संप्रदाय और पंथ हैं। अनेक जातियाँ हैं और आजकल ये (राजनैतिक) पक्ष भी आ गये हैं। यह भी एक क्षयरोग है। इसका उत्तम इलाज होना ही चाहिए।

आजकल जो उठा, तो उत्पादन बढ़ाने की बात करता है। स्वराज्य के बाद

उप-शीर्षकों का अनुक्रम